भारतीय वीरता

लेखक—

श्रीरजनीकान्त गुप्त

हिन्दी पुस्तक एजेन्सीमाला—३०

भारतीय वीरता

लेखक

रजनीकान्त गुप्त

अनुवादक

वैद्यनाथ सहाय
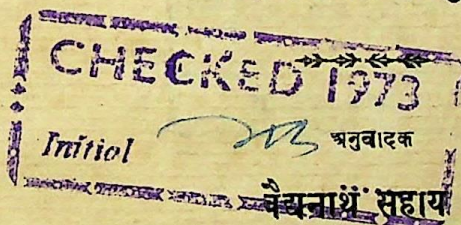
प्रकाशक
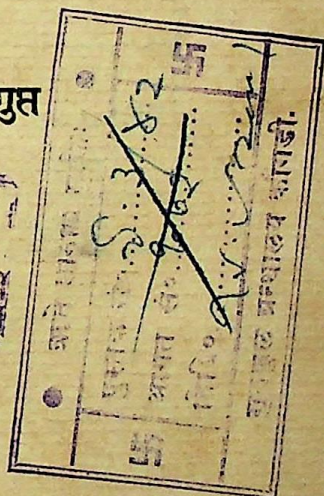
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

१२६, हरिसन रोड

कलकत्ता ।

प्रथमवार] श्रावण १९८० [मूल्य १।)

प्रकाशक—

बैजनाथ केडिया

प्रोप्राइटर

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

१२६, हरिसन रोड, कलकत्ता

जगदीशनारायण तिवारी द्वारा

मुद्रित—

"वणिक् प्रेस"

१, सरकार लेन, कलकत्ता

निवेदन

प्रायः हजार वर्षोंसे भारत विदेशियों द्वारा दासताकी कठिन बेड़ीमें जकड़ा हुआ है। इसका मूल कारण यही है कि हमने अपनी सभ्यता, प्रतिष्ठा, गौरव, धैर्य और बाहुबल खो दिया है। आज हम पराधीनताके वायु-मण्डलमें सांस लेते लेते इस अन्धकारमें पड़े हैं कि आत्मसम्मानका गौरव लेशमात्र भी नहीं रहा। हम विदेशी सभ्यता, विदेशी भाषा, विदेशी रहन-सहन और विदेशी वीरताको बड़े गौरवकी दृष्टिसे देखते हैं। परन्तु अपनी जन्मभूमिकी कीर्त्ति-कथा, अपने देशके उत्थान और पतनका मर्मभेदी हाल, अपने यहांके प्राचीन गौरवकी कथायें सुनने और जाननेकी चेष्टा नहीं करते। भारतीय गौरवकी वृद्धि हो इसीलिये मैं **श्रीयुत रजनीकान्त गुप्त** कृत "आर्यकीर्ति" नामक बङ्गला पुस्तकके आधारपर यह "**भारतीय वीरता**" बड़ी सरल और ओजपूर्ण भाषामें लिखाकर इसकी सभी कथायें आपकी भेंट कर रहा हूं। बंगला भाषामें इस पुस्तकका बड़ा आदर हुआ है। इसकी प्रायः १६, १७ आवृत्तियां हो चुकी हैं। आशा है कि हिन्दी-भाषा-भाषी भी इसका समुचित आदर करेंगे। इस पुस्तकको चित्र इत्यादि देकर जहां तक हो सका सुन्दर बनानेकी चेष्टा की गयी है। खासकर बालक और बालिका-पाठशालाओंके लिये तो यह एक बहुतही उपयोगी पुस्तक है।

विनीत---

---प्रकाशक

चित्र-सूची

विषय-सूची

महाराणा प्रतापसिंह ।

BANIK PRESS, CALCUTTA

आज विक्रमाब्द १६३२ की श्रावणी सप्तमी तिथि है। ...ाज मेवाड़के राजपूत गण "स्वर्गादपि गरीयसी" जन्मभूमिके ...ठये प्राण देनेको तैयार हैं। सम्राट् अकबरकी असंख्य सेना ...जा मानसिंहके साथ मेवाड़पर अधिकार प्राप्त करनेके लिये ...। गयी है। मुगल सूर्य्यवंशमें कलंककी कालिमा लगाना चाहते ...। मेवाड़के श्रेष्ठ वीर प्रतापसिंह आज इस वंशको अकलंकित ...रनेके लिये प्रस्तुत हैं। सच्चे क्षत्रिय वीरने आज सच्चे क्षत्रि-...त्वके साथ गौरवरक्षाका संकल्प किया है। चिरस्मरणीय हल्दी-...टपर आशाभरोसाके एकान्त भाजन बाईस हजार वीर राजपूत ...त्र हो गये हैं। प्रतापसिंह इन्हीं बाईस हजार राजपूतोंके सेना-...ी बनकर पराक्रमी मुगलोंके गतिरोधकी चेष्टा करते हैं।

हल्दीघाट एक पर्व्वतीय स्थान है। उसके उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण, प्रायः सभी ओर बड़े बड़े पर्व्वत उन्नत भावसे खड़े हैं। यह स्थान पर्व्वत, वन तथा छोटी छोटी नदियोंसे घिरा हुआ है। प्रतापसिंहने इन्हीं पर्व्वतोंके आश्रयमें रहकर मुगलोंका सामना करना ठीक समझा। हल्दीघाटके युद्धका दिन राजपूतों-के लिये एक बड़े ही उत्सवका दिन है। राजपूतोंने इस महो-त्सवसे मत्त होकर अपने प्राणोंको कुछ भी नहीं समझा। वे महोत्सवके महानन्दको अनुभव करते हुए चिरस्थायिनी निद्रा-देवीके अङ्कशायी हुए। इस महोत्सवमें वीर-श्रेष्ठ राणा प्रताप-सिंह सबसे आगे थे। वह पहले राजा मानसिंहकी ओर दौड़े परन्तु वह असंख्य मुगल सेनाओंके बीचमें था। प्रताप उस सैन्यको हटा नहीं सके। उन्होंने गम्भीर स्वरसे मानसिंहको "कापुरुष, राजपूत कुलाङ्गार" कहकर अपमानित किया। इसके पश्चात् प्रताप निर्भय होकर युद्ध करने लगे। उन्होंने तीन बार मुगल सेनाओंके बीचमें प्रवेश किया। तीनों बार उनका जीवन संकटसे भरा था। राजपूत वीरोंने अपने प्राणपर खेलकर तीनों बार उन्हें आसन्न मृत्युसे बचाया। राणा प्रतापकी रक्षाके लिये वे लोग अपने प्राण तुच्छ समझते थे। यद्यपि राणा प्रतापको ७ जगह गहरी चोटें लगी थीं तथापि वे निराश नहीं हुए, उन्नत भावसे शत्रु-सैन्यमें प्रवेश कर गये। राजपूतोंने फिर भी उनकी रक्षाकी चेष्टा की। उनके अनेकों वीर चिरकालके लिये वीर-शय्यापर सो गये। मेवाड़के गौरवस्वरूप प्रायः सभी राजपूत वीर हाथमें करवाल

धारण किये हुए मेवाड़की रक्षाके निमित्त चिरकालके लिये निद्राभिभूत हो गये। राणा प्रतापसिंहके मस्तकपर मेवाड़का राजछत्र शोभा पा रहा था। उसी छत्रको लक्षकरके मुगल सेना चारों ओरसे आक्रमण कर रही थी। उसी छत्रके कारण प्रतापका जीवन तीन बार सङ्कटापन्न हुआ परन्तु उन्होंने इस राज-लक्षणको नहीं छोड़ा। इस समय प्रतापका उद्धार असाध्य प्रतीत होने लगा। इस समय एक क्षत्रिय वीरने असीम साहस, असामान्य वीरता तथा ऐसी राजभक्ति दिखलाई कि जिसकी समता संसारके इतिहासोंमें कम दिखाई पड़ती है। सादरीके झाला सरदार अनेक शस्त्राघातोंकी अवहेला करते हुए अपनी सेनाके साथ महाराणाके निकट क्षणभरमें उपस्थित हो गये। उन्होंने राजछत्रको अपने मस्तकपर धारण कर लिया। इसी छत्रको देखकर मुगल सेना मानसिंहको ही प्रताप समझकर वेगसे उनकी ओर झपटी। इस तरह मुगल सेना मानसिंहपर टूट पड़ी और प्रतापके प्राणकी रक्षा हुई। किन्तु मानसिंह लौट-कर नहीं आये। वे अपने स्वामीके लिये असीम साहसके साथ युद्ध करके अपनी सेनाके साथ सदाके लिये रणभूमिमें सो गये। उस समय मुगल सेना भी राजपूतोंकी वीरता तथा उत्साहकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकी। मुगल सेना टिड्डीकी नाईं चारों ओर छा गयी। राजपूतोंको जयलाभ नहीं हुआ। चौदह हजार राजपूतोंके रक्तसे हल्दीघाट रंग गया। प्रताप जयलाभकी आशा छोड़कर रणस्थलसे चले गये।

इसी प्रकार हल्दीघाटके युद्धकी समाप्ति हुई। चौदह हजार वीर राजपूतोंने मेवाड़की रक्षाके लिये प्रसन्नताके साथ प्राण-विसर्जन किया। हल्दीघाट अत्यन्त पवित्र युद्धभूमि है। कवियोंकी रसमयी कवितासे इसका पवित्र नाम चिरस्मरणीय रहेगा और इतिहास-लेखकोंके पक्षपातरहित वर्णनसे इसका नाम चिरकालतक सुवर्णवर्णाङ्कित रहेगा। प्रतापसिंह अनन्त कालतक वीरेन्द्र समाजमें पूजित रहेंगे तथा उनकी आत्मा अमर-लोकमें स्थान पावेगी। प्रतापसिंहने अकेले चेतक नामक नीले तथा तेजस्वी घोड़ेपर सवार होकर रणस्थलको छोड़ा। यह घोड़ा राजस्थानके इतिहासमें प्रतापहीकी तरह प्रसिद्ध है। जिस समय दो मुगल सरदारोंने प्रतापका पीछा किया उस समय चेतकने बड़ी चतुरता तथा तीव्रताके साथ एक झरने-को पार करके अपने स्वामीके प्राणकी रक्षा की। प्रतापकी नाईं चेतक भी युद्धस्थलमें घायल हुआ था। घायल अश्व घायल स्वामीको लेकर जा रहा था कि अकस्मात् प्रतापको पीछेसे किसी दूसरे घोड़ेके पैरकी आहट मालूम पड़ी। पीछे फिरकर देखा कि उनका सहोदर भाई शक्त आ रहा था। प्रतापने क्षत्रिय-कुलकलंक सहोदरको देखकर क्रोधसे घोड़ेको रोक लिया। परन्तु शक्तने किसी प्रकारका विरुद्धाचरण नहीं किया। उन्होंने हल्दीघाटमें अपने ज्येष्ठ भ्राताके अलौकिक साहसको देखा था, उन्हें स्वदेशियोंकी स्वदेश-हितैषिताका परिचय भली भांति मिल चुका था। इस अपूर्व दृश्यको देखकर उन्हें अत्यन्त आत्म-

ग्लानि हुई थी। वे क्षत्रियोंके रक्तको अब अधिक कलंकित नहीं कर सके। उनके दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली और वे अपने भाईके पैरोंपर गिर पड़े। प्रताप उनके पिछले दोषोंको भूल गये। बहुत दिनोंकी शत्रुता जाती रही। प्रतापने स्नेहके साथ शक्तको आलिंगन किया। इस समय भाई भाईने मिलकर मेवाड़के उद्धारकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। यहींपर चेतकने अपना प्राण विसर्जन किया। प्रतापने अपने प्रियतम घोड़ेके स्मरणार्थ वहां एक मन्दिर निर्माण करा दिया जो "चेतकका चबूतरा" नामसे प्रसिद्ध है।
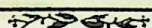
१५७६ ई० के जुलाई मासमें यह पवित्र हल्दीघाट मेवाड़के गौरवस्वरूप क्षत्रिय वीरोंके रक्तसे रँग गया। इधर मुगल सेना विजयिनी होकर रणक्षेत्रसे चली गयी। कमलमीरका दुर्ग और उदयपुर शत्रुओंके हाथ लगे। राणा प्रताप अपने परिवारके साथ एक पर्व्वतसे दूसरे पर्व्वत, एक जंगलसे दूसरे जंगल तथा एक गुफ़ासे दूसरी गुफ़ामें छिपकर मुगल सेनासे अपनी प्राणरक्षा करने लगे। कई वर्ष बीत गये परन्तु प्रतापकी विपत्तिकी समाप्ति नहीं हुई।

प्रत्येक वर्ष नये नये कष्ट प्रतापके सम्मुख उपस्थित होने लगे। परन्तु प्रताप अचल रहे, उन्होंने मुगलोंकी अधीनता स्वीकार नहीं की। शनैः शनैः मेवाड़का आकाश और भी अन्धकारमय दीख पड़ने लगा। पराक्रमी शत्रुओंने धीरे धीरे कई स्थानोंमें अपना अधिकार जमा लिया। राणा प्रताप तौभी अचल रहे और बप्पारावके रक्तको कलंकित नहीं किया। इस समय

प्रतापकी ऐसी दुरवस्था हो गयी थी कि भीलोंने उन्हें निरापद स्थानमें ले जाकर उन्हें भोजन दे उनके प्राणकी रक्षा की।

प्रतापके असाधारण उत्साह तथा कष्टको सुनकर शत्रुका भी हृदय पिघल जाता है। दिल्लीके एक प्रधान कर्मचारीने उनकी देश-हितैषितापर मोहित होकर उन्हें निम्नलिखित भावकी एक कविता भेजी थी।

"सांसारिक वस्तुयें नश्वर हैं। भूमि-सम्पत्ति नष्ट हो जायगी परन्तु बड़ोंका धर्म कभी भी नहीं लोप होगा। प्रतापने सम्पत्ति और भूमिको त्याग दिया परन्तु कभी भी सिर नीचा नहीं किया। भारतके राजाओंमें केवल उन्होंने ही अपने वंशकी मर्य्यादाकी रक्षा की।" ऐसे प्रताप जिनकी प्रशंसा विधर्म्मी तथा विपक्षी भी सदा किया करते थे, आज जंगल जंगल मारे मारे फिर रहे हैं। प्राणप्रिय स्त्री तथा संतानका कष्ट कभी कभी उन्हें पागल बना देता था। एक दिन उन्होंने पांच बार भोजनकी सामग्री इकट्ठी की परन्तु सुविधा नहीं होनेके कारण उन्हें पांचों बार उन सामग्रियोंका परित्यागकर पर्व्वतकी ओर भाग जाना पड़ा।

एक समय उनकी स्त्री तथा पतोहूने घासके बीजकी कुछ रोटियां बनायीं। उन लोगोंने आधा भाग खाकर आधा भाग दूसरी शामके लिये रख दिया था। संयोगवश एक वनबिलार बची हुई रोटी को ले गया। रोटीके ले जानेसे राणा प्रतापकी एक पुत्री कातर भावसे रो उठी। प्रताप वहांसे कुछ ही दूरपर पड़े पड़े अपनी अवस्थापर विचार कर रहे थे कि बालिकाके कातर

स्वरसे चौंक उठे। उन्होंने देखा कि रोटी एक वनबिलार ले जा रहा है और इसीसे बालिका कातर होकर रो रही है। जिस प्रतापने प्रसन्नताके साथ अपने प्रिय सहस्रों वीरोंके रक्त-स्रोतकी प्रोच्छलित धारायें हल्दीघाटमें देखी थीं, जिस प्रताप-ने सहस्रों वीरोंको आत्मोत्सर्ग करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ देखा था, जिस प्रतापने रणस्थलके भीषण आघातोंको आ-नन्दके साथ सहन किया था; आज वही प्रताप बालिकाके कातर स्वरको सुनकर स्थिर नहीं रह सके। स्नेहसे पालित बालिका-के कातर स्वरको सुनकर उन्हें बड़ा ही कष्ट हुआ। उन्हें मालूम हुआ जैसे सैकड़ों कालभुजङ्गोंने एक बार ही काट खाया हो। प्रताप और यातना नहीं सह सके। उन्होंने अकबरके यहां अपना अभिप्राय कहला भेजा।

प्रतापने अधीनता स्वीकार की, यह बात सुनकर अकबर बहुत ही प्रसन्न हुआ और नगरमें उत्सव मनानेकी आज्ञा दे दी गयी। प्रतापने जिस पत्रको अकबरके पास भेजा था उसे बीका-नेरके राजाके छोटे भाई पृथ्वीराजने देखा। उनका हृदय स्वजाति-प्रियता तथा स्वजाति-हितैषितासे लबालब भरा हुआ था। उनकी प्रतापमें बहुत श्रद्धा और भक्ति थी।

प्रताप दिल्लीश्वरकी अधीनता स्वीकार करेंगे, यह सुनकर उन्हें बहुत ही कष्ट हुआ। पृथ्वीराज अपनेको अब रोक नहीं सके और निम्नलिखित भावकी कई कवितायें उनके पास भेजीं—

"हिन्दू जातिकी आशा भरोसा हिन्दुओंपर ही निर्भर है।

पर हमलोगोंके सरदारोंमें वह वीरत्व नहीं, हमलोगोंकी स्त्रियों-में वह सतीत्व नहीं। यदि प्रताप नहीं होते, तो अकबर सभी-को एकसा कर देता। हमारे जातीय बाजारमें अकबर एक व्यव-सायी है। उसने सभीको खरीद लिया परन्तु राणा उदयसिंहके पुत्रोंको नहीं खरीद सका। सभी नवरोजाके बाजारमें अपमानित हुए। परन्तु हम्मीरके वंशजोंको आजतक यह अपमान नहीं सहन करना पड़ा। संसार कहता है कि राणा प्रतापका अवलंबन पुरुषत्व और तलवार है। वे इन्हींके सहारे क्षत्रिय-गौरवकी रक्षा कर रहे हैं। बाजारका व्यवसायी बहुत दिनतक जीवित नहीं रहेगा। एक दिन इस लोकसे अवश्य ही चला जायगा। उस समय क्षत्रियत्वका बीज इस भूमिपर बोनेके लिये सभी राणा प्रतापके निकट जायंगे। इस बीजकी रक्षाके निमित्त सभी राणा प्रतापका मुख देख रहे हैं।"

पृथ्वीराजका यह उत्साहवर्द्धक वाक्य सहस्रों राजपूतोंके बराबर बलकारक था। इसने प्रतापके मृत शरीरमें जीवनशक्ति संचालित की, तथा फिर उन्हें स्वदेशगौरवका स्मरण दिलाकर महान कार्यके लिये उत्तेजित किया। प्रतापने दिल्लीश्वरके निकट अधीनता स्वीकार करनेका संकल्प छोड़ दिया। इस समय ऐसी घोर वृष्टि हो रही थी कि राणा पर्वतकी कन्दराओंमें नहीं रह सके, मेवाड़को छोड़कर मरुभूमि होते हुए सिन्धु नदीके तट-पर जानेकी इच्छा की। इस संकल्पकी सिद्धिकी इच्छासे वे अपने परिवारवर्ग तथा मेवाड़के कई विश्वस्त राजपूतोंको साथ लेकर

मरुप्रान्तमें पहुंचे। इसी समय प्रतापका मन्त्री अपने पूर्वजों-का समस्त धन लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुआ। यह धन इतना था कि उससे पचीस हजार व्यक्तियोंका भरणपोषण बारह वर्षतक भली भांति हो सकता था। इस कृतज्ञताके दृष्टान्त-से प्रतापका हृदय और भी साहससे भर गया। वे फिर भी अपने अभीष्ट साधनके लिये पूर्ण उत्साहके साथ उद्यत हो गये। शीघ्र ही उनके सेवकगण भी आ उपस्थित हुए। प्रताप उन लोगोंको लेकर अर्वलीकी चोटीपर पहुंचे। मुगल सेनापति शाहबाजखां अपनी सेनाके साथ देवी नामक स्थानमें ठहरा था। प्रतापने तीव्रताके साथ उसपर आक्रमण किया। इस युद्ध-में प्रतापको जयलाभ हुआ। शाहबाजखां मारा गया। धीरे धीरे कमलमीरका दुर्ग तथा उदयपुर राजपूतोंके हाथमें आ गया। धीरे धीरे चित्तौर, अजमेर और मङ्गलगढ़को छोड़कर सारा मेवाड़ प्रतापके अधीन हो गया। यह विजय-सम्वाद अकबरके कानतक पहुंचा। दश वर्षके कठिन परिश्रमके पश्चात् बहुत धन व्यय करके पराक्रमी मुगल सेनाओंने जिन स्थानोंपर अपना अधिकार जमाया था वह एक ही युद्धमें प्रतापके हाथ लग गया। इसके पश्चात् मुगल सैन्यको मेवाड़में आनेकी हिम्मत नहीं पड़ी। इस अवस्थामें विजयी होनेपर भी प्रतापका शेष जीवन शान्तिसे नहीं व्यतीत हुआ। पर्वतके शिखरपर उठकर उन्होंने देखा तो उनकी दृष्टि चित्तौरके दुर्गकी चहारदिवारीपर पड़ी। उसे देख-कर वे यातनासे अधीर हो गये। जिस चित्तौरको बप्पारावने

स्थापित किया था, जिस चित्तौरकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिये राजपूत-कुल-गौरव अमरसिंहने युद्ध-वेष धारणकर पृथ्वीराजके साथ दृषद्वती नदीके तटपर देहत्याग किया था, जिस चित्तौरकी रक्षाके लिये जयमल और पुत्तने पवित्र युद्धस्थलमें प्रसन्न चित्त और शान्तहृदय होकर आत्मोत्सर्ग किया था, आज वही चित्तौर अन्धकारमय दीख पड़ता है। प्रतापके हृदयमें इसी तरहकी चिन्ता, इसी तरहकी कल्पना तथा ऐसी ही विचार-तरंगें उठा करती थीं।

इन्हीं चिन्ताओंके कारण प्रताप तरुणावस्थामें ही वृद्धसे मालूम होने लगे। इस दुर्बलताके कारण असाध्य रोगने उन्हें आ पकड़ा। प्रताप और उनके सरदारगण ऐसी दुरवस्थामें वृष्टिसे रक्षित रहनेके लिये वहींपर एक कुटी बनाकर रहने लगे। इसी कुटीमें प्रतापका शेष जीवन व्यतीत हुआ। प्रतापको अपने पुत्र अमरसिंहसे कुछ भी आशा नहीं थी। वे जानते थे कि कुमार एक व्यसनी व्यक्ति है, उससे राज्य-रक्षाका कष्ट सहन नहीं हो सकता। वे अपने पुत्रकी विलासप्रियतासे बड़े ही दुःखी थे। इसी कारण, अन्तिम समयमें भी वे शान्ति नहीं पा सके। इसी मनोवेदनाके कारण प्रताप अन्तिम समयमें पागलसे हो रहे थे। उनकी यह दशा देखकर एक सरदारने पूछा, महाराज, आपके प्राण शान्तिसे नहीं निकलते। प्रतापने उत्तर दिया:—

"स्वदेश स्वाधीन बना रहेगा ऐसी प्रतिज्ञा किसी वीर व्यक्ति-

से सुननेके लिये मेरे प्राण अभीतक ठहरे हुए हैं।" कुटीकी ओर लक्ष्य करके तथा अपने पुत्रकी विलासप्रियताका स्मरण करके उन्होंने कहा कि इस कुटीकी जगहपर बहुमूल्य विलास-प्रासाद बनेगा और हम सबोंने मेवाड़की अधिकार-रक्षाके लिये जो आत्मोत्सर्ग किया है वह इस कुटीके साथ विलुप्त हो जायगा।
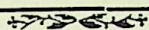
सरदारोंने उनके ये वाक्य सुनकर शपथ खायी और कहा-"जबतक मेवाड़ स्वतन्त्र नहीं होगा तबतक यहां कोई प्रासाद नहीं बनेगा। यह सुनकर प्रतापको कुछ शान्ति मिली, बुझते हुए दीपक-की भाँति उनका मुख-मण्डल उज्ज्वल हो गया। मेवाड़की स्वाधीनताकी रक्षा की जायगी, यह बात सुनकर उन्होंने शान्ति-से प्राण-त्याग किया। इस तरह स्वदेश-प्रिय प्रताप परलोकको गये। उपर्युक्त गुणोंके कारण ही प्रताप आजतक प्रत्येक राज-पूतके हृदयमें विराजते हैं। प्रतापसिंहने स्वाधीनताकी रक्षाके लिये तथा स्वदेशोद्धारके लिये प्रबल शत्रुसे लड़कर जो कार्य्य किया यह राजस्थानके इतिहासमें चिरकालतक स्वर्णाक्षरोंमें लिखा रहेगा। कई शताब्दियां व्यतीत हो गईं पर आजतक यह वृत्तान्त संसारमें प्रख्यात है। इस गौरव-कहानीको सुनकर आज भी एक सच्चे राजपूतका हृदय तेजस्वितासे भर जाता है, ना-ड़ियोंमें रक्तका संचार होने लगता है तथा आंसुओंकी धारा बहने लगती है। सारांश कि प्रतापसिंहका कार्य्य आज-पर्य्यन्त राजस्थानके इतिहासमें अद्वितीय गौरव और अद्वितीय महत्व-का समझा जाता है। किसी व्यक्तिने भी राजवंशमें उत्पन्न

होकर, इस तरह सौभाग्य और सम्पत्तिका अधिकारी होकर स्वदेशके लिये इतना कष्ट नहीं सहा। कोई भी व्यक्ति स्वदेश-हितैषितासे उन्मत्त होकर उसकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिये जंगल जङ्गल और पर्व्वत पर्व्वत नहीं मारा फिरा। भारत महासागर तथा हिमालय पर्व्वतके नष्ट हो जाने तक भी उनकी कीर्त्ति इस संसारमें बनी रहेगी।

ारी होकर
क्ति स्वदेश-
लिये जंग-
महासागर
कीर्त्ति इस
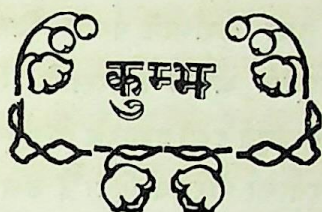
राजस्थानमें मेवाड़-भूमि वस्तुतः वीरप्रसविनी है। मेवाड़के राणा कुम्भ यथार्थमें बड़े वीर पुरुष थे। शत्रुके राज्यमें किसी प्रकारसे विजय-पताका उड़ाना ही सच्चे वीरका लक्षण नहीं है। देश, काल और पात्रका विचार न कर जहां तहां तलवार निकालना भी सच्चे वीरका स्वभाव नहीं है। ऐसे वीर जब किसी बलिष्ठ व्यक्तिको देखते हैं, उस समय एक बलिष्ठ समाजके नेता बनकर गुप्त रीतिसे उस व्यक्तिका नाश करते हैं। कुसमयमें अचानक अत्याचार द्वारा उसे डराते हैं। वे न्याय-उपदेश नहीं सुनते तथा नर-रक्तसे चारों दिशाओंको रँग देते हैं। उस समय मैं उन्हें सच्चा वीर कहनेके बदले नीच तथा दुष्ट कहूंगा। सच्चे वीर इस प्रकारकी नीचता द्वारा अपना उत्थान नहीं चाहते। उनका हृदय सदा उच्च भावोंसे पूर्ण रहता है। जिस प्रकार वे युद्ध-स्थलमें अपनी वीरताका परिचय देते हैं उसी प्रकार अन्य स्थानोंमें अपनी कोमलताका भी परिचय देकर सबके प्रीति-भाजन होते हैं। वे किसी प्रकार अपनी साधनासे विचलित नहीं होते तथा किसी प्रकार उनका

महत्व नीचताके कीचड़में नहीं फंसता। घोरसे घोर विपत्तिमें भी वे न्याय तथा कर्त्तव्यके पथसे विचलित नहीं होते। सच्चे वीर नियमपूर्वक अपनी धर्मरक्षाके लिये सदा प्रस्तुत रहते हैं। मेवाड़के राजपूत इसी प्रकारके वीर पुरुष थे। इन लोगोंने जिस प्रकारकी वीरताका परिचय दिया है उस प्रकारकी वीरता दुर्दान्त पाठान, विजयाभिलाषी मुगल तथा अंग्रेज सेनापति भी नहीं दिखला सके।

यदि शाहबुद्दीन ग़ोरी धूर्त्तता न करता तो दृषद्वती नदीके तटपर क्षत्रियोंके रक्तसागरमें भारतका सौभाग्य-सूर्य्य इतनी शीघ्रतासे अस्त नहीं होता। यदि अकबर बादशाह गुप्त रीतिसे जयमलकी हत्या न कराता, तो चित्तौड़ राज्य मुगलोंके हाथों न जाता और न चित्तौड़की सहस्रों ललनाएं अग्निकुण्डमें प्राण ही त्यागतीं। यदि मीरजाफर तथा जगतसेठ लार्ड क्लाइवके सहायक न होते तो पलासीके युद्धके बाद बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा ब्रिटिश :कंपनीके अधिकारभुक्त होना कठिन था। भारतवर्षमें अनेक वीर अपने वीरत्वको कलंकित कर गये हैं परन्तु राजपूतोंकी वीरतामें किसी प्रकारके कलंककी कालिमा नहीं लगी है। कृतज्ञता, आत्मगौरव तथा विश्वस्तता राजपूतोंके मूल्य धर्म हैं।

किसी राजपूतसे पूछिये कि संसारमें सबसे घोर पाप क्या है? वह शीघ्र ही उत्तर देगा कि अकृतज्ञता और अविश्वास ही सबसे घोर पाप है। राजपूतोंका कथन है कि अकृतज्ञ और

अविश्वासी मनुष्य यमराजके यहां असह्य क्लेश भोगता है। मैं यहां मेवाड़के उस पुरुषका पवित्र चरित्र वर्णन करता हूं जिससे ज्ञात होगा कि वीरत्वकी रुद्र मूर्त्ति और माधुर्यकी कमनीय कान्ति एक स्थानमें किस भांति मिलती है। राणा कुम्भका चरित्र इन्हीं उच्च गुणोंसे परिपूर्ण है। राणा कुम्भने १४१९ ई०में मेवाड़के राज्यसिंहासनको सुशोभित किया था। उक्त वीर मेवाड़के इतिहासमें साहस, पराक्रम तथा शासन-दक्षताके लिये प्रसिद्ध है।

राणा कुम्भने अपने पचास वर्षके शासन-कालमें अनेक शुभ कार्य्य किये हैं। परन्तु वे अधिक कालतक शान्तिसुख नहीं भोग सके। देशकी स्वाधीनताके रक्षणार्थ उन्हें बलिष्ठ शत्रुसे युद्ध करना पड़ा। खिलिजीके वंशजोंकी शक्तिके ह्रास होते ही कई मुसलमान सूबेदार दिल्लीश्वरकी अधीनता त्यागकर स्वाधीन हो गये। इन लोगोंमें मालवा और गुजरातके सूबेदार मुखिया गिने जा सकते हैं। राणा कुम्भके सिंहासनारूढ़ होनेके समय ये दोनों राजा ही पराक्रमशाली थे। १४४० ई०में इन दोनों राजाओंने बहुत बड़ी सेना लेकर मेवाड़पर आक्रमण किया। राणा कुम्भ एक लाख सेना तथा १४०० हाथियोंका एक दल लेकर अपने देशकी रक्षाके लिये प्रस्तुत हुए। मेवाड़ तथा मालवा राज्यके बीचकी भूमिमें युद्ध हुआ।

इस युद्धमें राणा कुम्भकी जीत हुई। इससे वीर-प्रसविनी मेवाड़की स्वाधीनता अटल रही। मालवाके अधिपति कुम्भके

हाथों बन्दी हुए। इसी स्थानपर महापराक्रमशाली कुम्भके पवित्र चरित्रकी माधुर्यताका विकास पाया जाता है। कुम्भने पराजित शत्रुके प्रति असभ्य व्यवहार नहीं किया। वे वीर धर्मके अनुसार युद्धमें प्रवृत्त थे। विजयकी आशासे पूर्ण पराक्रमके साथ लड़ते रहे। विजयी होनेके पश्चात् भी उन्होंने वीर धर्मकी अवहेलना नहीं की। कुम्भने सच्चे वीरकी तरह पराजित तथा शरणापन्न शत्रुको सम्मानित किया। उन्होंने मालवाके राजाको क़ैदसे ही मुक्त नहीं किया वरन् उन्हें बहुत सा धन देकर मालवा भेज दिया। वीर पुरुषोंके चरित्र ऐसे ही महत्व और औदार्य्यपूर्ण होते हैं।

मेवाड़ने पन्द्रहवीं शताब्दीमें वीरत्वकी रक्षा की थी। राजपूतोंका यह असामान्य चरित्र संसारके समस्त वीर पुरुषोंके लिये शिक्षाप्रद है।

दाकिरका युद्ध

मेवाड़के अद्वितीय वीर राणा प्रतापसिंह अब इस संसारमें नही हैं। उनकी अनन्त कीर्तिकी कहानी आज भी राजस्थानमें चारों ओर सुनी जाती है। राजपूत लोग उनमें देवता-तुल्य श्रद्धा और भक्ति करते हैं। उनका बड़ा लड़का अमरसिंह उनकी जगह राज्य करता था। प्रतापसिंह जिस समय स्वाधीनताकी रक्षाके लिये जङ्गलों जङ्गलों मारे फिरते और अनेकों कष्ट सहते थे उस समय अमरसिंह भी उनके साथ था। आठ वर्षकी अवस्थासे ही अमरसिंह अपने पिताके साथ रहता था। इसीसे उसमें कष्ट सहने तथा परिश्रम करनेकी शक्ति आ गयी थी। पिताके साथ सदा कष्टमें ही रहनेके कारण वह बहुत उद्योगी हो गया था। स्वाधीनताके लिये पिताका स्वार्थत्याग देखकर वह भी स्वाधीनता-प्रिय हो गया था।

अमरसिंहको देखकर प्रतापसिंहको एकबार सन्देह हुआ कि वह राज्य-रक्षाका क्लेश नहीं सहन कर सकेगा, अतः उन्होंने कहा था,—"इस कुटीकी जगह बहुमूल्य प्रासाद बनेगा और हमलोगोंने जिस स्वाधीनताके लिये इतना कष्ट सहन किया है वह इसी कुटीके साथ लुप्त हो जायगी।" पिताके मरते समय-

की बात अमरसिंहके दिलमें गड़ गयी थी। अमरसिंह मेवाड़के सिंहासनपर बैठकर सच्चे राजधर्मका पालन करने लगे थे। प्रतापसिंहकी मृत्युके आठ वर्ष बाद मेवाड़का प्रधान वैरी अकबर मर गया। इन दिनों अकबर ऐसे ऐसे झंझटोंमें फंसा रहा कि उसे मेवाड़पर आक्रमण करनेका अवसर ही नहीं मिला। अतः अमरसिंहको अपने पिताके वैरीके साथ नहीं लड़ना पड़ा। उस समय मेवाड़में चारों ओर शान्तिदेवीका राज्य था। अमरसिंह निर्विघ्न राज-धर्मका पालन करता था। उसने राज्य-शासनके नियम बनाये। राज्यकर निश्चय किया। उसने एक अट्टालिका बनवायी जो 'अमर महल'के नामसे प्रसिद्ध है। आज भी 'अमरमहल' राजस्थानके गौरवका कारण समझा जाता है।

अमरसिंह बहुत दिनों तक शान्तिसे नहीं रह सका, मुगलोंमें भी मेवाड़के जीतनेकी इच्छा थी। अकबरकी मृत्युके बाद उसका पुत्र जहांगीर दिल्लीके सिंहासनपर बैठा। चार वर्ष तक तो वह बलवाइयोंके दबानेमें लगा रहा परन्तु इसके बाद उसे राज्य बढ़ानेकी चिन्ता हुई। आर्य्यावर्त्तके प्रायः सभी देश उसके अधिकारमें थे। छोटे २ राजा जो थे उन लोगोंने भी इसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। केवल मेवाड़ने ही इसकी अधीनता स्वीकार नहीं की। प्रातःस्मरणीय प्रतापसिंहके पुत्र अमरसिंहने मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार कर वीर धर्मका अपमान करना उचित नहीं समझा। जहांगीर सबसे पहले इसी राज्यपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये प्रस्तुत हुआ।

अनेकों युद्ध करके, असंख्यों रुपये खर्च करके एवं हजारों वीरोंको कटवाकर उसका पिता मेवाड़पर अपना अधिकार नहीं कर सका था। आज उसी राज्यको अधीन बनानेके लिये जहांगीर असंख्य सैनिकोंके साथ युद्ध-स्थलको चला।

इसी तरह मुगल सेना मेवाड़ नगरके सदर दरवाजेपर पहुंची। प्रतापसिंहके नहीं रहनेसे आज मेवाड़ अन्धकारमय मालूम पड़ता है। इसी अन्धकारमें कहीं कहीं आलोककी प्रभा नजर आती है। कुछ स्वाधीनता भक्त राजपूतोंने वीरताकी महिमाका परिचय देना उचित समझा। वे लोग प्राण देकर भी स्वाधीनताकी रक्षाके लिये तैयार हो गये। प्रतापसिंहके महामन्त्रको स्मरणकर इन लोगोंने स्वाधीनताकी रक्षाके लिये मुसलमानोंका सामना किया।

मेवाड़के इतिहासमें १६०८ ई० चिरस्मरणीय रहेगी। इसी समय मेवाड़के राजपूतोंने मेवाड़की स्वाधीनताकी रक्षाके लिये अपने प्राण विसर्जन किये। अमरसिंह सम्राट्की अधीनता स्वीकार करनेको तैयार था परन्तु मेवाड़के वीर राजपूतोंने अपनी महाप्राणताका परिचय देकर उसे दिल्ली सम्राट्के विरुद्ध खड़ा होनेके लिये विवश किया। साहसी चन्दावत वीर प्रतापके पवित्र वाक्योंका स्मरणकर अन्यान्य वीरोंको भी युद्धके लिये उत्तेजित करने लगे। उनकी तेजस्विता देखकर अमरसिंह अपने अपने पहले संकल्पपर शोक प्रकट करता हुआ युद्धके लिये अग्रसर हुआ। १६०८ ई० में मुगलोंके साथ देविर

नामक स्थानमें राजपूतोंकी लड़ाई हुई। मुगल सेना ज्योंही भीतर घुसी त्योंही साहसी राजपूत उससे भिड़ गये।

बहुत देरतक लड़ाई होती रही अन्तमें मुसलमान लोग हार गये। देविर नामक स्थानमें राजपूतोंकी जय हुई और मेवाड़की स्वाधीनता बनी रही।

साहसी कन्वकी सहायतासे अमरसिंह इस युद्धमें विजयी हुआ था। तबसे इस वीर पुरुषके वंशज कन्वावत कहे जाने लगे। साहसी कन्वने एक समय अपनी वीरतासे वीर भूमिके गौरवकी रक्षा की थी। बलके मदसे मतवाले मुसलमान इसी वीरके पराक्रमसे पराजित हुए और उन्हें विवश होकर सन्धि करनी पड़ी।

मुगल-सम्राट् अकबरकी मृत्युके पश्चात् उसका पुत्र कुमार सलीम अपना नाम जहांगीर रखकर दिल्लीके रत्नसिंहासनपर बैठा। उसने सारे भारतवर्षपर अधिकार प्राप्त करनेकी चेष्टा की थी। उसका पिता जिस शक्तिसे गौरवान्वित था वह भी वैसा ही शक्तिशाली होनेके लिये यत्न करने लगा। पराक्रमी राजपूतोंके राज्यपर अकबरकी आंखें गड़ गयी थीं। मेवाड़के प्रातःस्मरणीय प्रतापसिंह मुगल सेनाओंसे देशके गौरव एवं इसकी स्वाधीनताको रक्षा बहुत दिनोंतक कर चुके थे। जहांगीर प्रतापसिंहकी वीरता एवं राजपूतोंकी तेजस्विताके विषयमें भली भांति जानता था। इस बार वह पुण्यभूमि मेवाड़को पराधीनताको बेड़ीसे जकड़नेके लिये अग्रसर हुआ। इस समय प्रतापसिंह स्वर्गमें राज्य करते थे। वीर भूमिमें अब प्रतापकी वह वीरता नहीं थी। यह सुयोग पाकर दिल्लीके सम्राट्ने चित्तौरके प्राचीन दुर्गको हस्तगत कर लिया। चित्तौराधिपति आत्मरक्षाके निमित्त पार्वत्य प्रदेशके निर्जन जङ्गलमें चले गए। राज्यकी अन्तिम सीमापर अन्तल नामक एक दुर्ग था।

सम्राट्ने इस दुर्गपर भी अपना अधिकार जमा लिया।

इतना होनेपर भी राजपूत वीर हतोत्साह नहीं हुए। जिस स्वाधीनताके गौरव, स्थिर प्रतिज्ञताकी महिमा एवं वीरत्वकी गरिमासे राजपूत लोग एक समय प्रसिद्ध थे वही गौरव, वही महिमा और वही गरिमा आज भी राजपूतोंके नस नसमें पैठी हुई है। चित्तौरके अधिपतिने प्राचीन स्वाधीनताकी रक्षाके निमित्त दृढ़ प्रतिज्ञा की। राजपूतानाके राजपूत वीर अपने नष्ट गौरवके उद्धारके निमित्त प्राणपणसे तैयार हो गये। इसी समय राजपूतानाके एक राजपूत वीरने अपनी महाप्राणताका परिचय दिया और तेजस्विताके साथ प्राण त्याग करके सदाके लिये कीर्त्ति स्तम्भ स्थापित कर दिया।

मेवाड़के राजपूतगण दुर्गम पार्वत्य प्रदेशमें एकत्रित हुए, राणाने पराक्रमी शत्रुको परास्त करनेके निमित्त उन्हीं लोगोंसे सम्मति ली। इस समय सब लोगोंने अपनी वीरता दिखलानेके निमित्त दृढ़ प्रतिज्ञा की। उनकी पवित्र भूमि शत्रुओंके अधिकारमें है, उनके दुर्गपर शत्रुकी पताका उड़ रही है। शत्रुके भयसे वे पार्वत्य प्रदेशके आश्रयमें हैं। यह उनके लिये सह्य नहीं था वे इस समय मिलकर शत्रुसे बदला लेनेकी चेष्टामें लगे। वीर भूमिके साहसी एवं रणकुशल चन्दावत* और शक्तावत† राजपूत भी एकत्रित हुए।

---

* प्राचीन कालमें चित्तौरके एक राजाके ज्येष्ठ पुत्रका नाम था चन्दा। इसीसे उसकी सेनाके वीर चन्दावत कहलाते थे।

† राणा उदयसिंहके पुत्रका नाम था शक्त। उन्हींके दलके वीर शक्तावत कहलाते थे।

इस समय वे लोग अपने पूर्वपुरुषोंकी तेजस्विताले उत्तोजित होकर अपने स्वामीकी आज्ञा पालन करनेके निमित्त प्राणपण से तैयार थे। चन्दावत वीरोंने सेनाके अग्रभागमें रहनेकी इच्छा प्रकट की। शक्तावत वीर भी आगे रहनेके लिये लालायित थे। दोनोंने सेनाके अग्रभागमें रहनेकी प्रतिज्ञा की। दोनों दलके वीर युद्धसे इस बातकी मीमांसा करनेको तैयार हुए परन्तु राणाने अपने कौशलसे दोनोंको रोक दिया। उन्होंने गम्भीर स्वरमें कहा :—"जो शत्रुके अधिकृत दुर्गमें पहले प्रवेश करेगा उसीको सेनाके अग्रभागमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त होगा।" चन्दावत और शक्तावत वीर राणाका यह आदेश सुनकर गौरव एवं सम्मान पानेके निमित्त अलौकिक उत्साहके साथ शत्रुके दुर्गमें प्रवेश करनेकी चेष्टा करने लगे।

मेवाड़के अन्तर्गत समतल भूमिमें एक दुर्ग था। यह दुर्ग राज्यकी एक सीमापर राजधानीसे अठारह मीलकी दूरीपर था। यह दुर्ग बहुत ऊंचा था। इस दुर्गकी चहारदिवारीके चारों ओर एक स्रोतस्विनी नदी बहती थी। चहारदिवारी बहुत ऊंची और दृढ़ थी। इसका शिखर नभमण्डलमें प्रसारित होकर इसकी विशालताका परिचय देता था। दुर्गमें जानेकी केवल एक ही राह थी। यह मार्ग लोहेके सिंह दरवाजेसे बन्द था। रात्रिकी शान्ति भी भङ्ग न हुई थी कि चन्दावत और शक्तावत वीर दुर्गकी ओर चल पड़े। चारणगण संगीत द्वारा दोनों दलोंकी प्रशंसा करके वीरोंको उत्तेजित करने लगे। प्रत्येक दल

के वीर समरसङ्गीतसे उत्साहित होकर भिन्न भिन्न मार्गसे अग्रसर हुए। सवेरे ही शक्तावत वीर दुर्गके द्वारपर पहुंचे। इस समय शत्रुपक्षवाले निरस्त्र थे। आक्रमणकी बात सुनते ही क्षण-भरमें वे लोग अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित होकर दुर्गकी चहारदि-वारीपर खड़े हो गए। राजपूतोंने प्रबल वेगसे उनपर आक्रमण किया और मुगल सैनिक दृढ़तासे उनकी गति रोकने लगे।

इधर चन्दावतगण नदी पार करके दुर्गकी ओर आ रहे थे, दुर्गकी चहारदिवारीपर चढ़नेके लिये वे लोग अपने साथ काठ-की सीढ़ी भी लाये थे, शक्तावत दलके नेताने यह देखा। उनके पास कोई सीढ़ी नहीं थी अतः वे दुर्गके द्वारको तोड़कर चन्दा-वत वीरोंसे पहले शत्रुके प्रदेशमें जानेको तैयार हुए। इधर गो-लियोंके आघातसे चन्दावतके सेनानायक गिर पड़े। मुगल-सेना दोनों दलोंको समान भावसे रोकने लगी। शक्तावत सैनि-कोंके तेजस्वी नायकको वे परास्त नहीं कर सके। वे जिस हाथी पर थे उसी हाथीसे दुर्गद्वार तोड़नेकी चेष्टा करने लगे। इस द्वारमें चोखे चोखे लोहेके कांटे लगे हुए थे अतः हाथी उसपर अपना बल प्रकाश नहीं कर सका। यह देखकर उन्होंने हाथीसे उतर वक्षस्थलको द्वारसे भिड़ा दिया और महावतको हाथीसे धक्का देनेकी आज्ञा दी। महावतने स्वामीकी आज्ञाका पालन किया। तेजस्वी वीरकी पीठपर हाथीका आघात लगतेही द्वार टूट गया। वीर पुरुष अपनी प्रधानताकी रक्षाके निमित्त धीर भावके साथ लोहेके कांटोंको वक्षस्थलसे आलिङ्गनकर सदाके लिये स्वर्गमें

चला गया। वीर श्रेष्ठके इस वीरत्वकी कीर्त्तिसे पवित्र भूमि और भी पवित्रतर हुई।

शक्तावतगण अपने स्वामीकी इस अलौकिक तेजस्विताසे भी अभीष्ट सम्मान प्राप्त नहीं कर सके। वे लोग सेनानायकके मृत शरीरके ऊपरसे होकर दुर्गके द्वारपर पहुँचे और युद्ध करने लगे। इधर चन्दावत वीरोंका सेनानायक मारा गया सही परन्तु उनमेंसे एक मनुष्य नायक बनकर सैनिकोंको लड़नेके लिये उत्तेजित करने लगा। उसने अपने नायकके शरीरको अपनी पीठपर बाँध लिया और बर्छा घुमाता हुआ मार्ग साफ करते हुए दुर्गद्वार पर पहुंचा। अन्तमें मृत स्वामीका शरीर दुर्गके भीतर फेंककर बड़ी जोर शोरसे बोला—"चन्दावत सबसे पहले दुर्गके भीतर घुसे अतः वे ही युद्धमें आगे रहेंगे।"

वीर पुरुषकी देशभक्ति

शेरशाहके पराक्रमसे १५४३ ई० के पश्चात् सम्राट् हुमायूं-को राजच्युत हो भग जाना पड़ा। जो मणिमुक्ता सुशोभित सिंहासनपर बैठते थे आज वे भिक्षुककी भांति इधर उधर मारे फिरते हैं। अपने लिये, अपने प्राणाधिक पुत्रके लिये तथा प्रेम-प्रतिमा प्रणयिनीके लिये आज उन्हें दूसरेके ऊपर निर्भर करना पड़ता है। समस्त भारतवर्षके अद्वितीय अधीश्वर अकबरका पिता एक दिन इस दुरवस्थामें था। जिन्होंने अपनी क्षमताके बल काबुलके पार्वत्य प्रदेश, आर्य्यावर्त्तकी पवित्र भूमि एवं दक्षिणके प्रशस्त क्षेत्रमें अपनी विजयपताका उड़ाई थी उनका जन्म वि-स्तीर्ण मरुभूमिके एक साधारण जनपदके सामान्य गृहमें हुआ था। वे दूसरेके आश्रयमें कालक्षेप कर रहे थे।

शेरशाह दिल्लीके सिंहासनपर बैठा। दिल्लीकी अर्द्ध चन्द्र-चिह्नित पताका आज मुगल वंशका गौरव न बतला कर शूर वंशको गौरवान्वित कर रही है। अमीर उमराव इस समय शूर वंशके आदेश-पालनमें व्यस्त हैं। शेरशाहने अपने पराक्रमसे हुमायूंको भारतवर्षसे निकाल दिया सही पर वह समस्त भारत-

वर्षपर आधिपत्य नहीं जमा सका। दिल्लीके सिंहासनपर बैठकर वह राज्यको बढ़ानेकी चेष्टामें लगा।

वीर-भूमि राजपूतानापर उसकी आंख गड़ी थी। अस्सी हजार सेना लेकर शेरशाहने माड़वारपर आक्रमण किया।

माड़वार प्रकृतिकी कमनीय शोभासे अलंकृत नहीं है। मनोहर वृक्षलता एवं शस्य समाकीर्ण श्यामल भूमि उसकी शोभाको नहीं बढ़ाती। विस्तीर्ण बालूका समुद्र माड़वारकी भीषणताका परिचय देता है। मालूम होता है कि माड़वारकी प्राकृतिक मनोहारिणी शोभा भयंकरतामें परिणत हो गई है। इस समय तक पराक्रमी राठौर वीरोंने अपूर्व वीरताके साथ इस मरुस्थलकी स्वाधीनताकी रक्षा की थी। शेरशाह इस गौरवको नष्ट करना चाहता है यह बात माड़वार निवासियोंको मालूम हो गई। गरीयसी जन्मभूमिकी स्वाधीनताकी रक्षाके निमित्त राठौर वीर तैयारी करने लगे। देखते देखते एक बड़ी सेना इकट्ठी हो गई। मरुस्थलके अधिपति महाराज मालवदेव पचास हजार साहसी वीरोंको लेकर दिल्ली सम्राट्की गति रोकनेकी चेष्टामें लगे।

वीर-भूमिके वीरत्वका गौरव स्थिर रहा। पचास हजार राठौर वीरोंके पराक्रमसे अस्सी हजार मुसलमानोंकी गति रुक गई। हुमायूंके विजेताको मरुस्थलके अधिपतिके सामने सिर नीचा करना पड़ा। राठौरोंके शस्त्राघातसे व्याकुल होकर शेरशाह भागनेका उपाय सोचने लगा। परन्तु मालवदेवके पराक्रमके

सामने उसकी यह चेष्टा भी निष्फल हुई। चतुर मुसलमान राजाने यहांपर धूर्त्तताका अवलम्बन किया। मुसलमानोंकी धूर्त्ततासे ही भारतका सर्वनाश हुआ। शाहबुद्दीन गोरीकी धूर्त्ततासे पृथ्वीराज द्रृषद्वती नदीके तटपर सदाके लिये सो गए। अलाउद्दीनकी धूर्त्ततासे ईश्वरकी सृष्टिकी एक अपूर्व रमणी पद्मिनीकी देह भस्म हो गई। इस समय शेरशाहकी धूर्त्ततासे राठौर वंशका सर्वनाश हुआ चाहता है। शेरशाहने अपने नामसे एक पत्र लिखा।

बड़ी कुशलतासे यह चिट्ठी मालवाके प्रधान प्रधान सरदारों-की ओरसे लिखी गई थी। इस पत्रमें उन लोगोंने लिखा था कि हमलोग मालव राजासे क्रुद्ध हैं। युद्धके समय हमलोग अपने सैनिक दलके साथ आपका साथ देंगे। धूर्त्त मुसलमानों-की चतुरतासे यह पत्र मालव राजाको हस्तगत हुआ। पत्र पा-कर मालव राजा स्तम्भित हो गए और उन्होंने अपने सरदारों-को विश्वासघातक समझा। धूर्त्तकी धूर्त्तता फलवती हुई। मालवदेव सरदारोंसे अलग होनेकी चेष्टा करने लगे। इस कार्य्या-से तेजस्वी राठौर सरदार कुम्भके हृदयपर बड़ा भारी आघात पहुंचा। कुम्भने मालवदेवको बहुत समझाया, सनातनधर्मका उल्लेख करते हुए उन्होंने अपनी विश्वस्तता प्रमाणित की, मुसलमानोंकी धूर्त्तताकी बात कह कर उन्होंने क्षत्रियोंको वि-श्वासी सिद्ध करना चाहा परन्तु मालवदेवने एक न सुनी। मालवदेवका हृदय घोर अन्धकारसे आच्छन्न था कुम्भ उसे प्र-

काशित नहीं कर सका। कुम्भ चुप हो रहा। उसके भ्रू युगल सिकुड़ गए। ज्योतिर्मय नेत्रोंसे अग्निकी चिनगारियां निकलने लगीं। तेजस्वी वीर कुछ काल तक चिन्ता करता रहा पश्चात् शीघ्र ही "हर हर" कहता हुआ विपक्षियोंपर टूट पड़ा।

घोर युद्ध होने लगा। कुम्भ केवल दस हजार वीरोंको लेकर शेरशाहके अस्सी हज़ार सैनिकोंके साथ लड़ रहा था तोभी उसके हृदयमें भयका सञ्चार नहीं होता था। उसका उज्ज्वल मुखमण्डल और भी उज्ज्वल हो गया। पराक्रमी शत्रुने उसके पवित्र चरित्रको कलंकित किया था, शत्रुओंने वीर-धर्मको अपमानित किया था, आज वीर कुम्भ शत्रुओंके रक्तसे इस कलंकको धोनेके लिये तैयार है, समर-भूमिमें प्राणत्याग कर वह अपनी उज्ज्वल कीर्त्तिको और भी अधिक उज्ज्वल करना चाहता है। युद्धमें कुम्भने अलौकिक तेजस्विता दिखलायी। विपक्षीके असंख्य वीर समरभूमिमें गिरने लगे। उनके कितने ही वीर प्राण-रक्षाके लिये व्याकुल हो उठे। शेरशाह हताश हो गया, उसको दिशाएं अन्धकारमय दीखने लगीं। राठौर वीरोंका पराक्रम देखकर उसका हृदय भयसे कांपने लगा। उसी समय एक दूसरी वृहत् सेना उसकी सहायताके लिये पहुंची। कुम्भजब शत्रु-सैन्यको विध्वन्स करते करते थक गया था उसी समय एक दूसरी सेनाने उसपर आक्रमण किया।

पराक्रमी राठौर वीर यद्यपि इस सेनाको न हटा सके तो भी उन लोगोंने युद्ध–स्थलसे विमुख होकर अपनी भीरुताका

परिचय नहीं दिया। उन लोगोंने अपनी विश्वस्तता दिखलाने-की प्रतिज्ञा की थी। अतः तुच्छ प्राणकी ममतासे प्रतिज्ञाच्युत होना उन लोगोंने उचित नहीं समझा। मरुस्थलके पुण्यक्षेत्रमें शत्रुओंके भैरव कोलाहलके बीच इस तेजस्वी वीरकी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई।

कुम्भ वीरताके साथ लड़ते लड़ते अक्षय कीर्त्ति छोड़कर अनन्त धामको चला गया। उसके राठौर वीरोंने समरमें शत्रु-ओंका नाश करते करते अमरत्व प्राप्त किया। इन आर्य्योंकी कीर्त्तिकी महिमासे आर्य्यावर्त्तकी मरुस्थली सदा पवित्र समझी जायगी।

राठौर वीरोंकी वीरता देखकर शेरशाह चकित हो गया। मारवाड़की अनुर्वरताको लक्ष्य करके शेरशाहने कहा—"एक मुट्ठी बाजरेके लिये हमने भारतका साम्राज्य नष्ट किया।"

वीर बालक और वीर रमणी

जिस समय पराक्रमी मुगल सम्राट् अकबरने १५६८ ई० में चित्तौरपर आक्रमण किया उस समय स्वाधीनताप्रिय वीरगण प्रसन्नताके साथ अपनी जन्मभूमिकी रक्षाके निमित्त समरभूमिकी गोदमें सदाके लिये सो गये। राजपूत-कुल-गौरव जयमल जिस समय शत्रुओंके हाथ मारा गया उस समय सोलह वर्षके पुत्तने विजयपताका उड़ायी। उसी समय चित्तौरकी तीन वीरांगनाओंने स्वदेशके लिये आत्मोत्सर्ग किया। ये ललनायें कोमल कलेवरपर कठिन वस्त्र धारणकर और कोमल करोंमें कठिन शस्त्र लेकर मुगल सेनाकी गति रोकनेमें तत्पर हुईं। ये ललनायें शत्रुओंसे पीड़ित राजस्थानकी सच्ची वीरांगना एवं मूर्तिमती स्वाधीनता थीं।

पराक्रमी जयमल अब इस संसारमें नहीं है। इस पुरुष सिंहकी मृत्युसे वीर-भूमि वीरोंसे रहित हो गयी। चित्तौड़की रक्षा अब कौन करेगा? कट्टर मुगल दरवाजेपर खड़े हैं उन्हें कौन रोकेगा? स्वाधीनताकी लीला-भूमि आज पराधीनताकी बेड़ीसे जकड़ी जा रही है उसे कौन तोड़ेगा? वीर-भूमि इस समय हतोत्साह हो रही है ऐसे अवसरपर एक वीर बालक अपनी

पूज्य मातृ-भूमिके लिये प्राण देनेको तैयार हुआ। जयमल सदाके लिये चित्तौड़ छोड़कर चला गया था, पुत्तने उसके शून्य स्थानकी पूर्त्ति की।

पुत्त इस समय केवल सोलह वर्षका था। अभी यद्यपि बालक था तथापि साहस पराक्रम और क्षमतामें बड़े २ वीरोंसे बढ़कर था। पुत्तने मातासे विदा मांगी। कर्मदेवीने स्नेहसे पालित पुत्र-को बड़ी प्रसन्नताके साथ युद्धमें जानेकी आज्ञा दी। पुत्त प्रियत-माके निकट गया। कलावतीने भी प्रफुल्लचित्तसे अपने स्वामी-को विदा किया। उनकी बहन कर्णवतीने भी जन्मभूमिकी रक्षाके निमित्त अपने भाईको उत्तेजित किया। एक सोलह वर्ष-का बालक सच्चे वीरकी तरह सबसे विदा लेकर जन्म-भूमिकी रक्षाके लिये युद्ध-स्थलमें पहुंचा। मुगल सेना दो भागोंमें विभक्त थी। एक अकबरके सेनापतित्वमें थी और दूसरी किसी औरके। दूसरी सेना और पुत्तमें घमासान लड़ाई छिड़ गई। सम्राट् अक-बर पुत्तपर शस्त्र-प्रहार करनेके लिये दूसरी ओरसे बढ़ा। दो पहर चढ़े होंगे, अकबरकी सेना पुत्तकी ओर बढ़ रही थी अक-स्मात् उसकी गति रुक गई। सामने एक पर्वत था जिसपर हरे हरे पत्तोंसे लदे दो चार वृक्ष थे। इन्हीं वृक्षोंके निचले भागसे गोलियां आ रही थीं जिससे मुगल सेना व्याकुल हो उठी थी। सहस्रों गोलियोंको आते एवं अपने असंख्य सैनिकों-को पृथ्वीपर रक्त-शय्यामें शयन करते देखकर मुगल सेना चकित हो गई थी। जब अकबरने उन वृक्षोंके नीचे तीन वीर

स्त्रियोंको देखा तो उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। इनमें एककी उम्र अधिक थी पर शेष दो स्त्रियोंकी अभी उभड़ती हुई जवानी थी। तीनों स्त्रियां कवच पहनकर घोड़ेपर सवार थीं। तीनों स्त्रियां शस्त्र चलानेमें सुदक्ष जान पड़ती थीं। स्त्रियोंकी ऐसी वीरता देखकर अकबर चकित हो गया। अकबरने जब देखा कि केवल तीन स्त्रियोंके पराक्रमसे मेरी असंख्य सेना मारी गई तब उसने अपना सिर नीचा कर लिया।

जब पुत्तके साथ अकबरकी पहली सेना लड़ रही थी और अकबर स्वयं दूसरी सेना लेकर उसे परास्त करनेके लिये जा रहा था तब पुत्तकी माता, स्त्री एवं बहनसे न रहा गया। वे अपने स्नेहके एकमात्र पात्र पुत्तकी यह दशा न देख सकीं और अकबरकी सेनाकी गति रोकने लगीं। जन्मभूमिकी रक्षाके निमित्त अपना बलिदान आवश्यक समझकर ये तीनों स्त्रियां युद्ध-स्थलमें आ गईं। इन तीनोंके नाम थे कर्मदेवी, कमलावती और कर्णवती। वे अपने तुच्छ शरीरकी ममताको छोड़कर स्वदेशकी स्वाधीनताकी रक्षाके निमित्त युद्ध करनेमें तत्पर हुई थीं।

एक ओर सोलह वर्षका पुत्र और दूसरी ओर उसकी वृद्धा माता एवं अपूर्ण वयस्क प्रियतमा और बहन थीं। चित्तौरकी शक्तिरूपी ये तीनों देवियाँ तीनों अग्नियोंके समान दिल्ली सम्राट्की सेनारूपी ईन्धनको जलाकर भस्म करनेपर उतारू थीं। इस अपूर्व दृश्यकी अनन्त महिमाको आज कौन समझता है? इस

निर्जीव, जातीय-जीवनशून्य एवं वीरत्वरहित भारतमें आज कौन इस वीर बालक और इन वीर नारियोंकी पूजा करेगा?

दो पहरको लड़ाई प्रारम्भ हुई थी। सन्ध्यातक लड़ाई होती रही। किसीने विश्राम नहीं किया। असंख्य मुगल सैनिक मारे गये। इन स्त्रियोंने अकबरकी सेनाको आगे बढ़ने नहीं दिया। अकबर सच्चा वीर पुरुष था। वह इन तीन स्त्रियोंकी वीरतापर मुग्ध हो गया। उसने वीरताको सम्मानित करना चाहा और आज्ञा दी कि जो इन तीन स्त्रियोंको जीवितावस्थामें पकड़ लावेगा उसे बहुत सा धन-दौलत दिया जायगा।

उस समय अकबरके सैनिक पागलसे हो रहे थे, किसीने भी उसकी बातोंपर ध्यान न दिया। मुगल सेना लड़ती ही रह गई और तीनों स्त्रियां उन्हें रोकनेपर उद्यत रहीं। कर्णवतीको कई गोलियां लगी थीं अन्तमें वह म्लान पुष्पकी भांति पृथ्वीपर गिर पड़ी। पुत्रीकी यह दशा देखकर कर्मदेवी कातर न हुई। वह दूने उत्साहके साथ शत्रुओंसे लड़ने लगी। सहसा एक गोली आकर कमलावतीके बायें हाथमें लगी। कमलावतीने इस भीषण आघातको सहन कर लिया। वह एक हाथसे ही वार करने लगी।

उन्मत्त मुगल सेना गोलियोंकी वृष्टि करती ही गई और कुछ देरके बाद कमलावती भी पृथ्वीपर गिर पड़ी। कमलावती-को गिरे अधिक देर न हुई थी कि कर्णवती परलोक सिधारी। उधर पुत्त मुगलोंको परास्त करके पर्वतके निकट आया। उसने

अपनी आराध्या जननी, प्रियतमा एवं बहनको पृथ्वीपर गिरे देखा। पुत्त यह देखकर क्रुद्ध हुआ और मुगल सैनिकोंको नष्ट करने लगा। इधर कमलावती और कर्मदेवीके प्राण कंठगत हो रहे थे। पुत्तने इन दोनोंको उठा लिया। सती कमलावती अपने पतिके बाहुपर मस्तक रखकर सदाके लिये स्वर्गको गई।

कर्मदेवीने अपने पुत्रको जन्मभूमिकी रक्षाके निमित्त आदेश देकर प्राण विसर्जन किया। पुत्र थोड़ी देर तक सोचकर "हर हर" करता हुआ शत्रुओंकी सेनामें घुस गया। सोलह वर्षका बालक असंख्य सैनिकोंको नष्ट करके जन्मभूमिकी गोदमें सदाके लिये सो गया। पुत्र और उसकी स्त्रीके शरीर एक चितापर जलाये गये। कर्मदेवी और कर्णवती एक चितापर सुलायी गयीं। वे तो परलोकको गयीं परन्तु उनकी अनन्त और अक्षय कीर्त्ति सदा बनी रहेगी।

आत्म-त्याग

इस ग्रन्थमें राजपूतोंकी वीरता एवं राजपूत रमणियोंकी तेजस्विताका दृष्टान्त भली भांति दिखलाया गया है। इस तरह के उदाहरण संसारके इतिहासमें बहुत कम मिलते हैं। यदि इतिहासके पन्नोंको उलट जायँ और भली भांति अवलोकन करके ढूंढ़ें कि संसारकी कौन सी जाति बहुत दिनोंतक अत्याचार सहन करके भी अपने जातीय गौरव तथा सभ्यताकी रक्षा कर सकी है तो मुझे निष्पक्ष भावसे कहना पड़ेगा कि राजपूत वीर ही इस अलौकिक गुणसे विभूषित थे। बारम्बार युद्धमें परास्त होनेसे उनका सर्वस्व नष्ट हो गया था, तलवारोंके आघातसे उनका शरीर पीड़ित हो रहा था, विपक्षी विजय प्राप्त करनेके पश्चात् उनपर घोर अत्याचार कर रहे थे तथापि वे अपने धर्मपर अटल रहे। संसारके इतिहासमें केवल राजपूत वीरोंने ही विपक्षियोंका घोर अत्याचार सहन करके उनकी अधीनता स्वीकार नहीं की और जातीय गौरवको सदाके लिये बनाये रक्खा। जब रोमनिवासियोंने ब्रिटेनपर अधिकार जमाया तब ब्रिटेननिवासी उनके साथ मिल गये और इसका परिणाम यह हुआ कि उनके गौरवरूपी रोपित वृक्षके सम्मान एवं मर्य्यादारूपी फल नष्ट हो गये। राजपूतोंने इस तरहकी कायरता कभी भी

नहीं दिखलायी। कई बार उनकी मूलसम्पत्ति नष्ट हो गई परन्तु उनके पवित्र धर्म एवं चरित्रमें कभी भी धब्बा नहीं लगा। कई बार राजपूतोंका राज्य दूसरोंके हाथमें चला गया, उन्हें जङ्गल जङ्गल मारा मारा फिरना पड़ा तोभी मातृभूमिके उद्धारके लिये उन लोगोंने धूर्त्तताका अवलम्बन नहीं किया। राजपूत वीर युद्धमें कभी भी पीछे नहीं देखे गये। स्वाधीनताकी रक्षा करनेमें वे कभी भी उदासीन नहीं दीख पड़े। राजपूत रमणियोंने विपक्षियोंके हाथमें पड़नेकी अपेक्षा युद्धमें प्राण त्यागना अच्छा समझा था। मेवाड़का एक वीर बालक युद्धस्थलमें सदाके लिये सो गया परन्तु उसने स्वाधीनताको जलाञ्जलि नहीं दी। मेवाड़की एक धायने स्नेहपालिता बालकको निठुर घातककी तलवारसे मारे जाते देखा पर उसने शिशुरक्षाकी अपेक्षा वंशके गौरवकी रक्षाको कहीं श्रेष्ठ समझा। मेवाड़के अधिपतिने अपने अपराधी पुत्रके घातकको पुरस्कृत किया, उसे दण्ड देकर पवित्र वीरधर्मको कलंकित नहीं किया। मेवाड़के कुल-पुरोहितने प्रसन्नताके साथ राजवंशके गौरव-रक्षणार्थ अपने हाथसे अपने प्राण विसर्जन किये। वीरता एवं साहसका ऐसा दृष्टान्त संसारके इतिहासमें अन्यत्र नहीं देखा जाता।

कुल-पुरोहितके अपूर्व आत्मत्यागकी कथा अनिर्वचनीय महत्वसे पूर्ण है। यदि संसारमें निस्स्वार्थता किसी रूपमें वर्त्तमान है तो इस आत्मत्यागी पुरोहितको मूर्त्तिमती निस्स्वार्थता कहनेमें कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। यदि उदारताके रहनेके लिये इस

संसारमें कोई स्थान है तो इस पुरोहितका हृदय। वस्तुतः मेवाड़ आत्मत्यागियोंकी लीलाभूमि है। पृथ्वीका कोई भी खण्ड इस विषयमें मेवाड़की समता नहीं कर सकता। अपने प्राण देकर दूसरेके प्राणकी रक्षा करना निस्सन्देह अलौकिक कार्य्य है। मेवाड़के पुरोहित ऐसा ही अलौकिक कार्य्य करके अपनी अक्षय-कीर्त्ति सदाके लिये छोड़ गये। इस "दानवीरकी" तुलना इस नश्वर जगतके क्षणस्थायी जीवोंके साथ नहीं की जा सकती।

सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें एक समय दो क्षत्रिय युवक शिकारके लिये कहीं जा रहे थे। इन दोनोंकी आकृतिमें कुछ भी विषमता नहीं मालूम होती थी। दोनोंके ही शरीर सुगठित और डीलडौल एकसे थे।

दोनों युवा यौवनकी तेजस्वितासे परिपूर्ण थे। इस तेजस्विताकी तीव्र ज्योतिके साथ साथ मधुरताका अपूर्व प्रकाश दोनोंके मुखमण्डलको विकसित करता था। दोनों युवकोंमें बड़ी ही प्रीति थी। आपसके सद्‌भावके कारण दोनों ही बहुत दिनोंसे प्रेम-भावके अपूर्व सुखको अनुभव करते थे। परन्तु न मालूम क्यों मेवाड़की मृगयाभूमिमें हठात् उनके सद्भावमें कुछ अन्तर पड़ गया। दोनों युवक किसी कारण शीघ्र ही एक दूसरेके विरोधी हो गये। ये दोनों तेजस्वी क्षत्रिय वीर महाराणा उदयसिंहके पुत्र थे। एकका नाम प्रतापसिंह एवं दूसरेका नाम शक्तसिंह था। एक वीरने अपने देशकी स्वाधीनताके रक्षणार्थ अलौकिक पराक्रम दिखलाया जिससे वे चिरस्मरणीय रहेंगे।

दूसरेने अपनेको देशका विरोधी बतलाया। एकने जातीय गौरवको बनाये रक्खा दूसरेने जातीय कलंकको आश्रय दिया। आज भाई भाईमें विरोध हो गया। यदि दोनों तेजस्वी वीर मिलकर रहते तो मेवाड़के गौरवसूर्यकी ज्योति और भी प्रकाशित रहती तथा राजपूत वीरको इतना कष्ट नहीं होता। शोक! दोनों भाई आपसमें लड़कर आज स्वयं कमजोर बन गये।

महाराणा उदयसिंहके जेष्ठ पुत्र थे प्रताप। अतः मेवाड़की गद्दी उन्हें ही मिली। उदयसिंहके द्वितीय पुत्र शक्तसिंह अपने बड़े भाईकी आज्ञामें रहकर अपना समय बिताते थे। शक्त बड़े ही तेजस्वी एवं कठोर हृदयके मनुष्य थे। एक समयकी बात है कि एक तलवारकी धारकी परीक्षा करनेके लिये बहुतसा सूत एकत्रित किया गया। तलवारके आघातसे इस मोटे सूतको दो टुकड़े करनेकी बात थी। शक्त वहीं बैठे थे उन्होंने गम्भीर भावसे कहा-"जो तलवार मांस और हड्डियोंको छेदन करेगी सूत काटकर उसकी परीक्षा करनी उचित नहीं है।" उपर्युक्त बातें कहकर शक्तने गम्भीर भावसे तलवारके प्रहार द्वारा अपनी अंगुली काट डाली। कटी हुई अंगुलीसे रक्तस्राव होने लगा। इस समय शक्तकी अवस्था केवल पांच वर्षकी थी। पांच वर्षके बालकने ऐसा अपूर्व साहस एवं ऐसी अलौकिक तेजस्विता दिखलायी। उम्रके साथ साथ उसका साहस और उसकी तेजस्विता भी धीरे धीरे बढ़ती गई। बड़े भाईके प्रति इसके हृदयमें जो द्वेषांकुर उत्पन्न हुआ वह भी धीरे धीरे बढ़ता ही गया।
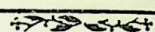
प्रतापसिंह भी छोटे भाईसे क्रुद्ध थे। किसी प्रकार भी इनके द्वेष एवं क्रोधकी मात्रा कम नहीं हुई। फलतः पूर्वकी नाईं उन्हें सद्भाव तथा एकताके सूत्रमें आबद्ध होनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ कि एक दूसरेके प्राण लेनेकी चेष्टामें लगे। एक समय प्रतापसिंह शस्त्र-क्रीड़ा-भूमिमें चक्रकी नाईं घोड़ेको चला रहे थे। उनके हाथमें एक तीव्र बर्छा शोभा पा रहा था। वे इसी क्रीड़ा-भूमिमें अश्वचालन शक्तिका परिचय दे रहे थे। इसी समय शक्त वहां पहुंचा। प्रतापने गम्भीर स्वरसे कहा—"आज इसी क्रीड़ा-भूमिमें द्वन्दयुद्ध करके हमलोग अपने विवादकी मीमांसा कर लें, आज देखा जाय कि तीव्र बर्छा चलानेकी शक्ति किसमें अधिक है।"

शक्त भी नहीं हटा, द्वन्दयुद्धकी तैयारी हो गयी। शक्तने गम्भीर स्वरमें बड़े भाईसे कहा-"क्या आप आरम्भ करेंगे?"

शीघ्र ही दोनों वीर बर्छा लेकर युद्ध करने लगे। दोनों तेजस्वी वीरोंका जीवन आज संशयमें है। इसी समय दोनों भाइयोंके बीच एक मधुरमूर्त्ति आविर्भूत हुई। दोनोंहीने इस मूर्त्तिको पूज्य दृष्टिसे देखा। साहसी आगन्तुक धीर भावसे युद्धोद्यत दोनों भाइयोंके बीचमें खड़ा हो गया। यह आगंतुक एवं तेजस्वी पुरुष पवित्र मेवाड़वंशकी मंगल-कामनासे पूर्ण देवस्वरूप उस कुलका पुरोहित था। आज ये महात्मा दोनों भाइयोंके प्राण बचाने तथा उनके विवादका निपटारा करनेके लिये खड़े हुए।

पुरोहित महाशयने धीरतायुक्त भावसे कहा-"यह क्रीड़ा-भूमि युद्धस्थल नहीं है। भाईसे लड़ना सच्चे वीरका काम नहीं

है। आप लोग युद्ध छोड़ दें। आप लोगोंके ये तीव्र बर्छे शत्रुओंके मुखमें जायं। आप लोगोंके तेजस्वी अश्व शत्रुओंकी रक्त-तरंगसे तरंगित हों। आप लोग अपने वंशकी मर्य्यादा नष्ट न करें। ऐसा न हो कि भाईके रक्तसे भाईका शस्त्र अपवित्र हो।" पुरोहितकी इन बातोंका कुछ भी फल नहीं हुआ। दोनों वीर एक दूसरेके खूनके प्यासे थे। पहलेकी ही नाईं दोनों तीव्र बर्छा चलाते रहे। पवित्र कुलका शुभाभिलाषी देवस्वभाव पुरोहितने यह देखा। पुरोहित और कुछ भी न बोल सका। उसी क्षण उसने तलवार निकालकर अपनी छातीमें घुसेड़ दी। मेवाड़की भलाईके लिये युद्धमें प्रवृत्त दोनों भाइयोंकी प्राणरक्षाके निमित्त कुलदेव पुरोहितने आज अपने प्राण विसर्जन किये।

प्रताप और शक्त यह देखकर चकित हो गये। पुरोहितका शव उन दोनोंके बीचमें पड़ा रहा। पुरोहितके पवित्र रक्तने उन लोगोंके शरीरको स्पर्श किया। इससे प्रतापसिंहको मार्मिक वेदना हुई। अब उन्होंने छोटे भाईपर शस्त्र चलाना बन्द कर दिया। प्रतापने तीव्र स्वरसे शक्तको अपने राज्यसे चले जानेकी आज्ञा दी। शक्तने बड़ेकी आज्ञा तो मान ली पर वह सम्राट् अकबरसे जा मिला। प्रतिहिंसाकी अग्निसे उसका हृदय धधकने लगा।

दोनों भाइयोंमें हल्दीघाटके युद्धके पश्चात् फिर भी मेल हुआ। शक्तने बड़े भाईका पराक्रम युद्ध-स्थलमें देखा। स्वदेशकी स्वाधीनताके रक्षणार्थ प्रतापका आत्म-त्याग देखकर शक्त मुग्ध हो गया। वह अपने भाईके पैरोंपर गिर पड़ा तबसे दोनों भाई प्रेमपूर्वक रहने लगे।

राजसिंहका राजधर्म

औरंगजेब दिल्लीके मयूरसिंहासनपर बैठा। अपने विश्वास-घातके बल वह निष्कंटक राज्य करने लगा। उसका वृद्ध पिता कारागारमें था। उसके सहोदर भाइयोंने राज्यकी आशा छोड़ घातकके हाथ प्राण गंवाये। निठुर सम्राट् दया तथा धर्मको जलांजलि देकर, अपने आत्मीय स्वजनोंका रक्तपात करके, विश्वस्त व्यक्तियोंको शोचनीय अवस्थामें छोड़कर स्वयं राज्य-सुख भोग रहा था। उस समय दो हिन्दू वीर धर्मान्ध सम्राट्के अत्याचारके विरुद्ध खड़े हुए। दक्षिणमें महाराष्ट्रपति शिवाजीने अपूर्व तेजस्विताके साथ हिन्दुओंके गौरवकी रक्षा की। आर्य्यावर्त्तमें मेवाड़के अधिपति राजसिंहने अलौकिक दृढ़ता दिखलाकर सच्चे क्षत्रियत्वका परिचय दिया।

औरंगजेब विशाल साम्राज्यका अधिकारी बनकर हिन्दुओं-से द्वेष करने लगा। धर्मान्धताके साथ साथ उसकी भोगस्पृहा बढ़ने लगी। उसने रूप नगरके अधिपति विक्रमशालकी कन्यासे विवाह करना चाहा। राजपूत रमणीको लानेके लिये शीघ्र ही दो हजार अश्वारोही भेजे गये। वह तेजस्विनी राजपूत कुमारी सहमत नहीं हुई। विधर्मी मुसलमान सम्राट्की महिषी बनकर उसने अपने वंशको कलंकित करना उचित नहीं समझा। वह घृणा एवं वैराग्यके साथ मुगल सम्राट्के इस परामर्शके

विरोध करनेपर उद्यत हुई। उसके हृदयमें राजसिंहके अपूर्व-गुण विराजमान थे। रूपनगरकी इस राजकुमारीने अलौकिक गुणसम्पन्न पुरुषसिंहसे विवाह करनेकी इच्छा की थी। मुगल-सम्राट् का यह अनुचित प्रस्ताव सुनकर वह स्थिर न रह सकी। क्रोध एवं अभिमानसे उन्मत्त होकर तेजस्विनी राज-कुमारीने राजसिंहको कहला भेजा :—

"राजहंसिनी सारसकी सहचरी होगी? जिस राजपूत-कुमारीके शरीरमें पवित्र रक्त प्रवाहित हो रहा है वह बन्दर-मुंहेको स्वामी कहकर ग्रहण करेगी? यदि मेरे सम्मानकी रक्षा न होगी, यदि चिर पवित्र आर्य-गौरव अकलंकित न रहेगा, यदि मुगल सम्राट् का कठोर हाथ मेरी मर्य्यादा नष्ट करनेके लिये उद्यत होगा तो प्रातःस्मरणीया पद्मिनी प्रभृति पतिव्रतायें जिस पथका अवलम्बनकर अनन्त सुखकी अधिकारिणी हुईं मैं भी प्रसन्नताके साथ उसी पथका अवलम्बन करूंगी।" रूप-नगरके पूजनीय कुलपरोहितने जाकर राजकुमारीकी सभी बातें राजसिंहसे कहीं। राजसिंह मर्यादा एवं सम्मानकी रक्षा करनेमें उदासीन नहीं हुए। वे एक दल साहसी राजपूत वीरों-को लेकर आरावलीपर्वतकी तराई पार करके रूपनगरमें पहुंचे। उनके पराक्रमसे मुगल सेना पराजित हुई। तेजस्वी क्षत्रिय वीर तेजस्विनी रमणीका उद्धार करके उसे अपनी राजधानीमें लाये, प्रबल प्रतापी विपक्षी होनेपर भी राजपूतोंके धर्म एवं सम्मानकी हानि नहीं हुई।
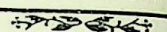
इधर औरंगज़ेबने अपना दुष्कर्म नहीं छोड़ा। हिन्दुओंको नीचा दिखलानेके लिये सम्राट्ने "जिजिया" कर लगाना चाहा। यह कर केवल हिन्दुओंको ही देना पड़ता था। उसकी आज्ञासे अम्बरके राजा जयसिंह पराक्रमी शिवाजीका प्रताप नष्ट करनेके लिये दक्षिणकी ओर चले। मारवाड़के अधिपति यशवन्तसिंह राजकीय कार्यके लिये काबुल भेजे गये। ये दोनोंही वीर मुगल-राज्यके अवलम्बन थे। इन्हींकी विश्वस्तता एवं युद्ध-कुशलताके कारण सम्राट्की कई बार संकटोंसे रक्षा भी हुई थी। इन लोगोंकी इच्छा 'जिजिया' लगानेकी नहीं थी। मुगल सम्राट्ने इन्हें विघ्नस्वरूप समझकर गुप्त रीतिसे इन्हें विष दे देनेकी आज्ञा भेजी। इस आज्ञानुसार कार्य किया गया। दो राजपूत वीर विश्वासघातीपर विश्वास करनेके कारण विदेशमें सदाके लिये इहलोक त्यागकर परलोकको सिधारे। यशवन्तसिंहकी स्त्री अपने बच्चेको लेकर काबुलसे स्वदेश आ रही थीं कि मुगल सम्राट्ने उन्हें रोक रखनेकी आज्ञा भेजी। उनके रक्षक पराक्रमी दुर्गादासने इस आज्ञाका विरोध किया। ढाई सौ साहसी राजपूत वीरोंने पांच हजार मुगल सैनिकोंको रोक रक्खा। इसी समय यशवन्तसिंहकी स्त्री निरापद स्थानमें लायी गयीं। इधर राजसिंह भी स्थिर नहीं थे।

इन्होंने अग्रसर होकर अजीतसिंह और उनकी माताकी रक्षा की। इनकी आज्ञासे उन लोगोंके निवासस्थानकी मुगलोंसे रक्षा करनेके निमित्त राजपूत वीर नियुक्त किये गये। राणा

राजसिंह स्वयं प्रधान रक्षक थे। क्षत्रिय श्रेष्ठ राजसिंहने क्रूरप्रकृति औरंगजेबकी कठोर आज्ञाकी परवा न करके अनाथ बालक एवं उसकी अनाथ जननीकी रक्षा की।

औरंगजेबको 'जिजिया' कर लगानेपर उतारू देखकर राजसिंह बड़े ही दुःखी हुए। भारतवर्षकी चिरप्रसिद्ध हिन्दू जाति अपमानित की जायगी, मुसलमानोंके हाथसे आर्य्यगण पीड़ित किये जायंगे, धर्मान्ध सम्राट् अपने धर्मावलम्बियोंको छोड़कर केवल हिन्दुओंको अर्थदण्ड देगा—ये बातें उनके हृदयमें चुभ गईं। धर्मनिष्ठ राजपूत वीर निर्भीकताके साथ इस प्रस्तावका विरोध करनेके लिये तैयार हुआ। उसकी नाड़ियोंमें रक्त-धारायें वेगसे बहने लगीं, हृदयमें अपूर्व तेजस्विताका विकास हुआ, क्रोध, क्षोभ और अपमान उसके मानसक्षेत्रमें उत्पन्न होकर युद्ध करने लगे। उन्होंने अपनेको हिन्दू जातिका नेता समझकर हिन्दुओंकी ओरसे औरंगज़ेबको पत्र लिखा :—

"सर्व शक्तिमान ईश्वरकी महिमा प्रशंसनीय है। सूर्य्य और चन्द्रमाकी भांति गौरवान्वित आपकी वदान्यता प्रशंसित हो। मैं आपका शुभाभिलाषी हूं। यद्यपि मैं आपसे अलग रहता हूं तोभी मैं सच्चा राजभक्त हूं। मैं सदा आपके राज्यकी रक्षाकी चिन्तामें रहता हूं। आज मैं एक साधारण बातका अनुरोध करता हूं और आशा है कि आप इस ओर अवश्य ध्यान देंगे।

"मुझे मालूम है कि इस शुभाकांक्षीसे युद्ध करनेमें आपने बहुतसे धनका अपव्यय किया है।

"आप अपने शून्य भाण्डारको भरनेके लिये एक नया कर लगाना चाहते हैं।

"आपके पूर्वपुरुष महम्मद जलालुद्दीन अकबरने सम-दर्शिता एवं दृढ़ताके साथ बावन वर्षतक इस देशपर शासन किया। उनके राज्यमें सभी जातिके लोग सुखसे थे, हिन्दू मुस-लमान एवं ईसाई सबके प्रति वे उदारता दिखलाते थे। इसी समदर्शिताके कारण प्रजा सदा उनका कृतज्ञ रहती थी।

"स्वर्गीय नूरुद्दीन जहांगीरने यथानियम बाईस वर्षतक प्रजापालन किया। मित्र राजाओंपर विश्वास रखनेके ही कारण वे सदा सब कालमें कृतकार्य हो सके।

"महिमान्वित शाहजहांने बत्तीस वर्षतक राज्य-भार चलाया। दया एवं धर्मके कारण वे अक्षय सुख्यातिके अधिकारी हुए।

"आपके पूर्वपुरुषोंने सर्वसाधारणकी भलाईके लिये इस प्रकार काम किया था। वे लोग इस प्रकारकी उदार नीतिका अवलम्बनकर जहां जाते थे वहीं उन्हें विजयलक्ष्मी प्राप्त होती थी। उन लोगोंने अनेक देशों एवं अनेक दुर्गोंको अपने अधिकार-में कर लिया था। परन्तु आपके राज्य-कालमें आपके ही साम्राज्य-के अनेक जनपद स्वतंत्र हो गये। इस समय अविचार एवं अत्याचारके स्रोत तीव्र वेगसे प्रवाहित हो रहे हैं अतः भविष्यमें और भी कितने स्थान आपके हाथसे निकल जायंगे। आपकी प्रजा पददलित हो रही है और आपके साम्राज्यभरमें दुःख दारि-द्रय वर्तमान है। जिस जगहके राजा लोग अर्थशून्य हो रहे

है वहांके गरीबोंका क्या कहना ? सैनिकगण राजाके विरुद्ध हो गये हैं। व्यापारी लोग अनेक प्रकारके झगड़ोंमें फंस गये हैं, साधारण लोग रात्रिमें निराहारके कारण क्रोध और निराशासे उन्मत्त हो अपना सिर पीटते हैं।

"जो राजा इस तरहकी दरिद्र प्रजापर गुरुतर कर लगाकर उन्हें पीड़ित करनेमें अपने बलका प्रयोग करेगा उसके महत्व-की रक्षा कैसे होगी ? इस दुर्दशाके समयमें चारों ओरसे यह आवाज़ आ रही है कि हिन्दुस्तानका सम्राट् हिन्दू-धर्मका विरोधी है, वह ब्राह्मण, योगी, वैरागी एवं संन्यासियोंपर कर लगा-कर उन्हें पीड़ित करना चाहता है। सुप्रसिद्ध तैमूरवंशके गौरव-का ध्वंस करनेवाला यह सम्राट् निर्जनवासी निरपराध तप-स्विओंपर बल-प्रयोग करना चाहता है। यदि आप किसी ईश्व-रीय ग्रन्थपर विश्वास करें तो आपको मालूम हो जायगा कि ईश्वर समस्त मानवजातिका ईश्वर हैं केवल मुसलमानोंका हा नहीं। हिन्दू मुसलमान उस जगदीश्वरके निकट सब समान हैं। वर्णभेद तो मनुष्यकल्पित है। सबके आदि कारण वे ही हैं। धर्ममन्दिर वा देवालयमें उसीकी पूजा होती है। दूसरेके धर्मका अपमान करना सर्वशक्तिमान ईश्वरकी आज्ञा-के विरुद्ध कार्य्य करना है। यदि मैं किसी चित्रको विकृत करूं तो चित्रकार अवश्य रुष्ट होगा। इसीसे स्वर्गीय शक्तिके विरुद्ध कार्य्य करना उचित नहीं है।

"आप जो हिन्दुओंपर कर लगाना चाहते हैं वह न्यायानुकूल

नहीं है। साधु एवं नीतिज्ञ लोग इसका अनुमोदन नहीं करेंगे। यह हिन्दुस्तानके नियमके एकदम विरुद्ध है। परन्तु आप यदि अपनी धर्मान्धताके कारण यह कर लगानेपर उतारू हैं तो पहले यह कर प्रधान हिन्दू राजसिंहसे लेवें। पिपीलिका एवं मक्षिका सदृश पीड़ित प्रजापर अत्याचार करना सच्चा वीरत्व नहीं है। आपके शुभाभिलाषी अमात्यगण आपको सदुपदेश नहीं देते इससे मुझे बहुत विस्मय होता है।"

राना राजसिंहका पत्र इसी तरह सौजन्य, अभिमान एवं साहसपूर्ण था। क्षत्रिय राजाने इस प्रकार नम्रता, तेजस्विता एवं स्पष्टवादिताके साथ सम्राट्को अपकर्म्मसे अलग रहनेका अनुरोध किया। राजनीतिकी उच्चता, भावकी गम्भीरता, एवं सच्ची वीरतासे पूर्ण यह पत्र किसी सभ्य देशके राजनीतिज्ञ द्वारा पूर्ण सम्मानित होता। इस पत्रके अक्षर अक्षरसे हिन्दूराजाके राजधर्मका परिचय मिलता था।

उक्त पत्रको पाकर एवं यशवन्तसिंहकी स्त्रीकी मुक्तिकी बात सुनकर मुगल सम्राट् क्रोधसे जल भुन गया। क्रोधके आवेगमें उसने राना राजसिंहके विरुद्ध युद्ध करनेकी व्यवस्था की। इस कामके लिये उसने बंगाल, काबुल और दक्षिणसे अपने पुत्रोंको बुलाया। एक एकको एक एक सेनाका भार दिया गया। औरंगजेब इस प्रकार बहुत सी सेना लेकर मेवाड़की ओर चला इधर राजसिंह भी अपने वंशके गौरवकी रक्षासे विमुख नहीं हुए। इन्होंने अपने सैनिक दलको तीन भागोंमें विभक्त

करके एक भागका अध्यक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र जयसिंहको बनाया। भीमसिंह दूसरे भागके अधिनायक बनाये गये। राणा स्वयं प्रधान सेनाका भार लेकर सम्राट्की गति रोकनेके लिये अग्रसर हुए। पार्वत्य प्रदेशके आदिम निवासियोंने भी आर्य्यावर्त्तके हिन्दुओंकी सहायता की।

मेवाड़के अधिपति साहसी सेनाके साथ आरावली पर्वत-पर मुगलोंके विरुद्ध खड़े रहे। राजकुमार जयसिंहके पराक्रमसे विपक्षिओंका खाद्य पदार्थ लानेवाला मार्ग बन्द हो गया। औरङ्गजेब दुर्गम पार्वत्य प्रदेशमें अनाहारके कारण बहुत कष्ट पाने लगा। उसके शिविरमें दारुण दुर्भिक्षका आविर्भाव हुआ। उसकी प्रियतमा महिषी रक्षकगणके बीच पर्वतके पार्श्वमें थी। वह राजसिंहके निकट लायी गयी। राजसिंहने उसका यथोचित आदर एवं सम्मान किया और उपयुक्त रक्षकके साथ उसे औरङ्गजेबके पास भेज दिया।

इधर उनकी आज्ञासे खाद्य पदार्थ लानेवाला मार्ग छोड़ दिया गया। वे पराक्रमी शत्रुके अनाहारके कष्टको देख नहीं सके। राजपूत वीरोंका हृदय इसी तरहके उच्चतर गुणोंसे अलंकृत था। इन्हीं उच्च गुणोंके कारण आर्य्य-गौरवकी रक्षा करनेवाले प्रातःस्मरणीय राजपूत वीर आदरणीय हैं।।

दुर्बुद्धि मुगल सम्राट्ने उक्त गुण और राजधर्मका सम्मान नहीं किया। क्षत्रिय वीर इससे तनिक भी नहीं डरा। साहसके साथ उसने शत्रुका सामना किया। बहुत चेष्टा करनेपर

४

भी औरङ्गजेब उनकी गतिको नहीं रोक सका। वह युद्धमें परा-जित होकर भाग गया। सम्वत् १७३७ के फाल्गुन मासमें यह युद्ध हुआ था।

सम्वत् १७३७ में पुण्यपुंजमय राजपूत-भूमिमें राजसिंह विजयी हुए। १७३७ की वसंत ऋतुमें मेवाडाधिपतिने शत्रुके सामने अपने असीम साहस और शूरत्वका परिचय दिया।

राजसिंहने विजयी होनेपर भी पलायित सेनाके अनिष्ट-साधनकी चेष्टा न की। भीमसिंह गुजरातपर आक्रमण करके सूरतकी ओर बढ़े। बहुतसे लोग भागकर यहीं छिपे थे। राज-सिंह उन्हें कष्ट देना नहीं चाहते थे। दया धर्म एवं सौजन्यको ही वे श्रेष्ठ गुण समझते थे। उन्होंने भीमसिंहको सूरतकी ओर जानेसे रोका।

राजसिंहने इस प्रकार उदारताके साथ राजधर्मकी रक्षा की। साहस, वीरता एवं अधिकृत राज्य-रक्षणके लिये वे प्रसिद्ध हैं। वे राजधर्मकी मर्य्यादा पालन करनेमें अग्रगण्य, दौरात्म्य दमनमें अद्वितीय थे।

परोपकारको ही वे श्रेष्ठ धर्म समझते थे। उनका प्रतिष्ठित राजसमुद्र* आज भी राजपूतानाकी शिल्प-कीर्तिकी शोभाको बढ़ा रहा है।

---

* यह एक राजपूतानेका बड़ा तालाब है जिसे राजसिंहने खुदवाया था।

रायमल

मेवाड़के राणा रायमलका चरित्र देवभावसे परिपूर्ण है। इसी भावसे मेवाड़का इतिहास आज भी उज्ज्वल मालूम पड़ता है। यदि स्वार्थ-त्याग महान उद्देश है, वंशकी पवित्रताकी रक्षा करनेके निमित्त यदि दृढ़ प्रतिज्ञ होनेकी आवश्यकता है, सच्ची वीरताके लिये यदि तेजस्विताकी आवश्यकता है तो मेवाड़के रायमलने निश्चय ही महान् उद्देशका पालन किया और दृढ़ प्रतिज्ञ होकर तेजस्विताके साथ साथ वीरताकी रक्षा की। डिमास्थिनिजको यदि अद्वितीय वक्ता न कहें तो कुछ हानि नहीं, सम्भव है कि बालमीकिको लोग अद्वितीय कवि न मानें, हाउआर्डको अद्वितीय हितैषी न समझकर लोग भले ही सम्मानित न करें पर यह बात निर्विवाद है कि रायमल तेजस्वियोंमें अद्वितीय थे। रायमलकी भांति कोई भी राजा अपने राज्यसे पापको हटाकर पुण्यका विस्तार नहीं कर सका और न इस तरह अपनी महत्ताका ही परिचय दे सका। आजतक संसारके इतिहासमें कहीं भी ऐसा दृष्टान्त देखनेमें नहीं आता। रोमके ब्रूटसने अपने अपराधी पुत्रको घातकके हाथमें समर्पित करके स्वार्थत्याग और न्यायका ज्वलन्त उदाहरण संसारके सम्मुख उपस्थित किया। मेवाड़के रायमलने अपने अपराधी पुत्रके घातकको पुरस्कृत करके और भी उच्च भावका परिचय दिया।

चार सौ वर्षसे अधिक हुए कि वीरभूमि राजपूतानाकी एक सुन्दरी जो पूर्ण युवती भी नहीं हुई थी अश्वारूढ़ होकर कहीं जा रही थी। अश्वारोहिणी युद्धवेषमें थी। इसी वेषमें बालिका निर्भय होकर बड़ी तेजीसे घोड़ेको चला रही थी। बालिकाकी इस भीषण और मधुर मूर्त्तिसे अपूर्व शोभा विकसित होती थी। दूरसे ही एक क्षत्रिय युवकने इस मनोमोहिनी मूर्त्तिको देखा। यह युवक भी युद्धवेषमें घोड़ेपर सवार था। भीषणता और मधुरताका अपूर्व सम्मेलन देखनेमें आया। अश्वारोही युवक अश्वारोहिणीके अनुपम सौन्दर्य और अपूर्व कौशलको देखकर चकित हो गया। इस युवकके हृदयमें आशा एवं निराशाकी भाव-तरंगें उठने लगीं। वह अधीर हो गया। पाठकगण यह उपन्यासकी भूमिका नहीं है। कविकी कल्पना नहीं है। यह इतिहासकी सच्ची घटना है। यह युवक कौन है? यह मेवाड़के क्षत्रिय-कुल-भूषण महाराज रायमलका छोटा लड़का जयमल है। यह विद्युत वेगसे घोड़ेको चलानेवाली बालिका कौन है? यह टोडाके अधिपति सुरतनुरायकी कन्या है। बप्पारावका एक वंशधर आज इस युद्ध वेषधारी सुन्दरीके रूपसागरमें निमग्न हो रहा है।

महाराजा रायमलके पुत्रने ताराबाईसे विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की परन्तु सुरतनुने शीघ्र उसकी आशा पूरी नहीं की। वीरभूमि राजपूताना बंगाल नहीं है। उस समयके राजपूत लोग आजकलकी भांति अपनी कन्याओंके लिये वर नहीं ढूंढ़ते फिरते थे। आजकल तो लोग बी० ए० एम० ए०

उपाधिधारी अकर्मण्य एवं विलासी युवकको ही पाकर आह्लादित हो जाते हैं। लिल्ला नाम एक कट्टर मुसलमानने सुरतनुको राज्यसे निकालकर टोडापर अधिकार जमा लिया था। सुरतनु निकाला जाकर अपनी कन्याके साथ मेवाड़ राज्यके अन्तर्गत वेदनोरमें रहने लगे। उनकी प्रतिज्ञा थी कि जो टोडापर अधिकार प्राप्त कर सकेगा वही ताराबाईका पाणिग्रहण करेगा। वास्तवमें यह प्रतिज्ञा क्षत्रियोंके उपयुक्त थी। जो लोग वसुन्धराको वीरभोग्या कहते हैं उनके मुखसे यह प्रतिज्ञा अवश्य ही शोभा देगी। सुरतनुकी कन्याको प्राप्त करनेकी अभिलाषासे जयमल टोडापर अधिकार प्राप्त करनेके निमित्त बढ़ा। पाठानोंके साथ उसे घोर संग्राम करना पड़ा परन्तु वह उन्हें परास्त नहीं कर सका। युद्धमें पराजित होकर वह लौट आया। परास्त होनेपर भी राजपूत कुलाङ्गार लज्जित नहीं हुआ। उसके हृदयमें ताराकी मनोमोहिनी मूर्त्ति लग गयी थी। परास्त होनेपर भी वेदनोर जाकर उसने बलसे उस युवतीको प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की। राव सुरतनु यह अपमान सहन नहीं कर सके। उनका हृदय उत्तेजित हो गया। यह उत्तेजना योंही समाप्त नहीं हुई। आपने जयमलकी हत्या करके अपने सम्मानकी रक्षा की। राजपूतकी तलवार एक कलंकी राजपूतके रक्तसे रंगी गयी।

धीरे धीरे यह समाचार मेवाड़ पहुंचा। मेवाड़में घर घर इस समाचारपर आन्दोलन होने लगा। यह भयानक समाचार

महाराजा रायमलको कौन सुनावेगा बप्पारावकी संतानके रक्तसे राव सुरतनुका हाथ कलंकित हुआ है। आज उनकी रक्षा कौन करेगा ? सब लोगोंके मनमें होने लगा कि अब सुरतनुकी रक्षा नहीं है। रायमलके दोनों बड़े लड़के अपने अपराधोंके कारण जंगलमें भेज दिये गये थे। जयमल ही केवल अपने पिताका हृदय-रंजन था। आज उस हृदयरंजन पुत्रको खोकर रायमल अधीर हो जायंगे। उन्हें कौन सान्त्वना देगा ? मेवाड़के राजपूत लोग यह विचारकर बड़े ही दुःखी हुए। यह बात अधिक समय तक गुप्त नहीं रह सकी। शीघ्र ही महाराज रायमलको सभी बातें मालूम हो गयीं। रायमलने धीर भावसे सभी बातें सुनीं। सहसा उनकी दोनों आंखें लाल हो गयीं। प्राणाधिक पुत्रकी शोचनीय अवस्था सुनकर आप तनिक भी अधीर नहीं हुए। आप गम्भीर स्वरमें बोले, जो कुलांगार पुत्र अपने पिताका सम्मान नष्ट करना चाहता है उसके लिये यह दण्ड उचित ही है। सुरतनुने कुलांगार पुत्रको दण्ड देकर क्षत्रियोचित कार्य किया।" महाराजा रायमलने यह कहकर क्षत्रियोचित काय्य करनेके निमित्त सुरतनुको वेदनोरका राज्य दे दिया।

सच्चे वीरोंके चरित्र इसी तरह उच्च भावोंसे परिपूर्ण रहते हैं। आजकल इस विशाल भारतमें कितने इस प्रकारके मनुष्य हैं ? क्या कवि लोग भारतके प्राचीन गौरवके गीत गाकर चिरनिद्रित भारतको न जगायंगे ?

बालककी वीरता

तेरहवीं शताब्दीमें खिलजी सम्राट् अलाउद्दीनने जिस समय चित्तौरपर आक्रमण करके उसे घेर लिया, चित्तौरके नाबालिग राजा लक्ष्मणसिंहके चचा जिस समय अपने बालक भतीजाकी सहायताके लिये तत्पर हुए, उस समय एक वीर बालकने अपनी असाधारण वीरताका परिचय दिया। आत्मसम्मान एवं आत्ममर्य्यादाकी रक्षाके लिये तथा पूजनीया मातृभूमिके गौरवकी वृद्धिके लिये इस बालकने रणक्षेत्रमें जाकर अपने शत्रुओंको परास्त किया। इस वीर बालककी वीर कहानी, एवं कवियोंकी रसमयी कविता निष्पक्ष इतिहास-लेखकोंके वर्णनमें पायी जायगी। निठुर पाठान अलाउद्दीन वीर-भूमिके द्वारपर खड़ा हुआ है। यह भीम वेषधारी राक्षस भीमसिंहकी स्त्रीकी मर्य्यादा नष्ट करनेके लिये हाथ बढ़ा रहा है। आज राजपूत वीर उन्मत्तसे हो रहे हैं। वे वंशकी मर्य्यादाकी रक्षाके प्रतिज्ञापाशमें बंधे हुए हैं। पठान राजा पद्मिनीदेवीके रूप एवं लावण्यकी बात सुनकर मुग्ध है। उस वीर रमणीके अलौकिक गुणकी कथा सुनकर वह और भी उत्तेजित हो रहा है। इस उत्तेजना और मोहके कारण आज वह चित्तौरपर आक्रमण करनेके लिये तैयार हुआ है। उज्ज्वल राजपूत वंशमें आज वह कलंककी कालिमा लगानेके लिये उद्यत है। परन्तु उसकी वह आशा पूरी नहीं हुई। वह

चित्तौरपर अधिकार प्राप्त नहीं कर सका। अन्तमें उसने एक क्षणके लिये पद्मिनीके देखनेकी इच्छा प्रगट की। राजपूत वीर दर्पण द्वारा उसका प्रतिविम्ब दिखलानेके लिये सहमत हुए। अलाउद्दीनने भी यह बात मान ली। वह चित्तौरके राज्य-प्रासाद-में गया। वहां उसने पद्मरागमणिके सदृश पद्मिनीकी कान्ति-को देखा। थोड़ी देरतक वह उस प्रतिविम्बको एकटक देखता रह गया। कुछ कालतक उसका हृदय लावण्यमयी ललनाके लावण्यसागरमें गोते लगाने लगा। केवल उसे देखनेसे ही अलाउद्दीनकी आशा पूरी नहीं हुई। वह अपने हृदयसे पद्मिनी-की मनोमोहिनी मूर्त्तिको हटा नहीं सका। वह कृत्रिम बन्धुता दिखलाकर भीमसिंहको दुर्गके बाहर ले गया। सरल-हृदय राज-पूत वीरने पाठानकी धूर्त्तता नहीं समझी। वे बन्धुभावसे उसके साथ साथ गये। अलाउद्दीनने सुयोग पाकर भीमसिंहको कैद कर लिया। उन्हें वह अपने शिविरमें ले गया और बोला-"जब-तक पद्मिनी मेरे हाथ नहीं लगेगी तबतक मैं तुझे नहीं छोड़ूगा।"

भीमसिंह शत्रुके हाथमें पड़े हुए हैं और पाठान राजा उनके वंशकी पवित्रता नष्ट करना चाहता है। आज चित्तौर असहाय सा दीख पड़ता है। नहीं, नहीं, जबतक एक भी राजपूत बच्चे-के शरीरमें प्राण है तबतक मेवाड़ असहाय नहीं कहा जा सकता। शीघ्र ही सभी राजपूत वीर प्रसन्नताके साथ भीमसिंहके उद्धारकी चेष्टा करने लगे। वीर राजपूतकी स्त्री पाठानके हाथ

पड़ेगी, सौन्दर्य्यसे मुग्ध होकर एक पाठान सतीके धर्म्म एवं मर्य्यादाको नष्ट करेगा, पवित्र कुसुम पाठानोंके हस्तस्पर्शसे कलंकित होगा, राजपूत वीर प्राण रहते ऐसा अनर्थ नहीं देख सकते।

ऐसी अवस्थामें बादल नामका एक वीर बालक वंशकी मर्य्यादा-के रक्षणार्थ अग्रसर हुआ। बारह वर्षके वीरने अविचलित साहसके साथ प्राण देकर भी बलिष्ठ शत्रुके हाथसे भीमसिंहके छुड़ानेकी प्रतिज्ञा की। इस महान् कार्य्यमें उसके चचा गोराने भी उसे पूर्ण सहायता दी।

जिस समय अलाउद्दीन भीमसिंहको बन्दी बनाकर अपनी विश्वास-घातकतापर प्रसन्न हो रहा था उसी समय उसे सम्वाद मिला कि चित्तौर-लक्ष्मी पद्मिनी अपनी दासियोंके साथ उससे मिलना चाहती है। खिलजी बादशाह यह बात सुनकर आनन्दके मारे अधीर हो गया और अधीरावस्थामें कल्पनाकी सहायतासे अनेकों सुख-स्वप्न देखने लगा। एक एक करके सात सौ पालकियां शिविरमें लायी गयीं। इन पालकियों-के भीतर परिचारिकाके भेषमें चित्तौरके साहसी राजपूत वीर थे। सुअवसर पाकर ये राजपूत वीर पालकीसे निकलकर युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। निकट ही पाठानोंकी सेना थी, अतः घमासान लड़ाई छिड़ गयी। साहसी बादलके अधीन राजपूतोंने खूब वीरता दिखायी। बारह वर्षके बालकके अलौकिक पराक्रमसे पाठान सेना शीघ्रताके साथ नष्ट होने लगी। पाठान

वीर इस बालकके अद्भुत पराक्रमको देखकर विस्मित रह गये। गोरा अपने भतीजाके सहायक थे। पवित्र रणक्षेत्रमें उन्होंने अपना प्राण-विसर्जन किया। बादलने अपने चचाको समरमें प्राण त्यागते देखा पर ज़रा भी नहीं घबड़ाया। वह दूने उत्साहके साथ घोड़ा चलाने लगा। उसकी अतुलनीय वीरतासे शत्रु-सैन्य नष्ट होने लगी। एक ओर दिल्लीके सम्राट्‌की असंख्य सुशिक्षित सेना और दूसरी ओर एक बारह वर्षका बालक कुछ वीर सहायकोंके साथ युद्ध-भेषमें खड़ा है। माताकी गोदमें चले जाने योग्य बालक आज श्रेष्ठ वीर-भूमिकी सम्मान-रक्षाके निमित्त अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर और दुर्भेद्य कवचको धारण कर अश्व-पुण्डपर भीम पराक्रमके साथ शत्रुके सामने अड़ा खड़ा है।

जिसका कमल सदृश सुगठित शरीर लोगोंके नेत्रोंको तृप्त करता था आज वही कठोर-प्रकृति शत्रुके कठोर शस्त्राघातसे घायल दीख पड़ता है। तेरहवीं शताब्दीमें मेवाड़के युद्ध-स्थलमें इसी तरहका भीषण दृश्य देखा गया। घमासान लड़ाई छिड़ गयी। वीर बालकने इस युद्धमें अपनी असामान्य वीरताका परिचय दिया। बालककी अपूर्व वीरतासे मुग्ध हो विजय-लक्ष्मी उसके पक्षमें आ गयी। भीमसिंह शत्रुके अधिकारसे मुक्त हुए। निठुर अलाउद्दीनने पद्मिनीके पानेकी आशाको जलाञ्जलि दे दी। बादल बहुत घायल हो गया था। उसका शरीर खूनसे लथपथ और तरबतर हो रहा था। इसी दशामें वह

अपनी माताके पास गया। माताने अपार आनन्दके साथ बालकका मुख चूमकर गोदमें बैठा लिया। वीर बालक अपने जीवनकी पवित्र प्रतिज्ञाको पालन करनेके पश्चात् घर आया और उसने अपनी चाचीके निकट जाकर अपने चचाके अद्भुत वीरत्व एवं उनके अपूर्व पराक्रमकी बातें उनसे कहीं। गोराकी धर्मपत्नीने स्वामीकी वीरताकी बातें प्रसन्नतापूर्वक सुनीं और हंसते हंसते अनल-कुण्डमें अपनेको आहुति कर दी। भारतके बालकोंने किसी समय ऐसी वीरता एवं महत्ताका परिचय दिया था। वीर बालककी यह कीर्ति भारतके गौरवको बहुत दिनोंतक बनाये रखेगी।

वीर धात्री

राजपूत-कुल–गौरव पराक्रमी संग्रामसिंह अब इस संसार-में नहीं हैं। जो असामान्य साहस और वीरत्वका अधिकारी थे, जिसने मुसलमानोंसे युद्ध करके अपने गौरवकी रक्षा की थी आज उसके पार्थिव शरीरका नाम निशान मिट गया। शत्रु-के जालमें पड़कर वह पुरुषसिंह सदाके लिये अमरलोकको चला गया। उसका नन्हा सा बच्चा शत्रुओंके हाथमें है। आने-वाली विपत्तिका उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है अतः वह ६ वर्षका बालक आनन्दसे रहता और सुखकी नींद सोता है। इधर उसके शत्रु उसके प्राण लेनेकी चेष्टामें लगे हैं परन्तु सरलहृदय बालकको इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है। दासी पुत्र वनवीर * राज्यलोभसे बालककी हत्या करना चाहता है। आज इस घोर विपत्तिसे संग्रामसिंहकी एकमात्र संतान उदयसिंहका संसार-में कोई रक्षक दिखाई नहीं पड़ता। बप्पारावके पवित्र वंशको निर्मूल करनेके लिये यह षड्यन्त्र रचा गया है, आज उस वंश-का उद्धार करनेवाला कोई नहीं है। ईश्वरकी महिमा! एक

* संग्रामसिंहके भाई पृथ्वीराजका लड़का था बनवीर। यह दासीके गर्भसे पैदा हुआ था। उदयसिंह बालक था अतः राज्यका काम वनवीर ही करता था। राज्य शासन सदा अपने हाथमें रखनेकी इच्छासे वनवीरने उदयसिंहकी हत्या करनेकी ठानी।

असहाय अबला इस घोर विपत्तिसे उदयसिंहकी रक्षा करनेके लिये उद्यत हुई। पन्ना उदयसिंहकी धाई थी। वह वनवीरके अधिकारमें रहकर उदयसिंहकी रक्षाके लिये प्राण हथेलीपर रखकर तैयार हो गई। उसने अपने मनमें ठान लिया कि जिस तरह हो सके मैं इस असहाय बालक बप्पारावके एकमात्र वंशधरकी रक्षा करूंगी। यह बात उसके मनमें क्यों आई इसका कारण केवल वही निस्स्वार्थ मनुष्यप्रेम हो सकता है जिससे प्रेरित होकर एक मनुष्य दूसरे अपरचित मनुष्यकी रक्षाके लिये सन्नद्ध होता है।

किस तरह पन्नाने पितृहीन बालककी ऐसी घोर विपत्तिसे रक्षा की यह सुनकर रोमांच हो आता है। उदयसिंह सो रहा था कि अचानक एक विश्वासी नौकरने आकर धात्रीसे कहा कि वनवीर उदयसिंहकी हत्या करनेके लिये आ रहा है। धात्रीने बालकको एक टोकरीमें रखकर ऊपरसे कुछ फल रख दिया और नौकरसे कहा कि इसे अमुक स्थानपर ले जाकर पहुंचा दे। जब नौकर टोकरी लेकर वहांसे चला गया तो थोड़ी ही देरके बाद वनवीर हाथमें नङ्गी तलवार लिये उस घरमें आया और धाईसे पूछने लगा कि उदयसिंह कहां है। धाईने उसे अपने सोते हुए बालकको उंगलीके इशारेसे बतला दिया। दुष्ट वनवीरने उसे उदयसिंह समझकर टुकड़े २ कर दिया और वहाँसे लौट गया। बेचारी धाई कलेजेपर पत्थर धरे यह सब देखती रही और मुंहसे उफतक नहीं किया। दूसरे दिन उसी बालक-

की आवश्यक अन्त्येष्टि क्रिया होनेपर धात्री चुपकेसे उसी नौकर-के पास उदयसिंहके सकुशल सुरक्षित स्थानमें पहुंच जानेका समाचार पूछने गई।

इस तरह पन्नाने निस्संकोच भावसे अपने हृदयरंजन पुत्र-को घातकके हाथमें समर्पित करके संग्रामसिंहके पुत्रकी रक्षा की। इस वीर रमणीने चित्तौरके निमित्त, बप्पारावके वंशकी रक्षाके निमित्त, अपने जीवनके एकमात्र अवलंबन, स्नेहका एक-मात्र भाजन, आंखोंका तारा अपने पुत्रको मृत्युके मुखमें ढकेल-कर स्वार्थत्यागका कैसा ज्वलंत उदाहरण संसारमें उपस्थित किया। आजकलकी स्त्रियां अपनी संतानके लिये कर्त्तव्या-कर्त्तव्यका कुछ भी विचार नहीं करती हैं। वे इस महान् स्वार्थ-त्यागका भाव कैसे समझ सकती हैं? भारतवासी आजकल भीरु हो गये हैं। सच्चा तेज और पराक्रम उनमें अब नहीं रह गया है। भला स्वार्थत्यागकी बातोंको वे कैसे समझ सकते हैं? जो लोग सच्चे तेजस्वी हैं वे ही इस धात्रीके हृदयके उच्च भावों-को समझ सकते हैं और समझ सकेंगे। शोक है कि आज भारतमें ऐसे तेजस्वी नज़र नहीं आते।

वीर बाला

चौदहवीं शताब्दी बीत गयी। पन्द्रहवीं शताब्दीने अपना प्रभाव जमाकर यह सिद्ध कर दिया कि संसार परिवर्त्तनशील है। पराधीन तथा परपीड़ित भारतवर्ष तैमूरलंगके आक्रमणसे महा श्मशान बन गया। दिल्लीका राजा मुहम्मदशाह जीविता वस्थामें ही मुर्देकी तरह श्मशानके एक कोनेमें पड़ा था। उसकी क्षमता एवं उसके प्रताप एक दम नष्ट हो गये। निठुर आक्रमणकारियोंके अत्याचारसे दिल्ली श्रीभ्रष्ट हो गयी थी। शोक दुःख और दरिद्रताके हृदयविदारक दृश्यसे दर्शकके भी होश उड़ जाते थे। भारतवर्षकी इस दुरवस्थामें भी राजस्थानने अपनी पुरानी वीरताके गौरवको बनाये रक्खा। राजस्थानकी एक वीर नारीने अपने असाधारण चरित्र और अलौकिक तेजस्विताका परिचय देकर अपने स्वामीके साथ प्राण-विसर्जन किये। वीर भूमिकी इस तेजस्विनी नारीका नाम था कर्मदेवी।

राजस्थानमें यशलमीर नामक एक प्रदेश है। यह प्रदेश मरु-भूमिके बीचमें है। इसके चारों ओरके बालूके समुद्र पथिकोंके हृदयमें भय उत्पन्न करते हैं। भयङ्कर मरु-भूमिमें अवस्थित होने पर भी यशलमीर हरे हरे वृक्षोंसे आच्छादित है। पन्द्रहवीं शताब्दीके

प्रारम्भमें यशलमीरके अन्तर्गत पूगल नामक स्थानमें अनंगदेव राज्य करते थे। उनके पुत्रका नाम था साधू। भट्टि जातिमें साधू सबसे श्रेष्ठ वीर था। उसके साहस, पराक्रम एवं वीरत्वके आगे सभी सिर झुकाते थे।

इस विशाल मरुभूमिसे सिन्धु नद तक उसका प्रताप फैला हुआ था। उसके भयसे कोई भी पार्श्ववर्त्ती राजा अपनेको प्रधान नहीं कहता था। असीम साहस और प्रबल प्रतापके बल पूगल कुमारने मरु-भूमिमें खूब प्रभाव जमा लिया था। एक समय साधू किसी जनपदपर अधिकार प्राप्त करनेके पश्चात् लौट रहा था। उसके साथ एक बड़ी सेनाके अतिरिक्त असंख्य ऊंट और घोड़े भी थे। वह इनको साथ लिये अरन्ति नगरमें पहुंचा। यह नगर महिल वंशके मानिकरावकी राजधानी थी। १४४० गांवोंपर मानिकरावका आधिपत्य था। उन्होंने आदर के साथ पूगल कुमारको निमंत्रण दिया।

साधूने प्रसन्नताके साथ उनका आतिथ्य स्वीकार किया। इस समय उनके वीरत्वकी महिमा और भी फैल रही थी। मानिकरावकी कन्या कर्मदेवी साधूके गुणोंपर मुग्ध हो गई। एक राठौर वंशीय राजकुमार अरण्यकमलके साथ कर्मदेवीके विवाहकी बात थी। राजकुमारीने पूगल राजकुमारके गुणोंके विषयमें पहलेसे ही सुना था। वह अरण्यकमलको छोड़ उन्हींसे विवाह करनेके लिये तैयार हो गयी। साधूने भी इस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। वह अरण्यकमलसे तनिक भी न डरा।

अपने साहस और पराक्रमके भरोसे उसने लावण्यवती कामिनीके पानेकी इच्छा की। विवाहका दिन ठीक हो गया।

निश्चित समयपर मानिकरावने अपनी राजधानी अरन्ति नगरमें ही अपनी कन्याको साधूके हाथमें समर्पण किया। जिस तरह बड़े वृक्षके सहारे लता बढ़ती है उसी तरह कर्मदेवीके गौरवकी वृद्धि होने लगी। इस विवाहसे अरण्यकमलके कलेजेमें गहरी चोट लगी। उसके हताश हृदयमें आशाका संचार हुआ। कल्पनाके सहारे धीरे धीरे वह सुख अनुभव करने लगा। वह सुख शीघ्र ही लुप्त हो गया। अरण्यकमलके हृदयमें प्रतिहिंसाकी अग्नि धधकने लगी। कल्पनाके बल वह अपने नेत्रोंके सामने विकट दृश्य देखने लगा। उसने प्रतिज्ञा की कि बिना इसका बदला लिये मैं न छोड़ूंगा।

जब तक मेरे शरीरमें रक्तका एक बूंद भी है तब तक मैं साधूको जीवित नहीं देख सकता। कर्मदेवीको नहीं पानेसे अरण्यकमल हताश तो हुआ पर और भी दृढ़तासे अपने काममें लग गया। इस तरह साधूका जीवनमार्ग कंटकोंसे आच्छादित था।

अरन्तिराजने दहेजमें दामादको मणि, मुक्ता, सोना चाँदी आदि दिये। एक सोनेका बैल और तेरह कुमारियां दी गईं। उन्होंने दामादको चार हज़ार महिल सैन्य साथ ले जानेको कहा। परन्तु साधू इसपर सहमत नहीं हुआ। वह केवल अपने सात सौ सैनिकोंको साथ लेकर अपने बाहुबलके भरोसे नवविवाहिता वधूको ले जानेको तैयार हुआ। अरन्तिराजाके

विशेष अनुरोध करनेपर उसने केवल पांच सौ महिल सैनिकों-को अपने साथ ले लिया।

कर्मदेवीका भाई मेघराज इस सेनाके नायकके पदपर प्रतिष्ठित किया गया। सब लोगोंने अरन्ति नगरसे यात्रा की। सब लोग आनन्दसे आह्लादित हो पूगल नगरकी ओर बढ़े जा रहे थे। राहमें चन्दन नामक स्थानपर साधू विश्राम करनेके लिये ठहरा ही था कि एक बड़ी सेना उसकी ओर आती दीख पड़ी। बातकी बातमें वह सेना साधूके निकट पहुंच गयी। साहसी साधूने देखा कि सेना बहुत करीब आ गयी। अरण्यकमल हाथमें तलवार लिये सैनिकोंके अग्रभागमें खड़ा होकर उन्हें चला रहा था। शीघ्रही साधू भी धीरताके साथ लड़नेको तैयार हो गया।

उसने अपने सैनिकोंको विजय-लक्ष्मी प्राप्त करने वा आत्म-विसर्जन करनेकी आज्ञा दी। उसके विरुद्ध चार हजार राठौर वीर थे। तेजस्वी अरण्यकमल जो उनके खूनका प्यासा था हाथमें तलवार लिये प्रतीक्षा कर रहा था तोभी साधू घबड़ाया नहीं। धीरता त्यागकर उसने भीरुताका परिचय नहीं दिया। यह वीर युवक सम्मान-रक्षाके लिये तैयार हो गया। देखते देखते चार हज़ार भट्टी वीर सेनापर टूट पड़े। राठौर संख्यामें अधिक थे अतः उन लोगोंने एक ही बार भट्टी सेनापर आक्रमण करना उचित नहीं समझा। इस तरहके आक्रमणको वे लोग घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। साधू और अरण्यकमल युद्ध करके साहस

और वीरताका परिचय देनेको तैयार हुए। १४०७ ई० में एक लावण्यवती कुमारीके लिये चन्दन नामक स्थानमें यह लड़ाई हुई थी। अन्तमें साधू घोड़ेपर सवार होकर सेनामें घुसा। वह दो बार घोड़ेको चलाता हुआ पराक्रमी राठौर सैनिकोंमें मिल गया। दोनों बार उसके शस्त्राघातसे बहुसंख्यक राठौर वीर मारे गए। कुसमयमें यह लड़ाई छिड़ी थी तोभी कर्मदेवी डरी नहीं। उसके प्राणाधिक पतिका जीवन संकटमें था, पर कर्मदेवी कातर नहीं हुई। वह साहसके साथ अपने स्वामीको उत्साहित करने लगी। प्रियतमके अद्भुत समर-कौशल एवं साहसको देखकर मनही मन वह उन्हें धन्यवाद देने लगी। साधूके पराक्रमसे छः सौ राठौर वीर युद्धमें मारे गए।

साधूकी सेनाके भी आधे वीर समर-भूमिमें कट मरे। कर्मदेवीने पहलेकी ही तरह दृढ़ताके साथ स्वामीसे कहा, "मैं आपका युद्ध-कौशल देखना चाहती हूं। यदि आप समर-भूमिमें सो जायंगे तो मैं भी आपके ही पार्श्वमें रहकर आपकी अनुगामिनी बनूंगी। पत्नीके ये वाक्य सुनकर साधू बहुत प्रसन्न हुआ और तेजस्विताकी सम्मान-रक्षाके निमित्त तैयार होकर उसने अरण्यकमलको युद्धके लिये ललकारा। अरण्यकमल भी इस युद्धको शीघ्र समाप्त करनेके लिये उत्सुक था। दोनों वीर सामना सामनी खड़े हो गए। थोड़ी देर तक दोनोंमें नम्रतापूर्वक बातें होती रहीं।

इस पवित्र युद्धमें अधर्म या धूर्त्तताका प्रयोग नहीं किया गया

था। दोनों क्षत्रिय वीर कुछ देर तक प्रीतिपूर्वक बातें करके अपनी अपनी प्रधानता एवं मर्य्यादाकी रक्षाके लिये हाथमें तलवार लेकर लड़नेको तैयार हो गए। साधूने अरण्यकमलके कन्धेपर तलवार चलायी, अरण्यकमलने भी साधूके सिरको लक्ष्य करके बड़ी तेजीसे तलवार चलायी। कर्मदेवीने देखा कि दोनों वीर वेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। कुछ देरके पश्चात् अरण्यकमलको होश हुआ पर साधू ज्योंका त्यों पड़ा रह गया। कर्मदेवीकी आशापर पानी फिर गया। जिस कल्पनाको तरंगमें गोते लगाती हुई वह बाला अपने पिता-माताको छोड़ पूगल जा रही थी वह सुख सदाके लिये जाता रहा। बालिकाका प्राणाधिक रत्न आज मरु-भूमिमें खो गया। इतनेपर भी कर्मदेवी कातर न हुई। उसने धीरताके साथ हाथमें तलवार ली और अपने ही हाथसे अपनी एक बांह काटकर कहा, "इस बांहको प्रियतमके पिताको सौंपकर कहना कि आपकी पतोहू इसी रंगकी थी।" फिर उसने आज्ञा दी कि यह मेरी दूसरी बांह भी काट डाली जाय। शीघ्र ही आज्ञाका पालन किया गया, वीर नारीने कहा कि यह बांह मणिमुक्ताओंके साथ महिल कविको उपहार स्वरूप दे दी जावे। अनन्तर चिता सजायी गयी और उसी चितापर यह साध्वी स्त्री अपने पतिके साथ जलकर स्वर्गको गयी।

कर्मदेवीकी कटी हुई बांह यथासमय पूगल पहुंची। वृद्ध पूगल-राजकी आज्ञासे वह बांह जला दी गई। राजाने वहां एक पुष्करिणी खुदवायी जो आज भी कर्मदेवीका सरोवर कहा जाता है। अरण्यकमलके घाव अच्छे नहीं हुए। छः महीनेके बाद वह भी मर गया।

वीरांगना

पराक्रमी शाहबुद्दीन गोरीने जिस समय भारतवर्षपर चढ़ायी की, उस समय आर्य्योंने अपनी जन्म-भूमिकी रक्षाकी पूर्ण चेष्टा की थी। जब दिल्लीश्वर पृथ्वीराज स्वदेशकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिये अफगानोंको भारतवर्षसे निकालनेकी तैयारीमें लीन थे, उस समय मेवाड़के अधिपति समरसिंहने अपने प्रियतम पुत्र और साहसी सैनिकोंको लेकर उनका साथ दिया। दिल्ली और मेवाड़के वीर दृषद्वती नदीपर इकट्ठे हुए। आर्य्य लोग इसी पवित्र स्थानपर वेदोंका गान करते थे तथा योगासन लगाकर ईश्वरका ध्यान करते थे। आज उसी पवित्र नदीके तटपर अपनी स्वाधीनताकी रक्षाके लिये आर्य्य वीर इकट्ठे हुए। उन्हें इस काममें सफलता नहीं हुई।

अफगानोंकी धूर्त्तताके आगे हिन्दुओंको हार माननी पड़ी। दृषद्वती नदीके तटपर क्षत्रियोंके रक्त-सागरमें भारतका सौभाग्य-सूर्य्य डूब गया। पृथ्वीराज मारे गये। तदनन्तर तीन दिनों तक लड़ाई होती रही और अन्तमें समरसिंह भी हार गये। अफगानोंने दिल्ली एवं कान्यकुब्जमें विजय-पताका उड़ायी। अनन्तर वे लोग पुण्य-भूमि राजपूतानामें पहुंचे। समरसिंह अब इस संसारमें नहीं हैं। मेवाड़निवासियोंको अब चारों ओर अन्धेरा मालूम हो रहा है। पराक्रमी शत्रुको देखकर वीर-

भूमि आज शोक-सागरमें गोते लगा रही है। समस्त राजपूताना नर-रक्तसे रंग गया है। जिधर देखिये उधर ही विपक्षी लूट रहे हैं। तेजस्विता एवं स्वाधीनता-प्रिय राजपूतानाको आज आक्रमणकारियोंने श्मशानसा बना दिया है। इस शोचनीयावस्थामें एक ईश्वरीय शक्तिका आविर्भाव हुआ जिससे यह स्रोत उल्टे बहने लगा। वीर-भूमिमें अचानक एक ऐसी शक्ति आयी कि मेवाड़की गौरवरक्षाके निमित्त असंख्य वीर पागलसे होकर समर-भूमिमें एकत्रित होने लगे। मेवाड़की एक वीरांगना शत्रुओंको नष्ट करनेके निमित्त वीर भेष धारणकर अग्रसर हुई।

यह युवती कौन है? महाराज समरसिंहकी स्त्री कर्मदेवी। मेवाड़का एक मात्र उत्तराधिकारी, समरसिंहका पुत्र कर्ण इस समय बालक था। यह भोला भाला बालक विपक्षियोंके हाथमें पड़कर कष्ट पावेगा, यह कर्मदेवी सहन न कर सकी। कर्मदेवी शत्रुओंको आज अपने देशसे निकाल देना चाहती है। समरसिंह तो युद्धमें मारे गए पर आज उनकी विधवा रमणी पतिकी धर्मरक्षाके लिये कटिबद्ध है। कर्मदेवीने वीर भेष धारण किया। शरीरको कवचसे आवृत्तकर उसने तीक्ष्ण तलवार हाथमें ले ली। बहुतसे राजपूत वीर भी इस वीरांगनाकी अधीनतामें युद्ध करनेको तैयार हो गए। शाहबुद्दीनका प्रियपात्र कुतुबुद्दीन राजस्थानमें घुसा। आबरेके निकट वीरांगनाने उसपर धावा किया। युद्धमें वीरांगनाने खूब वीरता दिखलायी। उसके आक्रमणसे विपक्षी सेना नष्ट होने लगी। विपक्षियोंका बल घटने

लगा। कुतुबुद्दीन युद्ध-क्षेत्रमें लावण्यवती युवतीकी भीषण-मूर्त्तिको देखकर चकित हो गया।

उसने विजयकी आशा छोड़ दी। कर्मदेवीने अलौकिक साहस तथा पराक्रमके साथ लड़कर शत्रुको हरा दिया। विजय प्राप्त करनेपर उसका गौरव और भी बढ़ गया। कर्मदेवीने मेवाड़की गौरव-रक्षा की। दिल्लीके प्रथम मुसलमान राजाको एक स्त्री द्वारा घायल एवं पराजित होकर युद्ध-स्थलसे भाग जाना पड़ा। किसी समय मेवाड़ने इस तरह अपनी स्वाधीनता-की रक्षा की थी। मेवाड़की एक स्त्रीने पराक्रमी शत्रुको परा-जितकर अपनी कीर्त्तिको बनाये रक्खा। उस वीर रमणीकी कीर्त्ति-कहानी इतिहासमें स्वर्णांकित रहेगी। मेवाड़ वास्तवमें वीरत्वकी लीला-भूमि है। सहृदय ऐतिहासिकोंने सच कहा है—"सैकड़ों दोषोंके रहनेपर भी मेवाड़ मैं तुम्हारी प्रशंसा करूंगा।"

अबलाका आत्म-त्याग

समय-स्रोतके साथ साथ १८ वीं शताब्दी चली गयी और उन्नीसवीं शताब्दी अपना प्रभाव फैलाने लगी। मुगलोंका प्रबल प्रताप और विस्तीर्ण गौरव लुप्त हो गया। दिल्ली इस समय श्मशानसा हो रहा है। उसके एक कोनेमें अकबर शाहजहां जैसे पराक्रमी राजाओंके वंशज छिपे हुए हैं। ब्रिटिश राजपुरुष भारतके भिन्न भिन्न स्थानोंपर अधिकार जमाकर यहांके अन्यान्य राजाओंके हृदयमें भय उत्पन्न कर रहे हैं। महाराष्ट्रीय वीर सिन्धिया और होलकर दक्षिणसे जाकर आर्य्यावर्तमें अपना अधिकार फैलाना चाहते हैं। इस परिवर्त्तनके समयमें मेवाड़के अधिपति थे भीमसिंह। भीमसिंह अपने पूर्वपुरुषोंकी तरह पराक्रमी नहीं थे। भीमसिंह यद्यपि वैसे तेजस्वी नहीं थे तथापि बप्पारावके वंशज होनेके कारण सिंहासनपर बैठे थे।

महाराष्ट्रीय राजा लोग सेना लेकर राजस्थानमें घुसे। उनके आक्रमणसे इतिहास-प्रसिद्ध पवित्र जनपद शोक और दुःखसे व्याकुल हो गया। उस समय वहांके निवासियोंको प्रतापसिंह एवं पुत्त, जयमल तथा बादलका स्मरण होने लगा। इस शोचनीयावस्थामें राजस्थानकी वाटिकामें एक ऐसा पवित्र कुसुम विकसित हुआ जिसने अपनी पवित्रतासे सारे उद्यानको पवित्र कर दिया। सोलह वर्षकी एक क्षत्रिय बालिका कृष्णकुमारीने

पिताके राज्यकी रक्षाके निमित्त संकल्प किया और वह गौरव-भ्रष्ट एवं दूसरोंसे पीड़ित राजस्थानके उद्धारकी चेष्टामें लगी।

कृष्णकुमारी राजा भीमसिंहकी कन्या थी। सुन्दरतामें उसकी बराबरी करनेवाली रमणी उस समय कोई भी न थी। लोग उसे "राजस्थानका कुसुम" कहकर सम्मानित करते थे। वह जैसी सुन्दरी थी वैसी ही देशभक्त भी थी। जब कृष्ण सोलह वर्षकी हुई उसी समय भीमसिंहने मारवाड़के राजाके साथ उसका विवाह करना स्थिर किया परन्तु शीघ्र ही मारवाड़का राजा मर गया। अतः भीमसिंहने जयपुरके अधिपति जगतसिंहको कन्यारत्न समर्पण करना चाहा। मारवाडके दूसरे राजा मानसिंहने इससे क्रुद्ध होकर ससैन्य मारवाड़पर आक्रमण किया और कृष्णकुमारीसे विवाह करनेकी इच्छा प्रगट की। इधर सिन्धिया महाराजने भी भीमसिंहको लिखा कि कृष्णकुमारीका विवाह जयपुरके राजाके साथ न करके मारवाड़के राजाके साथ करो। सिन्धिया महाराजको जयपुरके अधिपतिसे शत्रुता थी इसीसे उन्होंने मारवाड़के राजाकी इच्छा पूर्ण करनेकी बात लिखी। भीमसिंह सहमत नहीं हुए। सिन्धिया महाराज अपनी सेनाको रोक नहीं सके। भीमसिंहने एक शिवमन्दिरमें सिन्धिया महाराजसे भेंट की। उन्हें विवश होकर सिन्धिया महाराजके अनुरोधका पालन करना पड़ा। जयपुर राज्यका दूत लौटा दिया गया। जगतसिंह इस अपमानको सहन नहीं कर सके। शीघ्र ही उनकी बड़ी सेना मेवाड़में पहुंच

गई। इधर मारवाड़के राजा मानसिंह भी युद्धके लिये तैयार हो गये। एक अर्द्ध विकसित पुष्पके लिये आज पवित्र वीरभूमिमें रक्तकी धारा बहने लगी।

इस युद्धमें पहले तो मानसिंहको विजय-लक्ष्मी नहीं प्राप्त हुई। उनके पक्षके कुछ लोग विपक्षीकी सहायता करने लगे। भीमसिंह एक लाख बीस हजार सैनिकोंको साथ लेकर विपक्षीसे भिड़े थे। लड़ाई प्रारम्भ होते ही अधिकांश मारवाड़ी विपक्षियोंसे जा मिले। इस विश्वासघातसे दुःखी होकर मानसिंह आत्म-घात करनेके लिये तैयार हो गए। परन्तु उनके कई सरदारोंने उनके हाथकी तलवार छीन ली और उन्हें युद्धक्षेत्रसे हटाकर राजधानीमें लाये। शत्रुओंने उनका पीछा किया और अन्तमें उनकी राजधानीपर आक्रमण किया। पराक्रमी राठौर अलौकिक साहसके साथ अपनी जन्म-भूमिकी रक्षा करने लगे। अन्तमें उनकी राजधानी शत्रुओंके हाथमें पड़कर लूट ली गई। मानसिंह किलेमें छिप रहे। यह किला अभेद्य था। इस विपत्तिके समयमें भी इस किलेके गौरवकी भली भांति रक्षा हो सकी। मारवाड़की राजधानी शत्रुओंके हाथमें गयी सही परन्तु यह किला सुरक्षित रहा।

इस विपत्तिके समय मनुष्य नामधारी एक पशु-स्वभावका जीव घटनास्थलपर उपस्थित था। इसका नाम था अमीर खां। यह पाठान था। यह बड़ा ही दुष्ट था। अमीर खां पहलेसे ही मानसिंहके विपक्षियोंकी ओर था। विपक्षियोंने इस दुराचारी

नराधमको अपना मित्र समझा था। अन्तमें इसी पाखंडी मित्रके विश्वास-घातसे उनके प्राण गये। जब उनकी सेना नष्ट हो गयी तब अमीर खां प्रसन्नताके साथ मानसिंहके दलमें जा मिला।

इस तरह इस विश्वास-घातकके पापकार्य्यका एक अंश सम्पादित हुआ। अनन्तर उसने इससे भी एक भयंकर कार्य्य किया। राजस्थानके अनन्त सौन्दर्य्यमय पुष्पके लिये अब भी जयपुर और मारवाड़के राजा लड़ रहे थे। उनके आक्रमणसे मेवाड़की पवित्र भूमिमें घोर अशान्ति फैल रही थी। वही दुष्ट पाठान इस समय उदयपुरके राजाका मित्र बनकर उन्हें परामर्श देने लगा। उसीके कुपरामर्शसे उदयपुरके राजा अपनी कन्याकी हत्या करनेकी इच्छा करने लगे। राज्यमें शान्ति-स्थापन करनेके लिये उन्हें यही उपाय सूझा। इसी कुमन्त्रके बल उन्होंने मेवाड़की गौरव-रक्षाका संकल्प किया। शीघ्र ही संकल्प-सिद्धिका प्रबन्ध होने लगा।

राजाके एक घनिष्ठ आत्मीय थे महाराज दलीपसिंह। उदयपुरकी सम्मान-रक्षाके निमित्त यह पाप-कर्म करनेका अनुरोध पहले उनसे ही किया गया। प्रस्ताव सुनते ही दलीपसिंह अधीर हो गये। उन्होंने तीव्र स्वरमें कहा, "ऐसा प्रस्ताव करने वाली जिह्वाको धिक्कार है। इस तरह राज्यकी रक्षा करने वाली राजभक्तिको भी धिक्कार है।" अनन्तर राजाका भाई हाथमें तलवार लिये लावण्यवती राजकुमारीके शयनगृहमें गया।

कृष्णकुमारी सोयी थी। उसके कमल सदृश सुन्दर शरीरसे अपूर्व शोभाका विकास होता था। यह शोभा देखकर योबन दास चकित हो गया।

क्रोध, क्षोभ और वैराग्यसे वह अधीर हो गया। वह विवश था, उसके हाथकी तलवार गिर पड़ी। बात खुल गयी। कृष्ण-कुमारी और उसकी माताको सब रहस्य मालूम हो गया। माता शोकविह्वल होकर रोने लगी। परन्तु कृष्णकुमारी तनिक भी न घबड़ायी। उसने भयंकर षड्यन्त्रकी बात सुनकर भी धीरता-की सीमाका उल्लंघन नहीं किया। उसने प्रसन्नताके साथ माताको सान्त्वना देते हुए कहा, "माता! क्षणस्थायी शरीरके लिये क्यों कातर होती हो? क्या मैं तुम्हारी कन्या नहीं हूं? तब मैं क्यों मृत्युसे डरने लगी? इस समय मृत्यु मुझे अत्यन्त सुहावनी मालूम होती है। क्षत्रिय नारियां आत्मसम्मानकी रक्षाके निमित्त प्राण-त्याग करनेको ही इस संसारमें आती हैं।"

तेजस्विनी राजकुमारीने राज्यकी रक्षाके निमित्त इस तरह प्राण त्यागनेका निश्चय किया। राजाकी आज्ञासे एक भृत्य विष-का प्याला लिये कृष्णकुमारीके निकट गया। कृष्णकुमारीने पिताकी आज्ञासे प्रसन्नतापूर्वक उसे पी लिया। तदनन्तर दूसरा प्याला लाया गया। इसे भी शीघ्र ही पानकर उस देवीने पितृभ-क्तिका अपूर्व दृष्टान्त दिखलाया। इस तरह दो बार विष पीने-पर भी जब कृष्णके प्राण नहीं गए तब अन्तमें हलाहल विषका प्याला उसके सामने लाया गया। इस बार कृष्णकुमारीने बड़ी

प्रसन्नताके साथ ईश्वरको स्मरण करते हुए इसको पी लिया। इस बार उसे गाढ़ी नींद आयी। इस नींदसे वह फिर न उठी। पितृभक्तिपरायण स्वदेश हितैषिणी सोलह वर्षकी कुमारी प्रसन्नताके साथ स्वर्गको गयी परन्तु उसकी गौरवयुक्त कीर्त्ति सदा बनी रहेगी।

दुर्गावती

मध्य भारतमें इलाहाबादके दक्षिण-पश्चिम सौ कोसकी दूरी-पर गढ़मण्डल नामक एक राज्य था। ३५८ ई० में यदुपति नामका एक राजपूत यहां राज्य करता था। उसने मंडल, सोहागपुर, छत्तिसगढ़, सम्बलपुर इत्यादि जनपदको अपने राज्यमें मिला लिया था। सोहागपुर बुन्देलखंडके अन्तर्गत है। इसका अधिकांश जंगल ही है। यह स्थान छोटे छोटे वृक्षों एवं हरियालियोंसे भरे रहनेके कारण बहुत सुन्दर मालूम पड़ता है। छत्तिसगढ़ पहले रत्नपुरके नामसे प्रसिद्ध था। इसका कुछ अंश जंगल है और कुछ पर्वतमालाओंसे आच्छादित है। गढ़मंडल प्राकृतिक सुन्दरताओंसे विभूषित है।

उस राज्यका प्रत्येक ग्राम सुन्दर जलाशय एवं वाटिकाओंसे सुशोभित है। स्वच्छ जलकी नदियां धीरे धीरे प्रवाहित होकर रजतमालाकी भांति वन-भूमिकी शोभाको बढ़ाए देती हैं। कहीं कहीं सुन्दर लताएं वनपुष्पोंसे सुशोभित होकर अपनी सुन्दरताका परिचय दे रही हैं। कहीं कहीं अटल पर्वत अपनी स्वाभाविक गम्भीरता धारण किये विराट रूपसे खड़े हैं। गढ़मंडलकी राजधानी गढ़नगर जब्बलपुरसे पांच मीलकी दूरीपर नर्मदाके दक्षिण तटपर अवस्थित है। यह नगर चारों ओर पर्वतोंसे घिरा है अतः शत्रु सहजमें ही इसपर आक्रमण नहीं कर सकते।

रानी दुर्गावती

BANIK PRESS CALCUTTA

जिस समय दिल्लीके सिंहासनपर मुसलमानोंका अधिकार हुआ, भिन्न २ स्थानोंपर जिस समय वे अपना अधिकार जमाने लगे, एक राज्यके बाद दूसरे राज्यमें जिस समय उनकी विजयपताका उड़ने लगीं उस समय भी गढ़मंडलने अपनी स्वाधीनताकी रक्षा की। मुसलमान सैनिक इस राज्यका अधिकार प्राप्त नहीं कर सके। सोलहवीं शताब्दीमें इस राज्यकी लम्बाई तीन मील एवं चौड़ाई एक मील थी।

सोलहवीं शताब्दीका एक अंश बीत गया। सम्राट् अकबर दिल्लीके सिंहासनपर बैठा। भारतके उत्तर दक्षिण पूरब पश्चिम सभी भागोंपर धीरे धीरे मुसलमानोंका अधिकार हो गया। छोटे छोटे राज्योंने अपनी स्वाधीनता नष्ट कर दी।

मुगलोंके इस दिग्विजय कालमें भी प्रातःस्मरणीय प्रताप-सिंहका पराक्रम स्थिर रहा। इस समय गढ़मण्डलकी रानी अपनी क्षमताके बल शत्रुसे अपने सम्मानकी रक्षा कर सकी।

१५३० ई० में यदुरायका एक वंशज जिसका नाम दलपत-शाह था गढ़मंडलके सिंहासनपर बैठा। उस समय भी गढ़ नगर ही इसकी राजधानी थी। दलपतशाहने सिंहगढ़ नामक पार्वत्य दुर्गमें अपनी राजधानी बनवायी। इस समय महरा राज्यपर क्षत्रियोंका अधिकार था। किसी समय इनका अधि-कार सिंहगढ़से कान्यकुब्ज पर्यन्त फैला हुआ था। दुर्गावती महरा राज्यके एक क्षत्रिय राजा की कन्या थी। दुर्गावती बड़ी ही सुन्दरी और तेजस्विनी थी।

उस समय भारतवर्षमें उसके सदृश रूपवती दूसरी कोई स्त्री नहीं थी। दलपतशाहने इस सुन्दरीसे विवाह करनेका प्रस्ताव किया। दुर्गावतीके पिताने उस वंशको नीचा बतलाकर इस प्रस्तावको अस्वीकार किया। दलपत योग्य और तेजस्वी पुरुष न था। उसकी वीरताकी महिमाको समस्त गढ़-राज्य जानता था। अपूर्व सुन्दरीके साथ इस तेजस्वीका संयोग होनेसे दोनोंकी ख्याति और भी बढ़ती। दुर्गावती पहलेसे ही गुणकी पक्षपातिनी थी अतः इस तेजस्वी पुरुषको देखकर इसकी भी इच्छा उनसे विवाह करनेको हुई। दलपतशाहने भी उस क्षत्रिय नारीकी इच्छा पूर्ण करनेका संकल्प किया। दलपतने अपने सैनिकोंको लेकर महरा राज्यपर आक्रमण कर दिया और उन्हें परास्तकर दुर्गावतीको ले अपनी राजधानीको लौट गया। वीर पुरुषको उसकी वीरताका उचित पुरस्कार मिला। भलेके साथ भलेका संयोग हुआ। दोनों तेजस्वी इस तरहसे रहने लगे मानों दो पुष्प एक ही सूत्रमें गुंथे हों। गढ़मंडल इन दोनों पुष्पों-की सुन्दरतासे सुशोभित हो रहा था। तेजस्विनी दुर्गावती तेजस्वी दलपतके आश्रयमें रहकर सुखसे समय बिताने लगी।

विवाहके चार वर्ष पश्चात् वीर नारायण नामक पुत्रको छोड़-कर दलपतशाह परलोक सिधारे।

इस समय वीर नारायण केवल तीन वर्षका था। विधवा दुर्गावती अपने पुत्रके नामपर स्वयं राजकाज चलाती थी। अधर नामक एक बुद्धिमान मनुष्य उसका मन्त्री था। दुर्गावती

राज्यके सभी कामोंमें मन्त्रीसे परामर्श लेती थी । उसके उचित शासनसे गढ़मंडलकी संपत्तिकी दिन दिन वृद्धि होने लगी। उसने जब्बलपुरके निकट एक बड़ा जलाशय खुदवाया। देखा-देखी उसकी दासीने भी उसीके निकट दूसरा जलाशय खुदवाया। इसकी कथा यों है। जिस समय बड़ा जलाशय खोदा जाता था उस समय दासीने दुर्गावतीसे प्रार्थना की कि मजदूरोंको आज्ञा दे दी जाय कि उस जलाशयके निकट अमुक स्थानसे वे प्रति दिन एक एक कुदाल मिट्टी कोड़ दें। दासीकी प्रार्थना स्वीकार की गयी और उसीके अनुसार कार्य होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि उस बड़े जलाशयके पास ही एक छोटा सुन्दर जलाशय तैयार हो गया। प्रधान मन्त्री अधरने भी जब्बलपुरसे तीन मीलकी दूरीपर एक बड़ा जलाशय खुदवाया। मंडलगढ़में दुर्गावतीकी एक हाथीशाला थी। इसमें चौदह सौ हाथियोंके रहनेकी व्यवस्था थी। दुर्गावतीके राज्यमें उसकी आज्ञासे सर्वसाधारणकी भलाईके लिये नित्य नये नये काम किये जाते थे। प्रजा बहुत संतुष्ट थी। वह इन्हें माता वा देवी समझती थी। दुर्गावतीने उसका पालन पन्द्रह वर्षतक अपने पुत्रके ऐसा किया। उसके सुन्दर शासनका गौरव चारों दिशाओंमें फैल गया गढ़मंडलका इतिहास इस नारीकी अक्षय कीर्त्तिसे भर गया।

सम्राट् अकबरने छोटे छोटे राजाओं तथा जमींदारोंको अपने वशमें करनेके निमित्त सेनाकी नियुक्ति की। आसफ़ खां

नामक एक उद्धत स्वभावका सेनापति नर्मदाके तटके प्रदेशोंपर शासन करनेके लिये भेजा गया। आसफ़ खां गढ़मण्डलकी सम्पत्तिके विषयमें सुन चुका था अतः वह उसे हस्तगत करनेकी चेष्टामें लगा। अकबर शाहको अपना अधिकार बढ़ानेकी बहुत इच्छा थी। अतः उसने सेनापतिको गढ़राज्यपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये खूब उत्साहित किया। मन्त्री अधर दिल्ली गया और उसने इस आक्रमणके रोकनेकी चेष्टा की पर फल कुछ भी न हुआ। आसफ़ खांने १५६४ ई०में छ हज़ार अश्वारोही, बारह हजार पैदल सिपाही एवं कई तोपें लेकर गढ़मण्डलकी यात्रा की।

शीघ्र ही इस आक्रमणका समाचार गढ़राज्यमें फैल गया। राज्यके वृद्ध, युवक तथा बालक सभी इस समाचारको सुनकर डर गये। परन्तु तेजस्विनी दुर्गावती तनिक भी न डरी। वह साहसके साथ युद्धकी तैयारी करने लगी। थोड़ी ही देरमें गढ़राज्यके असंख्य सैनिक इकट्ठे हो गये। दुर्गावतीके पुत्र वीर नारायणकी उम्र इस समय अठारह वर्षकी थी। यह अठारह वर्षका युवक अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो निर्भय होकर युद्धयात्रियोंमें मिल गया।

दुर्गावती वीरोंको इकट्ठा कर रही थी। वह स्वयं युद्धभेषमें थी। उसके सिरपर राजमुकुट और हाथमें बर्छा तथा तलवार थी। वह घोड़ेपर सवार थी, उसके कोमल हृदयमें स्वदेशहितैषिता एवं स्वातन्त्र्यप्रियता भरी हुई थी। दुर्गावती

घोड़ेपर सवार होकर अपने सैनिकोंको उत्साहित कर रही थी। वीर नारीके वाक्यसे उत्साहित होकर गढ़मण्डलकी सेना भयङ्कर शब्दसे चारों दिशाओंको कंपाने लगी। तेजस्विनी दुर्गावतीने विधर्मी शत्रुको अपने देशसे निकालनेको ठानी। इस कार्यके लिये वह अपने सैनिकोंको उत्साहित करने लगी।

दुर्गावती जिस समय आठ हजार अश्वारोही, डेढ़ हजार हाथी एवं बहुसंख्यक पैदल सैनिकोंको लेकर सिंहगढ़के निकट शत्रुओंके सामने उपस्थित हुई उस समय विपक्षी उसकी भयंकरी मूर्त्तिको देखकर चकित हो गये। उनके हृदयमें भयका संचार हुआ जिससे कार्य-सिद्धिमें बाधा होने लगी। दुर्गावतीने दो बार आसफ़ खांपर आक्रमण किया और दोनों बार उसे जयलाभ हुआ। शत्रुपक्षके छः सौ घुड़सवार मारे गये। सेना युद्ध-स्थलका परित्यागकर भाग चली। दूसरी बार दुर्गावतीने शत्रुओंका पीछा किया। आसफ खांकी सेना तितर बितर हो गयी। एक भारतीय वीर रमणीके अलौकिक पराक्रमसे दिल्ली सम्राट्की सेनाको हार माननी पड़ी। जिन वीर पुरुषोंने भारतके कई स्थानोंमें विजयपताका उड़ायी थी उन्हें आज एक भारतीय नारीके पराक्रमके आगे सिर झुकाना पड़ा। दुर्गावती अलौकिक साहसके बल विपक्षियोंके पीछे पीछे गयी। उसने तनिक भी विश्राम नहीं किया। सारे दिन वह शत्रुके पीछे दौड़ती रह गयी। यह देखकर मुगल सेनापति चकित हो गया। इस भयंकरी महाशक्तिके तेजसे उसके साहस और उत्साह भग गये।

उसे सब दिशाएं अन्धकारमय मालूम होने लगीं। गढ़राज्यके युद्धक्षेत्रमें इस वीरांगनाने अपूर्व पराक्रम दिखलाया। उस कामिनीकी कोमल देहने इस तरह अपनी कठोरताका परिचय दिया। शत्रुओंके पीछे दौड़ते दौड़ते सारा दिन बीत गया। सूर्यास्त होनेपर दुर्गावतीने अपने सैनिकोंको विश्राम करनेकी आज्ञा दी।

उनका यह विश्राम ही दुर्गावतीके लिये बहुत हानिकारक हुआ। गढ़मण्डलके सैनिकोंने सारी रात विश्राम करनेकी इच्छा प्रगट। की इससे दुर्गावती बहुत चिन्तित हुई। थोड़ी देर विश्राम करके रात्रिमें ही शत्रुओंपर आक्रमण करनेकी उसकी इच्छा थी। उसकी इच्छाके अनुसार कार्य किया जाता तो वीर नारी अवश्य ही आसफ खांको परास्त करती। परन्तु दुर्गावतीकी यह इच्छा पूरी नहीं हुई। सभी सैनिक विश्राम करनेके लिये उत्सुक थे अतः उन लोगोंने रात्रिमें आक्रमण करनेका निषेध किया। दुर्गावतीने उन लोगोंकी प्रार्थना स्वीकार की। उधर आसफ खां चुप नहीं था। युद्धमें दो बार पराजित होनेसे उसके हृदयपर बड़ा भारी आघात पहुंचा था। गढ़मण्डलके सैनिकोंको विश्रामकी बात सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और तोपोंके साथ उनपर चढ़ आया। पौ फटते ही आसफ खाँ निर्दिष्ट स्थानपर पहुंच गया। दुर्गावतीकी सेना गढ़मण्डलसे बारह मीलकी दूरीपर थी। आसफ खांने रातमें ही उस स्थानपर चढ़ाई की। उस समयतक आसफ खांकी तोपें नहीं

पहुंची थीं। पहले दिन तो आसफ खां हार गया और उसे बहुत हानि हुई। दूसरे दिन तोपोंके पहुंचनेपर आक्रमणकारियोंने फिर भी आक्रमण किया। दुर्गावती सैनिकोंके अग्रभागमें हाथीपर सवार होकर आक्रमणकारियोंको रोक रही थी। उसके सैनिक भी पूर्ण साहसके साथ युद्ध कर रहे थे। परन्तु लगातार गोलावृष्टि होती रही जिससे वे स्थिर नहीं रह सके। गोलोंके आघातसे वे कातरसे हो गये। कुमार वीर नारायणने इस समय अलौकिक पराक्रम दिखलाया। अठारह वर्षके युवकका अलौकिक पराक्रम देखकर मुगल सेना चकित हो गयी। परन्तु असंख्य सैनिकोंके आक्रमणसे घायल होकर वह गिरने लगा। दुर्गावतीने इस अवस्थामें भी प्राणाधिक पुत्र-को युद्ध-स्थल छोड़नेकी आज्ञा न दी। उसने पुत्रको दूसरे स्थान-से लड़नेकी आज्ञा दी। अबकी बार युद्धमें वह बालक प्रबल पराक्रम और अलौकिक रण-कौशल दिखलाने लगा। विपक्षियों-ने असमयमें अचानक दुर्गावतीपर चढ़ाई की थी पर तोभी वह कातर न हुई। स्नेहका एकमात्र अवलम्बन पुत्र शस्त्रा-घातसे व्याकुल हो उठा पर तोभी वह वीर नारी अधीर नहीं हुई। दुर्गावती धीरताके साथ युद्ध करने लगी। पास ही एक छोटी पहाड़ी नदी थी। रातमें वह नदी सुखी हुई थी पर इस समय इसमें जल भरा हुआ था। दुर्गावतीने समझ लिया कि उसके सैनिक नदी पार जाकर नहीं लड़ सकेंगे। शत्रुओंके तोपोंके सामने रहकर ही उन्हें अपनी रक्षा करनी पड़ेगी। गोलोंके

आघातसे उनके अधिकांश सैनिक पृथ्वीपर लोट गये। सैनिकोंके मृत शरीर देखकर युद्ध-स्थल डरावना मालूम पड़ता था। चारों ओरसे मुगल सैनिकोंने उसे घेर लिया। तेजस्विनी दुर्गावती तनिक भी न घबड़ाई। वह केवल तीन सौ सैनिकों-के साथ मुगलोंसे लड़ रही थी। शत्रुओंके एक तीक्ष्ण वाणसे अचानक उसकी एक आंख फूट गयी। दुर्गावतीने जोरसे खींचकर इस वाणको बाहर निकालना चाहा था पर सफलमनोरथ न हो सकी। वाण निकल न सका, आंखमें ही घुसा रहा। इसपर भी दुर्गावती घबड़ाई नहीं, बड़ी कुशलतासे अपनी सेनाकी रक्षा करती रही। अनन्तर एक वाण आकर उसके गलेमें लग गया। इस तरह बारम्बारके शस्त्राघात-से दुर्गावती बहुत निर्बल हो गयी, उसे चारों ओर अन्धकारमय मालूम होने लगा। उस समय उसने युद्धकी आशा छोड़ दी। जिस उद्देश्यको लक्ष्य करके यह वीर नारी युद्ध-स्थलमें आई थी, जिस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये प्राणाधिक पुत्रकी शोचनीयावस्था देखकर भी यह वीरांगना दृढ़तासे लड़ती रही, उस उद्देश्यकी सिद्धिका कोई भी उपाय नहीं दीख पड़ा। इस अवस्थामें भी युद्ध-स्थलसे भागकर उस रमणीने भीरुताका परिचय नहीं दिया, वीरधर्मको विस्मृत कर वह शत्रुके अधीन नहीं हुई। महावतने बारम्बार हाथीको नदी पार ले जानेकी आज्ञा मांगी परन्तु दुर्गा-वती राजी नहीं हुई। वीरांगनाने वीरधर्मकी रक्षाके निमित्त समर-स्थलमें ही प्राण त्यागना उचित समझा। जिस समय

आहत अंगोंसे रक्तकी धारा बह रही थी, शरीरका तेज नष्ट होता चला जाता था उस समय इस रमणीने बड़ी तेज़ीसे महावतकी तलवार छीन ली और उसे अपनी देहमें घुसा दिया। क्षणभरमें उसका लावण्यमय शरीर पृथ्वीपर लोट गया। छः सैनिक दुर्गावतीके सामने खड़े थे। दुर्गावतीकी यह दशा देखकर वे लोग भी प्राणको आशा छोड़ स्वदेशकी स्वाधीनताकी रक्षाके निमित्त बड़ी कुशलताके साथ लड़ने लगे। थोड़ी देर युद्ध करनेके पश्चात् वे लोग भी मारे गये।

दुर्गावतीने जिस स्थानपर शरीर-त्याग किया था, यदि कोई पथिक आज भी उस राहसे जाता है तो उस स्थानको आदरकी दृष्टिसे देखता है। वहांपर दो गोलाकार पत्थर हैं। लोगोंका विश्वास है कि दुर्गावतीके युद्धके डंके पत्थर हो गये हैं। उन डंकोंका इस ऐतिहासिक घटनासे सम्बन्ध है अतः वे देखने योग्य हैं। आज भी उन डंकोंको देखकर ऐतिहासिकोंके मनमें अपूर्व भावका सञ्चार होता है।

युद्धके समय दुर्गावतीके मनुष्योंने चोरीसे आहत वीर नारायणको चोरगढ़में लाकर छिपा रक्खा था। अन्तमें आसफ खांने इस दुर्गपर भी आक्रमण किया। इस आक्रमणमें ही वीर नारायण मारा गया। दुर्गस्थ महिलाओंने जब विधर्मियोंसे अपनी रक्षाका कोई उपाय न देखा तब उन लोगोंने अपने निवासस्थानमें आग लगा दी और वे स्वयम् उसमें जल मरीं। आसफखांने दुर्ग तो जीत लिया पर कामिनियोंका धर्म रक्षित रहा।

रमणियोंने अग्निमें कूद कूदकर अपनी पवित्रताकी रक्षा की।

मुगलोंने गढ़नगर लूटकर बहुतसा धन ले लिया। दुर्गावतीके खजानेमें एक कलश मिला जिसमें एक सौ स्वर्ण मुद्राएं थीं। आजकल भी भाट लोग दुर्गावतीकी वीरताकी कहानीके गीतको जहां तहां गाकर सुनाते हैं। समयके प्रभावसे गढ़राज्यका गौरव नष्ट हो गया पर दुर्गावतीका गौरव सदा बना रहेगा। जब तक संसारमें स्वाधीनताका सम्मान बना रहेगा तबतक यह वीर नारी वीरेन्द्र समाजमें पूजनीया समझी जायगी। जब तक भारतीय जननी और जन्म-भूमिको आदरकी दृष्टिसे देखेंगे तबतक दुर्गावतीकी कीर्त्ति लुप्त नहीं होगी।

भारतमें सरस्वतीकी अपूर्व पूजा

छठवीं शताब्दी बीत गयी। नये उत्साह एवं अपूर्व आनन्द-के साथ सातवीं शताब्दीने भारतवर्षमें प्रवेश किया। उस समय भारतवर्षकी दशा आजकलकी तरह शोचनीय नहीं थी। शोकका उच्छ्वास, निराशाका आर्त्तनाद एवं महामारीका उत्पात कुछ भी नहीं था। उस समय भारतवर्ष प्रसन्न, स्वाधीन और सम्पत्तिशाली था। उस समय आर्य्योंकी कीर्त्ति चारों ओर फैली हुई थी। इसी समय दर्शनशास्त्रकी सृष्टि हुई थी जिनसे आर्य्योंकी सभ्यताका पता चलता है। उस समय कविता, ज्योतिष, गणित, चिकित्सा आदिमें भारतवर्ष सबसे बढ़ा चढ़ा था। महाराज हर्षवर्द्धन शिलादित्यके सुशासनसे भारतकी सम्पत्ति और भी दिन दिन बढ़ रही थी। महाराष्ट्रीय वीर द्वितीय पुलकेशीकी वीरतासे इसकी कीर्त्ति और भी उज्ज्वल हो गयी थी। उस समय नालन्दका गौरव चारों दिशाओंमें फैल रहा था।

इस स्थानपर भारतवासी सरस्वती माताकी पूजा करते थे। नालन्द गयाके समीपमें ही है। यह बौधोंका पवित्र तीर्थ-स्थान समझा जाता है। यह एक बड़ा आम्रकानन था, किसी धनाढ्य वणिकने इसे बुद्धदेवको दान कर दिया था। बुद्धदेव

इस आम्रकाननमें बहुत दिनोंतक रहे। धीरे धीरे यहां एक विद्यालय स्थापित किया गया। बौद्धोंकी दानशीलतासे दिन दिन इस विद्यामन्दिरकी उन्नति होने लगी। यहांतक कि यह विद्यालय सर्वप्रधान विद्यालय समझा जाने लगा। इस विद्यालयमें अठारह विषय पढ़ाये जाते थे। प्रत्येक विषयके दस हजार विद्यार्थी थे जो धर्मशास्त्र, न्याय, दर्शन, विज्ञान, गणित, साहित्य, चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थोंकी आलोचना करते थे। यह विद्यालय चारों ओर मनोहर वृक्षोंसे सुशोभित था। छः चौमहले इमारतोंमें विद्यार्थियोंके रहनेकी व्यवस्था थी। भिन्न भिन्न विषयोंके उपदेश देनेके लिये सौ मकान बने थे। इन विद्वानोंके सम्मिलनके लिये बीचमें बड़े बड़े मकान भी थे। इन शिक्षकों तथा शिक्षार्थियोंके भोजन वस्त्र तथा औषधादिके व्यय महाराज शिलादित्य देते थे। यह विद्यालय नगरसे कुछ दूरपर था अतः जनरवसे अध्ययनमें कुछ भी हानि नहीं पहुंचती थी। सभी शिक्षक तथा शिक्षार्थीगण सांसारिक प्रलोभनोंसे रहित होकर सरस्वती माताकी उपासना करते थे।

नालन्द विद्यालयकी ख्याति बाहरी सुन्दरताके लिये नहीं बल्कि भीतरी सुन्दरताके लिये थी। इस विद्यालयके शिक्षकोंकी प्रशंसा शास्त्रज्ञान तथा दूरदर्शिताके लिये थी और शिक्षार्थियोंकी प्रशंसा शास्त्रचिन्ताके लिये। इस विद्यालयके प्रधानाध्यापकका नाम था शीलभद्र। यह जिस प्रकार उम्रमें वृद्ध थे उसी तरह शास्त्रज्ञानमें भी। सर्वसाधारणमें इनका बहुत मान था।

सब शास्त्रोंकी इनमें पूर्ण योग्यता थी। इस वृद्ध पुरुषकी असाधारण धर्मपरायणता, अलौकिक दूरदर्शिता एवं अपूर्व अभिज्ञतासे यह विद्यालय अलंकृत था। चीनका प्रसिद्ध यात्री ह्यु एनसङ्ग इसी समय भारतवर्षमें आया था। उसे भारतवासियोंने यह लीला-भूमि देखनेके लिये निमन्त्रित किया था।

ह्यु एनसंग नम्रतापूर्वक उनका निमन्त्रण स्वीकार कर नालन्द गया। विद्यालयमें प्रवेश करते समय दो सौ ज्ञानवृद्ध विद्यार्थियोंने प्रसिद्ध अतिथिका योग्य सम्मान किया। उसके पीछे पीछे असंख्य बौद्ध हो लिये। किसीके हाथमें छाता था तो किसीके हाथमें पताका थी। सभी बौद्ध इस अतिथिकी प्रशंसाके गीत गा रहे थे। इस तरह आदर और सम्मानके साथ ह्यु एनसंग विद्यालयके प्रधानाध्यापकके पास लाया गया। शीलभद्र वेदीपर बैठे थे। ह्यु एन संगने बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें प्रणाम किया। ह्यु एनसंगने शीलभद्रके शिष्य होनेकी इच्छा प्रगट की। जिस तत्त्वज्ञका चीन साम्राज्यमें बड़ा मान था, जिसने देशान्तरोंमें घूम कर भिन्न भिन्न तत्त्वोंका अनुशीलन किया था, जिसके ज्ञानके सामने जनता सिर झुकाती थी उसने एक अपरिचित भारतीयको अपना गुरु माना। विद्यालयके एक उत्तम स्थानमें उसके रहनेका प्रबन्ध किया गया। उसकी सेवाके लिये दस सेवक नियुक्त किये गये। महाराज शिलादित्यने उसके प्रतिदिनका खर्च देना स्वीकार किया। इस तरह शिक्षक और शिक्षार्थियोंने उसे आदरके साथ पांच वर्षतक रक्खा। ह्यु एन-

संगने वहां रहकर पाणिनी व्याकरण, त्रिपिटक तथा अन्यान्य ग्रन्थोंका अध्ययन किया। इस समय इस विद्यालयकी दशा बहुत शोचनीय है। समयके प्रभावसे आज इस विद्यालयका नाम निशान मिट गया है।

संयुक्ता

बारहवीं शताब्दी बीत गयी। दिल्ली:चौहान वंशीय पृथ्वीराज-के अधिकारमें था। कान्यकुब्ज राठौर वंशीय वीर श्रेष्ठ जयचन्द-के अधिकारमें था। उस समय पराक्रमी समरसिंहके सुशासनसे मेवाड़ गौरवान्वित था। आर्य्यावर्त्तका शासन आर्य्यलोग स्वाधीनतासे करते थे। उस समय आर्य्यों की कीर्त्ति चारों दिशाओंमें फैल रही थी। कान्यकुब्जकी लक्ष्मी संयुक्ताके गौरवकी कहानी आज भी प्रसिद्ध कवि चन्दके शब्दोंमें मानी जाती है।

संयुक्ता कान्यकुब्जके राजा जयचन्दकी कन्या थी। अपने समयमें आदर्श महिला समझी जाती थी। उसमें केवल अनुपम सौन्दर्य्यका ही समावेश न था बल्कि उदारता एवं तेज-स्विताका भी उसमें अभाव नहीं था। महाराज जयचन्दकी राज-धानीमें ही उस लक्ष्मीके स्वयम्वरकी तैयारी हो रही थी। भारत-के सभी दिशाओंसे क्षत्रिय राजकुमार इस रत्नके पानेकी इच्छासे कान्यकुब्जमें आये थे।

आपसके विरोधने ही भारतका सर्वनाश किया। आपसके विरोधसे ही मुसलमानोंको भारतवर्षमें अपनी विजयपताका उड़ानेका अवसर मिला। दिल्लीश्वर पृथ्वीराज और जयचंदमें
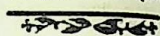
घोर विरोध था। इस विरोधसे ही दोनोंका पतन हुआ और दोनों राज्य मुहम्मदगोरीके अधिकारमें आये।

महाराज जयचन्दने संयुक्ताके विवाहके पहले राजसूय यज्ञ किया। कान्यकुब्जमें ही यह यज्ञ हो रहा था। यज्ञस्थलमें उनके विरोधी पृथ्वीराज और मेवाड़ाधिपति समरसिंह नहीं गये। उन दोनोंने जयचंदका निमन्त्रण अस्वीकार किया। अभिमानी जयचन्दने यज्ञस्थलमें उन दोनोंकी स्वर्ण मूर्त्ति बनवा रक्खी। ये दोनों मूर्त्तियां द्वाररक्षकके भेषमें सुसज्जित करके दरवाजेपर स्थापित की गयी थीं। राजसूय यज्ञ समाप्त होनेपर संयुक्ताके स्वयम्बरकी तैयारी होने लगी। भारतके बड़े बड़े राजाओंसे कान्यकुब्ज–महाराजकी स्वयम्बर सभा सुशोभित होने लगी। जब राजा लोग अपने अपने स्थानपर बैठ गये तब संयुक्ता सुन्दर वस्त्र एवम् आभूषणोंसे सुसज्जित होकर हाथमें माला लिये अपनी सखियोंके साथ सभामें आयी।

जो गुणानुरागी हैं वे बाहरी आभरणको कुछ भी नहीं समझते। संयुक्ता पृथ्वीराजकी अलौकिक वीरताके विषयमें सुन चुकी थी और उनपर आसक्त भी थी। वह जानती थी कि पृथ्वीराजके साथ मेरे पिताका घोर विरोध है तथापि अपने भीतरी भावोंको रोक नहीं सकती थी। उसने पृथ्वीराजके गलेमें ही जयमाल डालना निश्चय किया। सभामें बैठे हुए सुन्दर एवं सुसज्जित राजाओंकी ओर उसने देखा तक नहीं। संयुक्ताने पृथ्वीराजकी मूर्त्तिके गलेमें जयमाल डाल दी।

स्वयम्बरमें आये हुए सभी राजा हताश होकर वहांसे चले गये। शीघ्र ही यह संवाद दिल्ली पहुँचा। संवाद सुनते ही पृथ्वीराज अपने सैनिकोंके साथ कान्यकुब्ज आये और संयुक्ताको पितृ भवनसे छीन ले गये। जयचन्दने अपनी कन्याकी रक्षाके निमित्त यथाशक्ति चेष्टा की। कान्यकुब्जसे दिल्लीकी राहमें पांच दिनोंतक लड़ाई होती रही अन्तमें पृथ्वीराजकी ही जय हुई। जयचन्द पराजित हो कान्यकुब्ज लौट आया।

पृथ्वीराज इस अलौकिक नारी-रत्नको पाकर बड़े ही प्रसन्न हुए। संयुक्ताके असामान्य गुणोंके सामने स्वर्गका सुख भी उन्हें तुच्छ मालूम पड़ता था। थोड़े दिनोंमें ही संयुक्ताने अपने पतिको अपने गुणोंसे मुग्ध कर लिया। जिस समय पृथ्वीराज अपना जीवन इस तरह सुखसे बिताते थे उसी समय शाहबुद्दीन गोरीने भारतवर्षपर चढ़ाई की। संयुक्ता इस शत्रुसे मातृभूमिकी रक्षा करनेकी चेष्टामें लगी। सोते बैठते सदा वह इसी चिन्तामें रहती थी कि किस तरह विपक्षी सैनिकोंका नाशकर भारतवर्षकी रक्षा की जावे। उसने स्वामीको रणक्षेत्रमें जानेके लिये कहा। संयुक्ताने केवल अनुरोध ही नहीं किया बल्कि युद्धकी सामग्री पृथ्वीराजके हाथमें देकर कहा—"संसारमें कुछ भी चिरस्थायी नहीं है। आज हम लोग इस पार्थिव शरीरसे अनेकों सुख भोग रहे हैं पर यह एक दिन अवश्य ही नष्ट हो जायगा। इस क्षणभंगुर शरीरकी ममतामें पड़कर चिरस्थायिनी कीर्त्तिको नष्ट करना ठीक नहीं है। जिन लोगोंने महान् कार्य्य-

की सिद्धिमें अपने प्राण विसर्जन किये हैं वे सदा इस संसारमें वर्त्तमान रहेंगे। मुझे आशा है कि आपकी तलवार शत्रुको दो खंड कर देगी। आपका अश्व शत्रुओंके रक्तकी धारामें रंग जायगा पर युद्धकी भीषणताको देखकर कर्त्तव्यविमुख नहीं होगा। साहस, पराक्रम और यत्नके साथ लड़कर यदि आप स्वदेशकी रक्षाके निमित्त अपने प्राण विसर्जन करेंगे तो मैं भी आपके साथ ही परलोक जाऊंगी।"
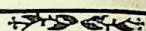
वीर नारीके ये तेजस्वी वाक्य सुनकर पृथ्वीराजका हृदय उत्साहसे भर गया। शीघ्र ही अपने सैनिकोंको बुलवाकर पृथ्वीराजने युद्ध-स्थलको प्रस्थान किया। भारतके प्रायः सभी क्षत्रिय वीरोंने इस युद्ध में अपने प्राण विसर्जन किये। आर्य्यावर्त्तके वीरोंकी आवाजसे सभी दिशाएं कांप उठीं। पृथ्वीराजने इस बड़ी सेनाका नायक बनकर शहाबुद्दीन गोरीको लड़नेके लिये ललकारा। उत्तरीय भारतके तिरौरी नामक क्षेत्रमें (नारायणपुर नामक ग्राममें यह क्षेत्र था) यह लड़ाई हुई थी। क्षत्रियोंके पराक्रमको देखकर मुसलमान लोग इधर उधर भागने लगे।। शत्रुओंकी पताका शत्रुओंके शस्त्र पृथ्वीराजके हस्तगत हुए। शाहबुद्दीन गोरीने पराजित होकर भारतवर्ष छोड़ दिया। विजयी पृथ्वीराज दिल्ली लौट आये।

इस घटनाके दो वर्ष पश्चात् शाहबुद्दीन गोरीने फिर भारतवर्षपर चढ़ाई की। इस बार भी पृथ्वीराज युद्धकी तैयारी करने

लगे। एक युद्धसभा स्थापित हुई और चारों ओरसे सैनिक-गण आकर सेनाकी संख्या बढ़ाने लगे। एक एक करके सभी क्षत्रिय राजाओंने इस युद्धमें योग दिया। कुछ दिनोंके लिये फिर भी दिल्लीमें एक बड़ी सेना इकट्ठी हो गयी।

महापराक्रमी समरसिंह दिल्लीमें आये और उन्होंने युद्ध-सम्बन्धी बहुतसी बातें कहीं। पृथ्वीराजने इन बातोंको लिख लिया। उधर युद्धमें जानेवाले वीरोंने अपने अपने परिवारके लोगोंसे विदा मांगी। माता, बहन और स्त्रीने वीरोंको विदा करते समय कहा कि युद्धसे लौट आनेकी अपेक्षा वहीं प्राण दे देना अच्छा है। संयुक्ताने अपने स्वामीको वीर भेषसे सुसज्जित किया। अचानक उसके हृदयमें एक ऐसी आशंका हुई जिससे वह व्याकुल हो गई। संयुक्ता थोड़ी देरतक पृथ्वीराजकी ओर देखती रही और उसके नेत्रसे अश्रुधारा बह चली। उसने एक लम्बी सांस लेकर कहा, "मालूम होता है कि स्वर्गके अतिरिक्त अब दिल्लीमें आपसे मुलाकात नहीं होगी।"

पृथ्वीराज दृषद्वती नदीके तटपर पहुंचे। धूर्त्त मुसलमानों-ने पहलेसे ही अपना जाल फैला रक्खा था। सीधे सादे हिन्दु-ओंने उनकी धूर्त्तता न समझी। शाहबुद्दीन गोरी अपनी सेनाके साथ नदीके उस पार छिपा हुआ था। अवसर पाकर उसने चढ़ाई कर दी। क्षत्रिय वीरोंने उतावलीमें शस्त्र धारणकर उन-का सामना किया। जबतक एक भी क्षत्रिय वीरके शरीरमें रक्तका संचार था तबतक वह लड़ा। तीन दिनोंकी घमासान-लड़ाई-

के बाद समरसिंह मारे गये। पृथ्वीराज असीम साहसके साथ लड़ते रहे पर अन्तमें कैदी हो शत्रुके हाथ मारे गये। क्षत्रियोंके शोणितसागरमें भारतका सौभाग्य-सूर्य्य डूब गया। संयुक्ताकी आशंका ठीक निकली।

शीघ्रही यह संवाद दिल्ली पहुँचा। संयुक्ताकी आज्ञासे चिता सजायी गयी और वह वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर धधकती हुई चितामें घुस गयी। क्षणभरमें उसका लावण्यमयी शरीर जलकर भस्म हो गया।

जितने दिनोंतक पृथ्वीराज रणक्षेत्रमें थे उतने दिनोंतक संयुक्ता केवल जल पीकर ही रहती थी। चन्द कविने एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी है जिसके एक अध्यायमें केवल संयुक्ताके पातिव्रत धर्मका वर्णन है। सतीशिरोमणि सावित्री सदृश संयुक्ताका पातिव्रत धर्म भी प्रशंसाके योग्य है।

आज तक भी दिल्लीमें प्राचीन कालके कुछ ऐसे भग्नावशेष हैं जिनसे सतीशिरोमणि संयुक्ताका सम्बन्ध है। जिस दुर्गमें संयुक्ता रहती थी उसकी चहारदिवारी अभी भी वर्त्तमान है। जिस प्रासादमें संयुक्ता अपने पतिके साथ रहती थी उसके स्तम्भ अब भी दिल्लीके भग्नावशेषकी शोभा बढ़ा रहे हैं। समयके प्रभावसे ये स्तम्भ चूर चूर हो जायंगे पर संयुक्ताकी कीर्त्ति सदा बनी रहेगी। सरलता, पातिव्रत्य एवं महाप्राणताके कारण उसका नाम इतिहासमें स्वर्णाङ्कित रहेगा।

राजबाई

भारतके पश्चिम भागमें गुजरातमें उदयन नामक एक प्रदेश था। उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यमें राजबाई नामकी एक तेजस्विनी रमणी यहां राज्य करती थी। राजबाईमें राज्य-शासनोचित सभी गुण वर्त्तमान थे। वह जिस तरह तेजस्विनी थी उसी तरह दृढ़ता एवं शासनदक्षताके गुणोंसे भी विभूषित थी। इस नारीका हृदय यद्यपि कोमल था पर इसमें कष्ट सहनेकी अपूर्व शक्ति थी। अनन्त सम्पत्तिकी अधिकारिणी होनेपर भी इसमें विलास-प्रियताका समावेश नहीं था। वह अपनी संतानकी तरह प्रजाओं-का पालन करती थी। अबला होकर भी इसने अपने आत्मबल-से संसारको चकित कर दिया। सर्वसाधारणके सामने कई बार इसने अपनी प्रधानताका परिचय दिया। आवश्यकता पड़ने-पर तलवार निकालनेमें भी इसने संकोच नहीं किया। इसी तरह-की बहुत सी बातें उस वीर रमणीके विषयमें सुनी जाती हैं। राजबाई राज्यशासनके सभी गुणोंसे युक्त थी। वह किसीकी बातमें पड़कर दूसरेका अनिष्ट नहीं करती थी। उसके सुशासन-से राज्य समृद्धिशाली होने लगा था। अंग्रेजोंने भी सुशासन-के कारण राजबाईकी प्रशंसा की थी।

धीरे धीरे राजबाई बूढ़ी हो चली। जब वह सत्तर वर्षकी हुई तब पुण्यसंचय करनेके लिये तीर्थाटन करनेको उद्यत हुई।

शीघ्रही तीर्थयात्राकी तैयारी की गयी। राज्यका सच्चा अधिकारी उस समय नाबालिग था। अपने एक आत्मीयपर राज्य-रक्षा-का भार छोड़ राजबाई तीर्थाटनको गयी। बहुत दिन बीत गये परन्तु राजबाई लौटकर नहीं आई। वर्त्तमान शासनकर्त्ताको राज्यका लोभ हुआ और उसने निश्चय किया कि राजबाईको उसका राज्य नहीं लौटाऊँगा।

बहुत दिनोंके बाद राजबाई अपने सेवकोंके साथ तीर्थाटन-से लौटी। राजाको आज्ञासे नगररक्षकोंने उसे नगरमें घुसने नहीं दिया। नगरमें जानेवाले सभी द्वार बन्द थे। राजबाईने शहरमें जाना चाहा। शासनकर्त्ताने कहा कि, आप वृद्धा हुईं, आपकी मृत्युका समय समीप है, संसार परित्यागकर आपको ईश्वरका भजन करना चाहिये। तेजस्विनी राजबाईको यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने राजकोट जाकर ब्रिटिश रेजिडेन्टसे सभी बातें कहीं।

जब वीर रमणीने देखा कि अंग्रेजोंकी सहायतासे मेरी अभीष्ट सिद्धि नहीं होगी तब वह स्वयं अपने राज्यके उद्धारकी चेष्टामें लगी। वृद्धा होनेके कारण उसके चमड़े सिकुड़ गये थे और पहले सा तेज अब उसमें नहीं था परन्तु अब भी वह अपने संकल्पमें उसी तरह दृढ़ थी। राजबाई सेना एकत्रित करने लगी। धीरे धीरे एक हजार सैनिक उसके अधीन हो गये। राजबाईने युद्धभेष धारण किया। सत्तर वर्षकी बुढ़िया कठिन कवच पहन, हाथमें तीक्ष्ण तलवार ले अपने सैनिकोंके साथ उदयनकी ओर

चली। राजबाई युद्धभेषसे सुसज्जित होकर नगरके दरवाजेपर आयी। इस बार भी उन लोगोंने राजबाईकी आज्ञाका पालन नहीं किया बल्कि वे गोली चलाने लगे जिससे राजबाईकी सेनाका एक प्रधान नायक मारा गया। राजबाई तनिक भी न घबड़ाई। विपक्षी उसीको लक्ष्य करके गोलियोंकी वृष्टि करने लगे। गोलियोंके आघातसे एक दूसरा सेनानायक उसके पास ही पृथ्वी पर लोट गया। यह देख कर भी यह वीरांगना नहीं घबड़ायी। उसका साहस और भी बढ़ गया।

मालूम होता था कि उसके शरीरमें युवावस्थाका जोश फिरसे आ गया है। नये उत्साह और नये तेजके साथ वह लड़ती रही। घोड़ेपर चढ़ी हुई राजबाई तलवार निकालकर अपने सैनिकोंको उत्साहित कर रही थी। नगररक्षक इस वृद्धाका पराक्रम देखकर चकित हो गये। अब उन लोगोंकी शक्ति जाती रही और घबड़ाकर उन लोगोंने नगरका द्वार खोल दिया। राजबाई नगरमें घुस गई। अपनी तेजस्विताके बल एक क्षणमें ही उसने उदयन नगरपर फिर भी अधिकार प्राप्त कर लिया। वह शासनकर्त्ता भी भाग गया। राजबाई फिर भी उदयन नगरपर राज्य करने लगी।

भारतवर्षके सत्तर वर्षकी स्त्रियोंमें ऐसा पराक्रम था। जिस अवस्थामें मनुष्यकी शक्ति जाती रहती है उसी अवस्थामें एक वीर नारीने अलौकिक पराक्रम दिखलाकर नष्ट राज्यका उद्धार किया। तीस वर्षतक इस नारीने राज्य किया। अंग्रेज लोग कभी भी इसकी तेजस्विता और दृढ़ताका अपमान नहीं कर सके।

वीरांगनाके वीरत्वकी महिमा

जिस समय मुगल सम्राट् अकबर दिल्लीमें राज्य करता था उस समय चारों दिशाओंमें उसकी विजय-पताका फहरा रही थी। भारतके सभी राजाओंने एक एक करके अकबरक प्रधा-नता स्वीकार की। सम्राट् अपने पराक्रम तथा कौशलके बल एक बड़ा भारी राज्य स्थापित कर सका। उन दिनों समस्त भारतवर्षमें उसके गौरवकी कहानी सुनी जाती थी। जनता उसकी क्षमता, प्रधानता एवं गुणग्राहकताको देखकर उसे देवता-तुल्य समझती और उसकी पूजा करती थी। अकबरके राज्यमें एक विशाल बाजार लगता था। इस बाजारमें पुरुष नहीं जाते थे सुन्दर सुन्दर स्त्रियां चारों ओर दूकानोंको सजाकर इस बाजारकी शोभाको बढ़ाती थीं। सम्राज्ञी स्वयं इस बाजारमें जाती थी।

छोटे छोटे राजाओंकी स्त्रियां भी इस बाजारमें चारों ओर घूमती थीं। राजपूत स्त्रियां सुन्दर सुन्दर वस्त्र एवं आभूषणोंको पहनकर इस बाजारकी शोभाको बढ़ानेके लिये जाती थीं। समस्त बाजारमें जो कुछ सुन्दर वा मनको तृप्त करनेवाली चीजें थीं उन्हें स्त्रियोंने ही सजाया था। स्त्रियां ही इन चीजोंको खरीदनेवाली तथा बेंचनेवाली थीं। लावण्यवती स्त्रि-

योंकी अद्वितीय सुन्दरतासे मालूम होता था कि यह एक दूसरा ही लोक है। सम्राट् अकबर स्त्रीका वेष धारणकर इस बाजारमें घूमने जाता था। वहां इसके नेत्र स्थिर नहीं रहते थे। वह स्त्रियोंकी सुन्दरता एवं उनके क्रय-विक्रयको देखकर बहुत प्रसन्न होता था। उसे यह विचारकर बड़ी प्रसन्नता होती थी कि मेरा महल सुन्दर सुन्दर स्त्रियोंसे सुशोभित है। वह बड़े आनन्दके साथ एक दूकानसे दूसरी दूकानपर जाता था और प्रत्येक दूकानपर एक न एक चीजका मूल्य पूछता था। बेंचनेवालीके जवाब देनेपर वह हंसता और स्वर्ण-मुद्रा निकाल कर उस चीजको खरीद लेता। स्त्री भी हंसकर स्वर्ण–मुद्रा ले लेती थी। खिले हुऐ कमलके सदृश उन स्त्रोंकी कान्तिसे यह बाजाररूपी सरोवर शोभायमान रहता था। अकबरशाह आनन्दके साथ इस कमलवनमें विचरण करता था। प्रत्येक मासके नवें दिन यह बाजार लगता था। इतिहासमें यह बाजार 'नवरोजा' के नामसे प्रसिद्ध है। अकबरने ही इस बाजारकी प्रतिष्ठा की थी। अकबरने आदर देनेके लिये इसका नाम 'आनन्द दिन' रक्खा था।

एक दिन एक रूपवती स्त्री यह बाजार देखने आयी। उसकी सुन्दरता एवं गम्भीरतापर मुग्ध होकर सभी स्त्रियां उसे एक टकसे देखने लगीं। इस युवतीकी सुन्दरतामें मानों विद्युतकी शक्ति भरी थी जिसने सारे बाजारको मुग्ध कर दिया। युवती धीरे धीरे सब चीजोंको देखती हुई एक दूकान-

से दूसरी दूकानपर गयी। अच्छी अच्छी चीजोंकी शिल्पचातुरी-को देखकर वह प्रसन्न तो अवश्य हुई पर स्त्रियोंकी निर्लज्जता देखकर वह मन ही मन बहुत दुःखी हुई। स्त्रियां हँस हँसकर बातें करती थीं और उस हँसीसे निर्लज्जता टपकती थी। अतः यह सलज्ज युवती उनकी हँसीसे प्रसन्न होनेके बदले मन ही मन खिन्न हुई। यह अद्वितीय सुन्दरी उन स्त्रियोंकी अधोगतिपर मन ही मन शोक प्रकाश करती हुई बाजारसे चले जानेको तैयार हुई। सम्राट् अकबर कुछ देर तक उस स्त्रीको देखते रहे। वे उसकी सुन्दरतापर मुग्ध हो गये। युवती बाजारसे बाहर निकली और धीरे धीरे राह चली जाती थी कि अचानक उसकी गति रुक गयी। उस युवतीने देखा कि सम्राट् अकबर सामने खड़ा है। सम्राट् अकबर उसके रूपपर मुग्ध था अतः उसने उसकी राह रोकनेमें सङ्कोच नहीं किया। यह देखकर वह स्त्री बहुत क्रुद्ध हुई। असमयमें भारतके सम्राट्को सामने देख-कर वह तनिक भी नहीं घबड़ायी। शीघ्र ही वह तलवार निका-लकर अपनी सम्मान-रक्षाके निमित्त सम्राट्पर वार करनेके लिये तैयार हो गयी। युवतीने भारत-सम्राट्को तलवारका लक्ष्य बना कर गम्भीर स्वरमें कहा—"जो नराधम पवित्र क्षत्रियकुलको कलंकित करनेकी चेष्टा करेगा उसे इसी शस्त्रसे उचित शिक्षा दी जायगी।" सम्राट् अकबर उस लावण्यवती ललनाकी भयं-कर मूर्त्तिको देखकर चकित हो गया। वह कुछ भी बोल न सका। वीरांगनाकी वीरता और तेजस्वितासे उसे बड़ी प्रस-

न्नता हुई। गुणग्राही सम्राट्ने उस नारीकी मर्य्यादाकी रक्षा की और उसे सम्मानके साथ विदा किया।

यह वीर नारी शक्तावतवंशके स्थापककी कन्या थी। एक बार सम्राट् अकबरको इसे सिर झुकाना पड़ा था। ऐसे बड़े सम्राट्ने जब कुमार्गपर पांव रक्खा तब उसे एक स्त्रीके सामने अपना मस्तक नीचा करना पड़ा। चिर प्रसिद्ध राजपूतानाकी महिलाओंने अपने वंशके गौरवकी रक्षाके लिये सम्राट्के सामने अपनी तेजस्विताका परिचय दिया।

ईश्वरकी महिमा! आज केवल उनके गौरवसे ही हम लोग अपनेको धन्य समझते हैं।
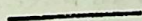
वीर बालाका आत्म-विसर्जन

मेवाड़के अधीन भाइन स्रोर नामक एक प्रसिद्ध जनपद है। इसका शासनकर्त्ता था मेवाड़का एक सामन्त राजा। भाइन स्रोर दुर्गके एक ओर गगनस्पर्शी पर्वत शोभायमान है। पर्वतके निचले भागमें चम्बल नामकी एक नदी बहती है। दुर्गसे यह प्राकृतिक मनोहर दृश्य और भी सुन्दर मालूम पड़ता है। इसके पश्चिम ब्राह्मणी नदी पर्वतके ऊपर शब्द करती हुई बड़े वेगसे नीचे गिरती है। यह सुन्दर जनपद एक समय प्रमर वंशीय एक राजपूतके अधिकारमें था। इस राजपूतका विवाह बेगु-निवासी मेघावतवंशीय एक क्षत्रियकी कन्यासे हुआ था। विवाहके पश्चात् दोनों स्त्री पुरुष बड़े प्रेमसे उसी दुर्गमें रहने लगे। पर्वतकी अपूर्व शोभा उन्हें बहुत भाती थी। निकटवर्त्ती नदीकी धारा देखकर दोनोंको एकसा आनन्द मिलता था। पवित्र प्रेमके सूत्रमें दोनों इस तरह बँधे थे कि उन्हें आपसमें कुछ भी अन्तर नहीं मालूम पड़ता था।

एक दिन दोनों उसी प्रासादमें बैठकर पचीसी खेल रहे थे। दोनों आनन्द-तरंगमें गोते लगाते और एक दूसरेको हरानेकी चेष्टामें लगे थे। कभी नायक हारता था तो कभी नायिका हार जाती थी। इसी तरह एकदूसरेको हराकर बहुत प्रसन्न होते थे।

एक बार स्त्री पुरुषको हराकर अपना क्रीड़ा-कौशल दिखलाती तो दूसरी बार पुरुष स्त्रीको हराकर उसके गर्वपर हँसता था। इसी तरह भाइन स्रोरके दुर्गमें दोनों स्त्री-पुरुष आनन्दके साथ खेलते थे।

देखतेही देखते इस अनन्त सुखके भीतरसे तीव्र हलाहलकी उत्पत्ति हुई। आनन्दके लिये यह खेल प्रारम्भ किया गया था पर इसका परिणाम एकदम उलटा हुआ। मजाकमें ही बात बढ़ गयी और स्रोर-राजाने क्रोधमें आकर अपने ससुरालवालोंको लक्ष्य-करके कुछ बातें कह दीं। तेजस्विनी राजकुमारी पितृकुलका अपमान नहीं सह सकी। क्रोधके मारे वह जल भुन गयी। यहांके आदर और धनको वह घृणाकी दृष्टिसे देखने लगी। उसने इस अपमानके निवारणकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। दूसरे दिन एक दूत भेजकर उस स्त्रीने सब बातें अपने पिताको जना दीं।

बेइगु राजदूतके मुखसे अपने वंशकी निन्दा सुनकर बड़े क्रुद्ध हुए और दामादसे युद्ध करनेकी तैयारी करने लगे। शीघ्रही सैनिकगण राजधानीमें एकत्रित होने लगे। बेइगुराज इन सैनिकोंके साथ अरण्य पारकर भाइन स्रोरके निकट पहुंचे। यहांपर सेना दो भागोंमें विभक्त की गयी। बेइगुराज एक सेना लेकर दुर्गम गिरिपथसे जाने लगे।

बेइगुराजका पुत्र दूसरी सेना लेकर ब्राह्मणी नदीके किनारे २ आगे बढ़ा। यह दूसरी सेना पहले भाइन स्रोर पहुंची। बेइगुराज का लड़का हाथमें तलवार लिये भाइन स्रोरके स्वामीके सामने

आया। प्रमरराज भी कायर नहीं था। वह भी तलवार निकाल-कर द्वन्द युद्ध करने लगा। इस युद्धमें बेड़ुराजका लड़का ही विजयी हुआ। पिताके आनेके पहले ही उसने अपने वंशके अपमान करनेवालेको मार डाला।

सब समाप्त हो गया। पतिके लहूलुहान मृत शरीरको देख-कर पत्नीका क्रोध जाता रहा। उसके हृदयमें पतिके लिये अपूर्व प्रेम और अनुरागका संचार हुआ। उसने पतिके साथ जानेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। बेड़ुराजने उसे रोकना उचित नहीं समझा।

ब्राह्मणी और चम्बल नदियोंके संगमस्थलपर चिता सजा-यी गयी। राजपूत रमणी प्रसन्नताके साथ पतिके साथ सो गयी। बेड़ुराजने अपने हाथसे वह चिता जला दी। देखते देखते वह प्रमर पत्नी अपने मृत स्वामीके साथ जलकर भस्म हो गयी। तेजस्विनी नारी इस कठोरतासे अपने अपमानका बदला चुकाकर स्वयं अपने पतिके साथ परलोकको गयी।
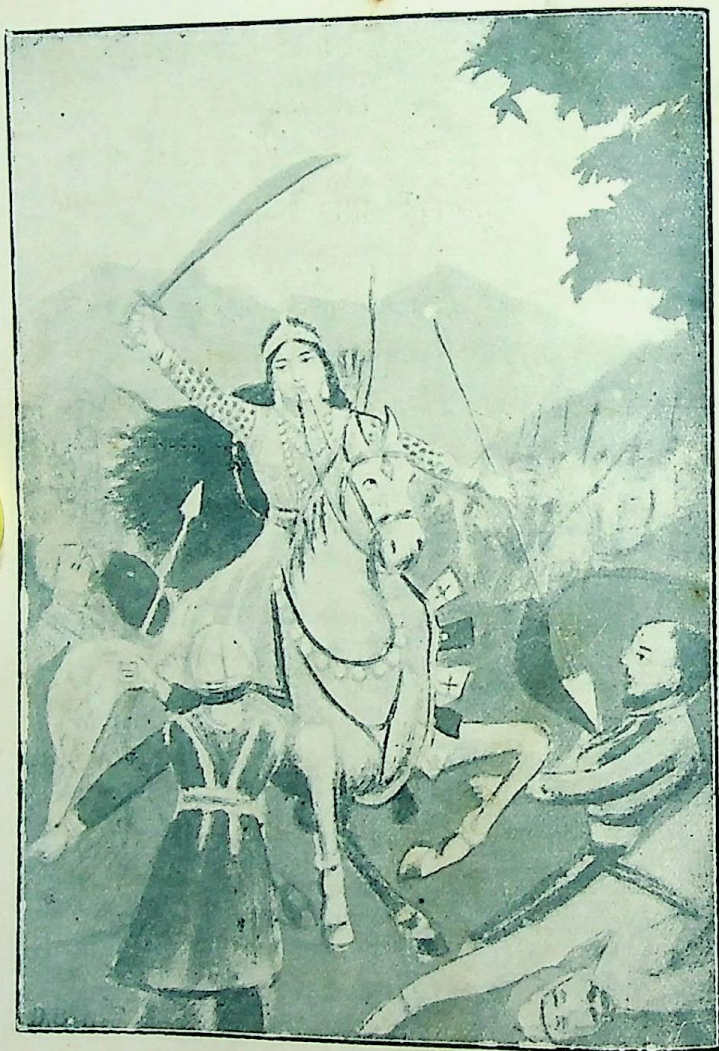
सिंहलद्वीप की स्त्री तेजस्विनी दुर्गावती

BANIK PRESS. CALCUTTA.

वीरनारी

पन्द्रहवीं शताब्दी बीत गयी। समयके परिवर्त्तनके साथ साथ सोलहवीं शताब्दी संसारमें अपना प्रभाव जमाने लगी। इस समय भारतवर्षमें मुसलमानोंका अधिकार पूर्ण रूपसे जम गया था। लोदी वंशीय राजाओंके बाद भारतवर्षके राजा हुए मुगल वंशीय मुसलमान। पंजाबसे दिल्ली पर्य्यन्त मुगलोंकी ही विजय-पताका फहराती थी। धीरे धीरे बंगाल, गुजरात और मध्य भारतमें भी इनका अधिकार हो गया। प्रथम मुगल सम्राट् बाबरके मरनेके बाद उसका लड़का हुमायूं गद्दीपर बैठा। कालचक्रके प्रभावसे भारतवर्षकी स्वाधीनता धीरे धीरे नष्ट हो गयी। इस दुःखके समयमें एक वीर नारीने अलौकिक तेजस्विता दिखलायी। इस वीर नारीने शत्रुके सामने अपने प्राण विसर्जन कर स्वाधीनताकी रक्षा की।

गुजरात हिन्दुओंके अधिकारसे चला गया और मुसलमानोंके हाथमें आया। जिस समय हुमायूं दिल्लीके सिंहासनपर बैठा उस समय गुजरातका शासनकर्त्ता था बहादुरशाह। १५२८ ई०में बहादुरशाहने अहमदनगरपर आक्रमण किया। इस समय अहमदनगरके अधिपति थे निजाम साहब। निजाम साहबने

नामके लिये अधीनता स्वीकार कर ली पर अपना काम पहले-की ही तरह स्वतन्त्रतापूर्वक करते रहे। इसके तीन वर्ष बाद १५३१ ई०में निजाम साहबसे बहादुरशाहकी मुलाकात हुई। बहादुरशाहने निजाम साहबके सम्मानकी रक्षा की। बहादुर शाहने निजाम साहबको अपने सामने राजाकी उपाधिसे विभूषित किया। इस समय राइसनदुर्ग एक हिन्दू राजाके अधिकारमें था। इसके अधिपतिका नाम था सिह्लादि। बहादुर-शाहने इस हिन्दूराजापर चढ़ाई की।

सिह्लादिने विवश होकर अपनेको मुसलमान राजाके हाथमें समर्पण कर दिया। कुछ देरतक लड़ाई करनेके बाद सिह्लादिके भाई लक्ष्मणने भी मुसलमानोंकी अधीनता स्वीकार कर ली। लक्ष्मणको विश्वास हो गया था कि दुर्ग छोड़ देनेसे सिह्लादि मुक्त कर दिया जायगा। मुसलमानोंने लक्ष्मणके सामने यह बात स्वीकार भी की थी। इसीपर विश्वास करके लक्ष्मणने लड़ाई छोड़ दी। तेजस्विताके साथ अपनी रक्षा करके उन्होंने क्षत्रियोचित धर्मका परिचय नहीं दिया। दुर्ग मुसलमानोंके अधिकारमें आया। वे भीतर घुसकर अत्याचार करने लगे। वे अपनी पहली प्रतिज्ञाका ख्याल न कर दुर्गनिवासियोंकी हत्या करने लगे। विश्वासघातियोंने ही भारतका सर्वनाश किया। विश्वासघातके ही कारण दिल्लीका रत्नसिंहासन हिन्दुओंके हाथसे चला गया। इस समय विश्वासघातसे ही राइसन दुर्ग-में हिन्दुओंकी रक्तधारा बहायी गयी। लक्ष्मण यह आकस्मिक

उपद्रव देखकर चकित हो गया और स्त्रियोंको वहांसे हटानेके लिये दुर्गमें घुसा। भीतर जानेपर उसने सिहलादिकी स्त्री तेजस्विनी दुर्गावतीको देखा। लक्ष्मणको देखकर उसके नेत्र लाल हो गये वह क्रोधके आवेगमें बोली—"इस दुर्भेद्य दुर्गको तुमने शत्रुके हाथमें समर्पण कर दिया। शत्रुके साथ युद्ध नहीं करके तुमने अपनी कायरताका परिचय दिया है। तुच्छ शरीरकी ममतासे तू शत्रुके अधीन हो गया। तूने अपने वंशको कलंकित किया है। तुम्हारे जैसे नीच और कापुरुषको धिक्कार है!"

यह कहकर दुर्गावतीने अपने घरमें आग लगा दी। प्रसन्नतापूर्वक वह अन्यान्य नारियोंके साथ स्वर्गको चली गयी। इस घटनासे लक्ष्मणके कलेजेपर गहरी चोट लगी। इस तेजस्विनीकी करतूत देखकर वह बहुत लज्जित हुआ। वह अपनेको स्वयं घृणाकी दृष्टिसे देखने लगा। क्षणभरके बाद ही वह अपने अनुचरोंके साथ तलवार लेकर दुर्गरक्षकोंसे लड़नेको तैयार हुआ। सभी हिन्दू वीर उस दुर्भेद्य दुर्गमें मुसलमानों द्वारा मारे गये। मुसलमानोंने दुर्गपर अधिकार जमाया पर वे दुर्गका गौरव नष्ट नहीं कर सके। वीर नारी दुर्गावतीकी अनन्त कीर्त्ति राइसनके इतिहासमें स्वर्णांकित रहेगी।

रमणीका शौर्य

रायमल १४७४ ई० में मेवाड़के सिंहासनपर बैठा। असाधारण वीरत्व और अपने पवित्र चरित्रके कारण यह राजा राजस्थानके इतिहासमें विशेष प्रसिद्ध समझा जाता है। इनके तीन पुत्रोंके नाम थे संग्रामसिंह, पृथ्वीराज और जयमल। अपनी उद्धत प्रकृतिके कारण पृथ्वीराज पिताकी आज्ञासे देशसे निकाल दिया गया। शेष दोनों लड़के पिताके पास ही रहते थे। कुछ दिनोंके बाद सबसे छोटेकी भी मृत्यु हो गयी। यह क्षत्रिय वंशका गौरव नष्ट करनेपर उद्यत था इसीसे एक क्षत्रिय वीरने इसका सिर काट डाला।

सुरतनुकी तलवारसे जयमल मारा गया। अनुचित रीतिसे वह राजस्थानकी सुन्दरी ताराबाईसे विवाह करना चाहता था इसीसे उसे यह दण्ड मिला।

पराक्रमी रायमलने क्षात्रकुलकलंकी पुत्रके घातकको उचित पुरस्कार दिया। मेवाड़के राजकुमारको मारनेके बदले सुरतनुको वेदनोर पुरस्कारस्वरूप मिला। धीरे धीरे यह बात चारों ओर फैल गयी। पृथ्वीराजको भी यह बात मालूम हो गयी कि जिस चीजकी प्राप्तिके लिये उनका छोटा भाई मारा गया था उसीकी प्राप्तिके लिये ये भी चेष्टा करने लगे। पृथ्वीराज वेद-नोर गये और सुरतनुके सामने उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं टोडा-

पर अधिकार प्राप्त करके आपको वहांका राजा बनाऊंगा। यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सका, यदि मैं अपने पराक्रमसे पाठानोंको परास्त नहीं कर सका तो मैं अपनेको क्षत्रिय नहीं कहूंगा।

तेजस्विनी ताराबाईने तेजस्वी पृथ्वीराजके आसाधारण साहस और पराक्रमकी बातें सुनीं। ताराबाईने इसी पराक्रमी युवकसे विवाह करनेका संकल्प किया। शीघ्र ही युद्धकी तैयारी की गयी। पितासे परामर्श करनेके पश्चात् ताराबाई भी युद्ध-स्थलमें जानेको तैयार हो गयी।

मुहर्रमका दिन था। मुसलमान लोग अपने धार्मिक कार्य्यमें लगे थे। मुसलमानोंके शोक-संगीतसे चारों दिशाएं गूंज रही थीं। पृथ्वीराजने उसी दिन ताराबाईके साथ पांच सौ घुड़सवारोंको लेकर टोडा राज्यपर धावा किया। टोडा पहुंचकर देखा कि मुसलमान लोग ताजियाके साथ साथ नगरमें घूम रहे। यह देखकर पृथ्वीराजने अपने सैनिकोंको अलग छोड़ दिया और कुछ विश्वस्त सहचरोंको ले ताराबाईके साथ उन मुसलमानोंमें जा मिले। इस समय पाठान राजा लिल्लाके प्रासादके पास ताजिया पहुंच गया था। लिल्ला ताजियाके साथ जानेके लिये कपड़े पहन रहा था। ज्योंही वह इन तीन अपरिचित अश्वारोहियोंके विषयमें पूछना चाहता था त्योंही ताराबाई और पृथ्वीराजके वाण उसके वक्षस्थलमें जा घुसे जिससे वह बेहोश गिर पड़ा। फिर कभी उसे होश नहीं हुआ। इस आकस्मिक

घटनासे पाठान लोग डर गये और चारों ओर हल्ला मच गया। तीव्रताके साथ तीनों अश्वारोही नगरके द्वारपर चले आये। इस जगह एक बड़ा हाथी उनकी राह रोककर खड़ा था। तेजस्विनी ताराबाई अपने कर्तव्यसे विमुख नहीं हुई। उसने अपनी तलवारसे हाथीको घायल कर दिया। हाथी यन्त्रणासे अधीर होकर भाग गया। वीर रमणीकी अलौकिक वीरतासे रास्ता साफ हो गया। अनन्तर वे लोग आगे बढ़े और अपने सैनिकोंमें जा मिले।

उधर अफ़गान लोग भी युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये परन्तु वे लोग राजपूत सैनिकोंका मुकाबला नहीं कर सके। ताराबाईने इस युद्धमें अलौकिक वीरता दिखलायी। मालूम होता था कि उसमें विजलीकी शक्ति आ गयी थी। वह बड़ी तेज़ीसे शत्रु-सैन्यमें घुसी और उन्हें नाश करने लगी। पाठान हार गये और उनके सैनिक युद्ध-स्थलसे भागने लगे। असंख्य विपक्षी सैनिक समर-भूमिमें लोट गये। टोडामें फिर भी राजपूतोंकी विजयपताका उड़ने लगी। वीर पुरुषकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। पृथ्वीराजने सुरतनुको टोडाका अधिपति बनाया। सुरतनुने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार ताराबाईको पृथ्वीराजके हाथमें समर्पण कर दिया। तेजस्विनी राजकुमारी तेजस्वी पुरुषकी सहधर्मिणी होकर राजस्थानके गौरवको बढ़ाने लगी।

पृथ्वीराज मेवाड़ गये और अपनी स्त्रीके साथ कमलमीरके प्रासादमें रहने लगे। इसके बाद उन्हें कई लड़ाइयां लड़नी पड़ीं। सभी लड़ाइयोंमें ताराबाईने उन्हें उत्साहित किया था। वीर

रमणी सदा अपनी तेजस्विताके बल वीर-भूमि मेवाड़के गौरवकी रक्षा करती रही ।

सम्पत्ति चञ्चला है । यह सदा एक जगह नहीं रहती । सिरोही राजा प्रभुरावके साथ पृथ्वीराजकी बहनका विवाह हुआ था। प्रभुराव अपनी स्त्रीके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता था। इससे पृथ्वीराज सिरोही गये और प्रभुरावको समझाया। प्रभुराव संकुचित हृदयका था अतः वह इसे अपना अपमान समझ बदला लेनेकी चेष्टामें लगा। लौटते समय उसने खाद्य पदार्थमें विष मिलाकर स्वयं अपने हाथसे पृथ्वीराजको खानेके लिये दिया। पृथ्वीराजको स्वप्नमें भी ऐसा विश्वास नहीं था। वह उस खाद्य पदार्थको अपने पास रख कमलमीरके प्रासादकी ओर चले। राहमें जब उन्हें भूख लगी तब उन्होंने हलाहल विषमिश्रित खाद्य पदार्थको खा लिया। धीरे धीरे उनकी शक्तिका ह्रास होता गया। जब वे देवीके मन्दिरके पास पहुँचे तब आगे नहीं चल सके। अब उन्हें मालूम हो गया कि भोजनमें हलाहल विष था। मृत्यु निकट समझ उन्होंने अपनी स्त्रीके पास बुलावा भेजा। ताराबाईके आनेके पहले ही उनके प्राण निकल गये। जब ताराबाईने देखा कि उसके पति इस संसारमें नहीं हैं तब वह भी पतिके साथ स्वर्गमें जानेको तैयार हो गयी। उसी पवित्र मन्दिरके निकट चिता सजायी गयी और ताराबाई अपने पतिके साथ साथ जलकर भस्म हो गई।

संतोषक्षेत्र

जो लोग भारतवर्षके इतिहाससे परिचित हैं, भारतके प्राचीन गौरवकी कहानी जिन्हें मालूम है,वे अवश्य ही आर्य्यों की प्राचीन कीर्त्ति स्मरण करके प्रसन्न होते होंगे। आर्य्यों की कीर्त्ति केवल युद्धमें ही समाप्त नहीं हुई। तिरौरी एवं हल्दीघाट, देवी तथा नवशेरा, रामनगर और चिलियानवाला नामक युद्ध-स्थलमें आर्य्यों ने जो वीरता दिखलायी उसका वर्णन इतिहासमें है। इसके अतिरिक्त उन आर्य्य पुरुषोंकी बुद्धि, ज्ञान, सत्यता एवं दान-शीलताकी बातें सुनकर सारा संसार उनको पूजनीय समझता है। भारतवर्षमें प्रताप जैसे आदर्श वीर, शंकराचार्य्य जैसे ज्ञानी बुद्ध जैसे धर्म्मनिष्ठ एवं शिलादित्य जैसे दानशील मनुष्योंकी संख्या कम नहीं थी। यहां भारतवर्षकी अपूर्व दानशीलताका कुछ वर्णन किया जायगा। सातवीं शताब्दीमें जिस समय महाराज हर्षवर्द्धन शिलादित्यने कान्यकुब्जके सिंहासनको सुशोभित करके पूर्व और पश्चिमके अनेक राज्योंमें अपनी विजयपताका उड़ायी थी, जिस समय महावीर द्वितीय पुलकेशीने अपने असाधारण पराक्रमसे महाराष्ट्रकी स्वाधीनता-की रक्षा की थी, चीन यात्री ह्यु एनसंग जिस समय नालन्द महाविद्यालयमें आकर निवास करता था, उसी समय महाराज

शिलादित्य गंगा यमुनाके संगम-स्थल प्रयागमें एक महोत्सव करते थे।

यह महोत्सव-स्थल प्रयागकी पांच छः मील भूमिमें होता था। इस पवित्र भूमिको लोग "संतोषक्षेत्र" कहते थे। इस क्षेत्रके चारों ओर चार हजार वर्ग फीट भूमि गुलाबके फूलकी वृक्षोंसे सुगन्धित रहती थी। इस घेरेके बीच बड़े बड़े मकान थे जिनमें सुनहले, रुपहले, सूत तथा रेशमके कपडे तह बतह सजाए जाते थे। घेरेके चारों ओर सुन्दर सुन्दर खाद्य पदार्थ सजाए रहते थे जो देखनेमें दूकानकी तरह बहुत ही सुन्दर मालूम पड़ते थे। एक एक भोजनालयमें एक बार हजार मनुष्योंके भोजन करनेकी व्यवस्था थी। उत्सवके कई दिन पहले ही घोषणा द्वारा ब्राह्मण, निराश्रय, दुःखी, पितृहीन, मातृहीन, भाई-बन्धुशून्य व्यक्तियोंकी बुलाहट दान ग्रहण करनेके निमित्त होती थी। महाराज शिलादित्य अपने मन्त्री एवं अन्यान्य अधीन राजाओंके साथ वहां वर्त्तमान रहते थे। अधीन राजाओंमें वल्लभी राज्यके अधिपति ध्रुवपति एवं आसामके राजा भास्कर वर्म्मा प्रधान थे। इन दो राजाओंकी सेनाएं एवं महाराज शिलादित्यकी सेनाएं सन्तोषक्षेत्रके चारों ओर पहरा देती थीं। ध्रुवपतिकी सेनाके पश्चिम भागमें अभ्यागतोंके रहनेका स्थान था। वितरण करनेके समय वा उसके पूर्व दुष्ट लोग उन बहुमूल्य वस्तुओंको न चुरा लें इसीसे चारों ओर पहरेका प्रबन्ध रहता था। यह स्थान गंगा यमुनाके संगम-स्थलसे

पश्चिमकी ओर था। ध्रुवपतिकी सेना संतोषक्षेत्रके पश्चिम-से अभ्यागतमण्डलीके बीचतक फैली हुई थी। भास्कर वर्म्माने अपने सैनिकोंको यमुनाके पच्छिम तटपर रक्खा था।

असीम आडम्बरके साथ उत्सव प्रारम्भ किया जाता था। महाराज शिलादित्य यद्यपि बौद्धधर्मावलम्बी थे तथापि वे हिन्दू धर्मका अपमान नहीं करते थे। वे ब्राह्मण तथा बौद्ध भिक्षुक दोनोंका आदर-सत्कार करते थे। बुद्धकी मूर्त्ति एवं हिन्दू देव-मूर्त्तियोंका एक सा सम्मान करते थे। पहले दिन वे पवित्र मन्दिरमें बुद्धकी मूर्त्ति स्थापित करते थे। उसी दिन सर्वापेक्षा बहुमूल्य वस्तुएं वितरण की जाती थीं एवं सर्वापेक्षा सुस्वादु खाद्य पदार्थ अतिथियों तथा अभ्यागतोंको खिलाये जाते थे। द्वितीय दिन विष्णु एवं तृतीय दिन शिवकी मूर्त्ति स्थापित की जाती थी। चौथे दिनसे दान-कार्य प्रारम्भ होता था। बीस दिनों तक ब्राह्मण एवं बौद्ध भिक्षुकोंको, दस दिनोंतक हिन्दू पुजे-रियोंको एवं दस दिनोंतक संन्यासियोंको दान दिया जाता था। तत्पश्चात् एक मासतक दरिद्र, निराश्रय, पितृहीन, मातृ-हीन एवं बन्धु-शून्य व्यक्तियोंको धन दिया जाता था। इसी तरह पचहत्तर दिनोंतक उत्सवका कार्य्य चलता था। अन्तमें महाराज शिलादित्य अपने बहुमूल्य कपड़े, मणिमुक्ता जटित आभरण, अत्युज्ज्वल मुक्ताहार एवं बहुमूल्य अलंकारोंको परित्यागकर बौद्ध भिक्षुकका भेष धारण करते थे। ये बहु-मूल्य आभरण भी दरिद्रोंको दे दिये जाते थे। भिक्षुककी तरह

कपड़े पहनकर एवं हाथ जोड़कर महाराज शिलादित्य कहते थे–"आज सम्पत्ति-रक्षा सम्बन्धी मेरी समस्त चिन्ताएं दूर हो गयीं। इस संतोषक्षेत्रमें आज मैं सब कुछ दान करके संन्तुष्ट हुआ। फिर भविष्यमें मैं इसी तरह दान करनेके लिये सम्पत्ति एकत्रित करूंगा।" इसी तरह पुण्यभूमि प्रयागमें संतोषक्षेत्र-का उत्सव समाप्त होता था। महाराज राज्य-रक्षाके निमित्त हाथी, घोड़ा इत्यादि आवश्यक पदार्थोंको रखकर सब कुछ दान कर देते थे।

चीनका यात्री ह्यु एनसंग पुण्यतीर्थ प्रयागका यह उत्सव देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। इस तरहके उत्सवसे भारतके प्राचीन राजाओंको बड़ा संतोष होता था। वे इस कार्यसे अनन्त पुण्यके भागी बनते थे। इस तरह धर्मकार्यमें रत प्राचीन आर्य्य-गण राजनैतिक विषयकी भी पूर्ण अभिज्ञता रखते थे। वे सदा धर्म एवं राजनीतिके अनुसार काम करते थे। जिसमें ब्राह्मण एवं बौद्ध भिक्षुक असंतुष्ट न हों इस बातकी चिन्ता राजाको सदा बनी रहती थी। इस उत्सवमें ब्राह्मण तथा बौद्ध भिक्षुकों-को आदरके साथ दान दिया जाता था। राजाके आदरसे संतुष्ट ब्राह्मण एवं बौद्ध सदा राज्यकी कुशलकी कामना करते थे।

राजाके इस असाधारण कार्यसे सर्वसाधारण उन्हें देवतुल्य समझते थे। इस तरह सर्वसाधारणके हृदयपर राजाका आधिपत्य था। उनके राज्यके रहनेवाले चोर भी राजाका यह धार्मिक कार्य देखकर लज्जित होते और दुष्कर्म छोड़ देते थे।

संतोषक्षेत्रके उत्सवका राजनैतिक फल चाहे कुछ भी हो पर इसका धार्मिक प्रभाव बहुत ही अच्छा पड़ता था। यदि भारत दूसरोंके अधिकारमें न जाता, वैदेशिक सभ्यता एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें न फैलती, तो निश्चय है कि इसका जातीय भाव लुप्त न होता और वही अपूर्व दानशीलता चारों ओर देखनेमें आती। भारतके दुर्भाग्यसे यह दृश्य बहुत दिन पहले लुप्त हो गया।

सीताराम राय

जिस समय सम्राट् फर्रुखशेर दिल्लीके सिंहासनपर अधिष्ठित थे, महामति नानकके धर्म-सम्प्रदायके अनुयायी गुरुगोविन्द सिंहकी दीक्षासे दीक्षित सिक्ख-समाज धीरे धीरे सजीविताका परिचय दे रहा था, उसी समय महाबली शिवाजीकी शिक्षासे महाराष्ट्रीय वीर असीम साहस एवं असाधारण तेजस्विताके साथ अपनी प्रधानता स्थापित करनेकी चेष्टा कर रहे थे, उसी समय बंगालके यशोहर ज़िलामें सुरम्य जलाशयके तटपर स्थित एक दुर्गकी अट्टालिकापर स्थित एक वीरने अपनी तेजस्विताका परिचय दिया। इसी जिलामें मधुमति नदीके पश्चिम तटपर महमूदपुरमें एक दुर्ग था। दुर्गके चारों ओर ऊंची चहारदिवारी थी। चहारदिवारीके चारों पार्श्वमें खाइयां थीं। इस दुर्गके भीतर एक विशाल प्रासादमें एक समय रात्रिमें एक सुगठित शरीरवाला पूर्णवयस्क युवक शतरंज खेल रहा था। युवककी गम्भीर मूर्त्तिसे वीरता टपक रही थी। चिन्ताशील युवक बड़ी चतुरतासे गोटिओंको चला रहा था। उसी समय समाचार मिला कि बादशाहकी सेना दुर्गकी ओर बढ़ी आ रही है और वह शीघ्र ही दुर्गको घेर लेगी। यह समाचार सुनकर युवकका चित्त कुछ उधरकी ओर आकर्षित हुआ, उसके भ्रू युगल सिकुड़ गये, ललाटकी रेखाएं तन गयीं। उसे कुछ चिन्ता तो अवश्य हुई
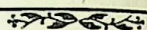
पर वह खेलता ही रह गया। प्रतिद्वन्दीको पराजित करनेके लिये वह और भी शीघ्रताके साथ गोटिओंको चलाने लगा। परन्तु प्रतिद्वन्दी पराजित नहीं हुआ। युवक वह बाजी हार गया। उस समय वह विरक्त होकर बोला—"आज जो कष्ट मुझे हुआ है, यवनका सिर काटनेपर भी वह कष्ट दूर नहीं होगा।"

वहींपर एक विशालकाय भीमपराक्रमी मनुष्य खड़ा था। युवककी यह बात सुनकर वह चुपचाप वहांसे चला गया।

रात बीती, प्रभात हुआ। बाल रविकी ज्योतिसे दुर्ग चमकृत होने लगा। जो युवक कल रात्रिमें शतरंज खेल रहा था आज सवेरे वही युवक मुख धो रहा है। इसी समय वही विशालकाय वीर पुरुष वहां आया और उसने अपना सिर नीचा करके युवकको प्रणाम किया। यह देखकर युवक विस्मित हुआ असमयमें उसे सिर नवाकर प्रणाम करते देख युवकने गम्भीर स्वरसे कहा—"मेनाहाती! यह क्या?" मेनाहातीने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक कहा-"महाराज विपक्षी सेना हारकर भाग गयी। यही उसके सेनापतिका मस्तक है।"

युवकका नेत्र ज्योतिर्मय हो गया, उसके प्रशान्त मुखमंडलसे गम्भीरताके चिह्न दीखने लगे। युवकने प्रसन्नताके साथ मेनाहातीकी प्रशंसा की और उसके पराक्रम एवं साहसके लिये यथोचित पुरस्कार देकर कहा,—"नवाबके साथ शीघ्रही घोर युद्ध करना पड़ेगा, भयकी कोई बात नहीं है, तुम सैन्य संख्या बढ़ानेकी चेष्टा करो।" पूर्ण यौवन प्राप्त इस तेजस्वी पुरुषका

नाम सीताराम राय एवं इस भीम पराक्रमी वीरका नाम मेना-हाती है। मेनाहाती सीताराम रायका सेनापति है। सीताराम राय उत्तरराढ़ी कायस्थ हैं और उनके कुलकी उपाधि विश्वास है। मधुमति नदीके पश्चिमी किनारे हरिहर नगर नामकी एक छोटी बस्ती है, सत्रहवीं शताब्दीके अन्तमें सीताराम रायका जन्म उसी ग्राममें हुआ था। सीताराम रायके पिताको एक छोटी जमीन्दारी थी। उस समयके प्रथानुसार सीताराम राय शिक्षा प्राप्त करनेके लिये पाठशाला भेजे गये। पाठ-शालासे वह प्रायः अनुपस्थित रहा करते थे। पण्डित होनेकी अपेक्षा साहसी, तेजस्वी तथा वीर बनकर प्रसिद्धि प्राप्त करनेकी उन्हें अधिक इच्छा थी। महाराष्ट्रके उद्धारकर्त्ता शिवाजीने बालकपनहीमें अपनी तेजस्विताका परिचय देकर हिन्दू मुसलमान दोनोंको विस्मित कर दिया, पंजाबकेसरी रणजीतसिंहने तरुणावस्थामें ही अलौकिक शूरता दिखलाकर पंजाबको गौरवान्वित किया था। अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भ-में सीताराम रायने अपने साहस एवं वीरताके प्रभावसे बंगा-लियोंका मुखोज्ज्वल किया। सीताराम रायने अल्प वयसमें ही तीर चलानेकी सुदक्षता, लाठी चलानेके कौशल एवं अश्वा-रोहणकी अपूर्ण शक्तिसे दर्शकोंको चकित कर दिया।

बन्दूक चलानेकी उनमें विशेष योग्यता थी और तलवार चलानेमें तो वे बंगालमें अद्वितीय समझे जाते थे। वे एक पल-में शत्रुके लाखों वीरोंको मार गिराते, बड़ी तेजीसे घोड़ेको कुश-

लताके साथ चलाते, दृढ़ताके साथ तलवार एवं लाठी चलानेका असाधारण कौशल दिखलाते। उनकी उपर्युक्त प्रशंसाकी बातें सुनकर बंगालका नवाब और दिल्लीका सम्राट् उनसे भय खाता था। इस समय लोग बंगालियोंको भीरु कहकर धिक्कारते थे। विदेशियोंने इतिहासमें अकर्मण्य कहकर उनकी निन्दा की है। बंगाल किसी समय उन्नतिपर था परन्तु अनेक अवगुणोंके कारण उसका अधःपतन हुआ। उस समय बंगालियोंने मनस्वितासे च्युत होकर जैसी अकर्मण्यता दिखलायी वैसी अकर्मण्यता पहले नहीं देखी गयी थी। जिस समय दिल्लीका सिंहासन मुसलमानोंके हस्तगत हुआ, एक एक करके सभी देशपर वे लोग अधिकार प्राप्त करने लगे, उस समय भी बंगालियोंने कई स्थानोंपर अपनी स्वाधीनताकी रक्षा की थी। बंगालके विजयसिंहने दुस्तर सागर पार करके देशान्तर जाकर वहां अपना अधिकार जमाया था। बंगालके गंगावंशीय वीरोंने उड़ीसापर अधिकार प्राप्त करके इतिहासमें प्रसिद्धि पायी।

बंगालके पाल एवं सेन वंशीय राजाओंने दूसरे देशोंमें विजयपताका उड़ायी थी। बंगालके बारह मंडलेश्वरोंने अपने वीरत्वसे दिल्ली सम्राट्को चकित कर दिया था। बंगालके सीताराम रायकी क्षमता एवं तेजस्विता वीरेन्द्र समाजमें प्रसिद्ध है। जबतक इतिहासकी मर्य्यादा बनी रहेगी, देशहितैषिता सम्मानित की जायगी एवं पूर्वपुरुषोंकी स्मृति बनी रहेगी तबतक सभी कहेंगे कि बंगालने पहले कभी भी आत्म-गौरवको जलांजलि नहीं दी थी।

धीरे धीरे सीताराम रायकी सेनामें अनेक वीर पुरुष हो गये। साथ ही साथ उन्हें बहुत सी भूसम्पत्ति हाथ लग गयी। अनेक स्थानोंपर अधिकार प्राप्त करके वे स्वयं स्वाधीन राजा बन गये। महमूदपुर उनकी राजधानी हुई। "वीरभोग्या वसुन्धरा" इस कहावतको सीताराम रायने पूर्ण रूपसे चरितार्थ किया। वह दूसरेके कष्टसे दुखी होकर उसके निवारणकी चेष्टा करते थे। निर्धनोंके दुःख दूर करनेके लिये वे सदा प्रस्तुत रहते थे। इस समय यशोहर जिलामें बारह चकले थे। चकलेके अधिपति दिल्ली सम्राट्को कर नहीं देते थे। सम्राट् फर्रुखशेरने सीताराम रायकी प्रशंसा सुनी थी अतः उसने उन चकलोंके स्वामियोंको दण्ड देनेके लिये इनसे अनुरोध किया। बादशाहका अनुरोधपत्र पाते ही सीताराम रायने उन चकलोंको अपने अधिकारमें कर लिया। सम्राट् इनसे बहुत सन्तुष्ट हुआ। एक सामान्य व्यक्तिने अपने बाहुबलसे राजा बनकर अपनी तेजस्विताका परिचय दिया। उनका घर सम्पत्तिसे भर गया। उन्होंने परोपकार व्रतको नहीं छोड़ा। पहलेकी भांति दुखियोंके दुःख छुड़ाने, असहायोंकी सहायता करने तथा बिना पूंजीवालोंके लिये पूंजीकी व्यवस्था करनेमें वे लगे रहे। बंगालके नवाब मुर्शिदकुली खांने सीताराम रायसे कर लेनेकी इच्छा प्रकट की। सीताराम रायने नवाबकी आज्ञा न मानी बल्कि उसके सामने उन्होंने अपना सिर नीचा करना भी उचित न समझा। नवाबके पास उन्होंने लिख भेजा-"मैं नवाबकी प्रजा नहीं हूं अतः

मुझसे कर मांगना उनकी धृष्टता है। मैं तो यशोहरका स्वाधीन राजा हूं।" नवाब बहुत क्रुद्ध हुआ। सीताराम रायको दण्ड देनेके लिये उसने एक भारी सेना भेजी। मुसलमान सेनापति एवं सीताराम रायमें घोर युद्ध हुआ। सीताराम रायके वीरत्व तथा साहस और मेनाहातीके युद्ध-कौशलसे मुसलमान सेना पराजित होकर भाग गयी। बंगालके एक वीर पुरुषने आज स्वाधीनता एवं गौरवकी रक्षा करके सच्ची वीरता दिखलायी और नवाबको स्तम्भित कर दिया।

इसी समय दिल्लीके बादशाहने आवुतोराय नामक एक वीर पुरुषको सेनापति बनाकर सीताराम रायको दण्ड देनेके लिये भेजा। यह सेनापति रात्रिके समय महमूदपुर पहुंचा। इसी समय सीताराम राय शतरंज खेल रहे थे। शतरंजमें हारकर सीताराम रायने जो बात कही उसीको सार्थक करनेके लिये उसके सेना-पतिने उसी रात्रिको शत्रुपर चढ़ाई करके सेनापतिका मस्तक दूसरे दिन सवेरे ही स्वामीके निकट ला रक्खा। इसी मस्तकको देखकर राजा सीताराम रायने कहा था कि नवाबके साथ घोर युद्ध होगा और उन्होंने सिपाहियोंकी संख्या बढ़ानेकी भी बात कही। कोई कोई कहते हैं कि सेनापति आवुतोरायको सीताराम रायने ही परास्त करके मार डाला।

आवुतोरायकी मृत्युकी बात सुनकर मुर्शिदकुली खां बहुत चिन्तित हुआ। नाटोरके राजा रघुनन्दन नवाबके दीवान थे। नवाबके अनुरोधसे रघुनन्दनके बड़े भाई रामजीवनने सीताराम

रायको दण्ड देनेकी प्रतिज्ञा की। उनके एक साहसी कर्मचारी दयाराम रायने इसका उपाय बतलाया। बङ्गाली बङ्गालीके विरुद्ध खड़ा हुआ। हिन्दू ही हिन्दूका सर्वनाश करनेपर उतारू हुआ और उसे सफलता भी हुई। इसने समरमें सम्मुख युद्ध न करके चतुरतासे सेनापति मेनाहातीको पकड़ना चाहा। चेष्टा सफल हुई। विपक्षियोंने मेनाहातीको पकड़कर सूलीपर चढ़ा दिया। स्वदेशवासियोंकी सहायतासे मेनाहाती शत्रु द्वारा पकड़ा जाकर मारा गया। प्रभु-भक्त सेनापतिकी मृत्युसे राजा सीताराम राय बड़े ही दुखी हुए। अब अधिक युद्ध न करके उन्होंने अपनेको शत्रुके हाथमें समर्पण कर दिया। कोई कोई कहते हैं कि नवाबकी सेनाने चारों ओरसे उन्हें घेर लिया। नवाबका सेनापति सीताराम रायको घेरकर दरबारमें ले जाता था, राहमें ही उन्होंने हाथके हीरेकी अंगूठीको चूसकर अपने प्राण त्याग दिये। यौवनपूर्ण पुरुषसिंह अपनी इच्छासे सदाके लिये सो गया।

राजा सीताराम रायने यशोहरमें कई जलाशय खुदवाये थे। उन्होंने अनेकों देवमन्दिर बनवाकर अपनी अचल देव-भक्तिका परिचय दिया था। महमूदपुरका दुर्ग भी उनकी कीर्त्तिका एक प्रधान चिह्न है। राजा सीताराम रायका खुदवाया हुआ कृष्णसागर नामका जलाशय आज भी यशोहर जिलामें सर्वप्रधान समझा जाता है। इस समय भी राजा सीताराम रायकी कीर्त्तिका भग्नावशेष उनकी शक्तिका परिचय देता है। धीरे धीरे

सीताराम रायका निवासस्थान महमूदपुर प्रसिद्ध होता गया। उसी जगहपर आजकलका प्रसिद्ध नगर कलकत्ता है। बङ्गालके कर्त्ता धर्त्ता अङ्गरेज लोग जो किसी समय यहांपर व्यापारीके भेषमें आए थे आज उसी जगहपर निवास करते हैं।

वीरबल
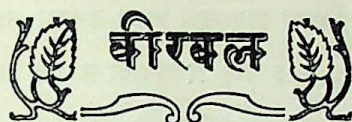
अकबर १५५६ ई० में जिस समय दिल्लीके सिंहासनपर बैठा, भारतके सभी देश जिस समय एक एक करके मुगल सम्राट्‌की अधीनता स्वीकार करने लगे, मुगलोंकी विजयिनी शक्ति जिस समय धीरे धीरे चारों ओर फैलने लगी, उस समय यमुना-तटवर्ती काली नगरका एक भाट मधुर संगीत सुनानेके लिये सम्राट्‌के निकट आया। भाटके मधुर कण्ठसे मनोहर संगीत सुनकर दिल्लीसम्राट् बड़े ही प्रसन्न हुए। धीरे धीरे दिल्लीमें इस भाटकी कवित्वशक्तिकी प्रशंसा होने लगी। सुन्दर कविता रचनेके कारण भाट दिल्लीनिवासियोंका प्रियपात्र बन गया। उसके संगीतनैपुण्य एवं उसकी मोहिनी कवित्वशक्तिसे दिल्ली-निवासी बड़े ही सन्तुष्ट हुए। सम्राट्‌ने इस प्रतिभाशाली सङ्गीत-नायकका असम्मान नहीं किया। उन्होंने आगन्तुकको 'कवि-राय' की उपाधि देकर अपनी सभामें रख लिया।

कविराय इसी प्रकार सम्राट्‌का प्रियपात्र बनकर दिल्लीमें रहने लगा। १५७३ ई० में उसके भाग्यका सितारा और भी चमक गया। इस समय सम्राट्‌ने उसे राजाकी उपाधि दी। आज-से उसका पुराना नाम बदल दिया गया और लोग उसे वीरबल वा वीरवर कहने लगे।

वीरबल ब्राह्मण जातिके थे। उनका निवासस्थान बुन्देल-

खण्डके अन्तर्गत किसी जनपदमें था। उनका पहला नाम महेश-दास था और कोई कोई उन्हें ब्राह्मणदास भी कहते थे।

उस समय कांगड़ाके अधिपति जयचन्द किसी अपराधसे दिल्लीमें कैद थे। सम्राट्ने वीरबलको उनका राज्य देनेकी इच्छा प्रकट की। जयचन्दके पुत्रने अकबरकी अधीनता स्वीकार नहीं की। वे पितृराज्यकी रक्षाके निमित्त दृढ़ रहे परन्तु उनकी चेष्टा सफल नहीं हुई। अकबरकी आज्ञासे पंजाबके शासक हसन-कुलीखांने कांगड़ापर आक्रमण करके उसपर अधिकार प्राप्त कर लिया। राजा वीरबल कांगड़ाका राज्य ग्रहण करनेपर सहमत नहीं हुए अतः उन्हें एक जागीर दे दी गयी। इसी समय राजा-ने उन्हें एक हजार सेनाका सेनापति बनाया।

भाट महेशदास इस समय राजाकी उपाधि प्राप्त करके एक सहस्र सेनाका नायक बन गया। एक समय जिसकी गणना चारणदलमें की जाती थी, सङ्गीत ही जिसकी जीविका थी आज वही सहस्र सैनिकोंका स्वामी बनकर राजकीय कार्य्यमें अपनी क्षमताका परिचय दे रहा है। राजा वीरबल प्रायः सम्राट्-के ही साथ रहते थे। जिस समय सम्राट्ने गुजरातपर धावा किया उस समय राजा वीरबल उनके साथ थे और सम्राट्को वहीं इनके समरनैपुण्यका परिचय मिला। जब कभी कोई कठिन समस्या उपस्थित होती तो राजा वीरबल ही उसे हल करते थे। वीरवल बड़े ही कर्त्तव्यपरायण थे। साहस, क्षमता एवं तेजस्विता-के कारण सब जगह उन्हें सफलता प्राप्त होती थी। उनकी

ही सङ्गतिसे अकबरका धार्मिक विचार बहुत कुछ पलट गया। हिन्दूधर्मकी कितनी ही बातोंमें अकबरकी विशेष श्रद्धा थी।

१५८६ ई० में अफगानोंने सम्राट्के विरुद्ध युद्ध करनेकी घोषणा की। इस कार्य्यके लिये काबुलके सेनापति जैनखांने सम्राट्से सहायता मांगी। राजा वीरबल सहायक सेनाके सेनापति बनाकर काबुल भेजे गये। युद्धमें अकबरके सैनिक परास्त हुए। अफगानोंने पार्वत्य प्रदेशके चारों ओरसे सम्राट्के सैनिकोंपर आक्रमण किया था। इससे सम्राट्के सैनिक तितर बितर हो गये। वीरबल और जैनखां बड़े कष्टसे पीछे हटे और वहीं उन लोगोंने शिविर स्थापित किया। अफगानोंने रात्रिमें इस शिविरपर आक्रमण किया। सम्राट्के अधिकांश सैनिक मारे गये और कुछ लोग पर्वतमें छिप गये। राजा वीरबल भी इसी समय मारे गये थे। वीरबलकी मृत्युकी बात सुनकर सम्राट् अकबर शोकातुर हो उठे। वीरबलका मृत शरीर नहीं मिला इससे उनका कष्ट और भी दूना हो गया। किंवदन्ती है कि अकबरकी सोचनीय अवस्था देखकर लोगोंने कह दिया कि वीरबल जीवित हैं और संन्यासी भेष में घूम रहे हैं। अकबरने इस बातपर विश्वास करके वीरबलके अनुसन्धानकी आज्ञा दी। अन्तमें यह बात झूठी ठहरी। एक बार फिर भी यह किंवदन्ती उठी कि वीरबल कलिञ्जर में रहते हैं। इस किंवदन्तीसे अकबरको विश्वास हो गया कि वीरबल जीवित हैं। अकबरने कालिञ्जरमें बड़ी सावधानीसे वीरबलका अनुसन्धान कराया। उपर्युक्त

बातोंसे पाठकोंको भलीभांति मालूम हो जायगा कि वीरबल सम्राट्के कैसे प्रेमपात्र थे।

वीरबलको एक पुत्र था जिसका नाम था लाल। पुत्रमें पिताके गुणोंका पूर्ण अभाव था। लालने सभी पैत्रिक सम्पत्ति नष्ट कर दी। अन्तमें उसने संन्यासी होकर सांसारिक सुखोंको त्याग दिया। राजा वीरबल फतेहपुर सिकरीमें रहते थे। आज भी उनका महल वहां वर्त्तमान है।

सोमनाथ

भारतवर्षके इतिहासमें सोमनाथका मन्दिर चिरप्रसिद्ध है। धर्मनिष्ठ हिन्दुओंके सामने यह मन्दिर सदासे पवित्र समझा जाता है। सोमनाथका मन्दिर प्रकृतिके अत्यन्त रमणीक स्थानमें स्थित है। सामने विशाल समुद्र भैरव रवके साथ किनारेकी भूमिको धोता है। जितनी दूरतक दृष्टि जायगी केवल नील वारिराशि नजर आयगी। मालूम होता है कि नील वारिराशिके नीले फेन आकाशको छू रहे हैं। ऊपर अनन्त नीलाकाश, नीचे विस्तीर्ण नील समुद्र और बीचमें पवित्र मन्दिर शोभायमान है। हिन्दुओंके आराध्य देवता इसी प्रकारके पवित्र रमणीक स्थानमें प्रतिष्ठित किये जाते थे। प्रकृतिकी गम्भीरताके बीच स्थित शान्तिमय मन्दिरकी सुन्दरतासे उपासकोंके हृदय शान्ति-रससे परिपूर्ण हो जाते थे।

प्राचीन कालमें जिस उद्देश्यको लेकर शिवमन्दिर निर्मित किये जाते थे उसी उद्देश्यसे यह मन्दिर भी निर्मित किया गया था। मन्दिरकी परिधि ३३६ फीट, लम्बाई ११७ फीट एवं चौड़ाई ७४ फीट है। युरोपके मन्दिरोंसे यदि इस मन्दिरकी तुलना की जाय तो निस्सन्देह यह छोटा है। हिन्दू-उपासक जनताप्रिय नहीं थे। जन कोलाहलके बीच उपासना करनेकी अपेक्षा शांत स्थानमें उपासना करना उन्हें अच्छा लगता था।

इसीसे वे निर्जन स्थानमें देवमन्दिरोंको बनवाते थे। जो लोग युरोपके उपासनागृह देख चुके हैं वे सोमनाथका मन्दिर देखकर हिन्दुओंके इस भावको स्वयं समझ जायंगे। मन्दिर पत्थरका बना हुआ है और यह चार भागोंमें विभक्त है। प्रत्येक खण्डमें सुन्दर कारीगरी किया हुआ एक मण्डप है। मण्डपका भग्नावशेष अब भी आक्रमणकारियोंकी कठोरताका परिचय दे रहा है। मन्दिरके भिन्न भिन्न अंशमें भिन्न भिन्न प्रकारकी मूर्त्तियां खुदी हुई हैं और उनके भिन्न भिन्न नाम भी हैं। एक घरमें श्रेणीबद्ध हस्तिओंके मस्तक खुदे हुए हैं। इस घरका नाम है गजगृह। एक घरमें बहुतसे रङ्ग बिरङ्गके घोड़े कई श्रेणीमें खड़े हैं, इस घरका नाम है अश्वशाला। एक अंशमें कारीगरने बड़ी चतुरतासे मण्डलीबद्ध सुरसुन्दरियोंका नृत्याभिनय दिखलाया है, इस अंशका नाम है रासमण्डल। ये खुदी हुई मूर्त्तियां सुगठित एवं वृहदाकारकी थीं परन्तु निष्ठुर आक्रमणकारियोंने उन्हें श्रीभ्रष्ट कर दिया। सुरसुन्दरियोंके विच्छिन्न हाथ पैर एवं मस्तक इधर उधर मारे फिरते हैं, जिससे ज्ञानशून्य मुसलमानोंके भीषण भावका परिचय मिलता है।

बीचवाले मण्डपकी अवस्था अब भी उतनी बुरी नहीं है। इस मण्डपकी गुम्बज आठ खम्भोंपर स्थापित है। कुछ लोगोंका मत है कि मन्दिर नष्ट करनेके पश्चात् पुजेरियोंकी प्रार्थनासे उनकी जीविकाके लिये मुसलमानोंने यह अंश बनवा दिया।

इसीसे इस अंशमें मुसलमानकृत शिल्पकार्य्यके चिह्न पाये जाते हैं। इस अंशमें शिल्पकार्य्यका वैचित्र्य नहीं मालूम पड़ता बल्कि इसकी अपेक्षा मन्दिरका भग्नावशेष अब भी शिल्पकारकी शक्तिका परिचय देता है। मन्दिरके एक अंशमें एक छोटा अन्धकारमय घर है। यह घर २३ फीट लम्बा और २० फीट चौड़ा है। पुरोहितके ध्यान-धारणके लिये यह निर्जन स्थान बनाया गया था। एक चतुष्कोण ऊंचे चबूतरेपर सोमनाथका मन्दिर प्रतिष्ठित है। यह चारों ओर ऊंची चहारदिवारियोंसे घिरा हुआ है। पवित्र मन्दिरमें बहुत सी पत्थरकी मूर्त्तियां स्थापित थीं। आक्रमणकारीका अत्याचार न सहन कर सकनेके कारण वे मूर्त्तियां आज धूलमें मिल गयीं। कितने लोग अपने मन्दिरकी शोभा बढ़ानेके लिये इन मूर्त्तियोंको भिन्न भिन्न स्थानमें ले गये।

इस समय सोमनाथके मन्दिरका भग्नावशेष देखकर दर्शकोंके हृदयमें अनेक प्रकारके विचार-स्रोत प्रवाहित होते हैं। आर्य्यभूमिके सौभाग्यके समय जैसा इसका गौरव था, जैसी इसकी शोभा थी इस समय वे बातें नहीं है। पुण्यशीला अहिल्याबाईके प्रयत्नसे एक देवमन्दिर इस स्थानपर स्थापित किया गया है।

सोमनाथके पुजेरियोंकी सन्तानगण इसीके आश्रयमें रहती हैं। परन्तु वह पूर्व गौरव जो लुप्त हो गया फिर नहीं लौटा। हिन्दुओंने अपने देवताओंके गौरवकी रक्षाके निमित्त पांच
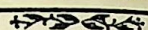
महीने तक लड़ाई की थी। अन्तमें जब सुलतान महमूद इन लोगोंको परास्त न कर सका तो अपने सैनिकोंको लौटा ले गया और पांच कोसपर शिविर स्थापित करके वहीं ठहर गया। हिन्दुओंने देखा कि मुसलमान लोग लौट गये, हमारे मन्दिरकी रक्षा हुई, अतः वे लोग प्रसन्नचित्त हो आनन्द मनाने लगे। यह सुयोग देखकर सुलतानने एक रात्रिको जाफर एवं मुजफ्फर दो सैनिकोंके अधीन दो सेनाएं मन्दिरपर आक्रमण करनेके लिये भेजीं।

अकस्मात् रात्रिके समय ये दोनों वीर मन्दिरके द्वारपर पहुंचे। शीघ्र ही राजपूत वीर भी शस्त्र लेकर लड़नेके लिये तैयार हो गये। रक्तकी धाराएं बह चलीं। क्षत्रिय वीर आराध्य देवकी रक्षाके निमित्त प्राण त्यागने लगे। अन्तमें सात सौ राजपूत वीर तलवार लेकर मन्दिरके द्वारपर खड़े हो गये परंतु उनकी चेष्टा फलवती नहीं हुई। भयानक रक्त-प्रवाहमें राजपूतोंके शरीरके साथ साथ उनका गौरवस्वरूप वह उपासनागृह भी नष्ट हो गया।

———

छत्रपति शिवाजी

BANIK PRESS, CALCUTTA
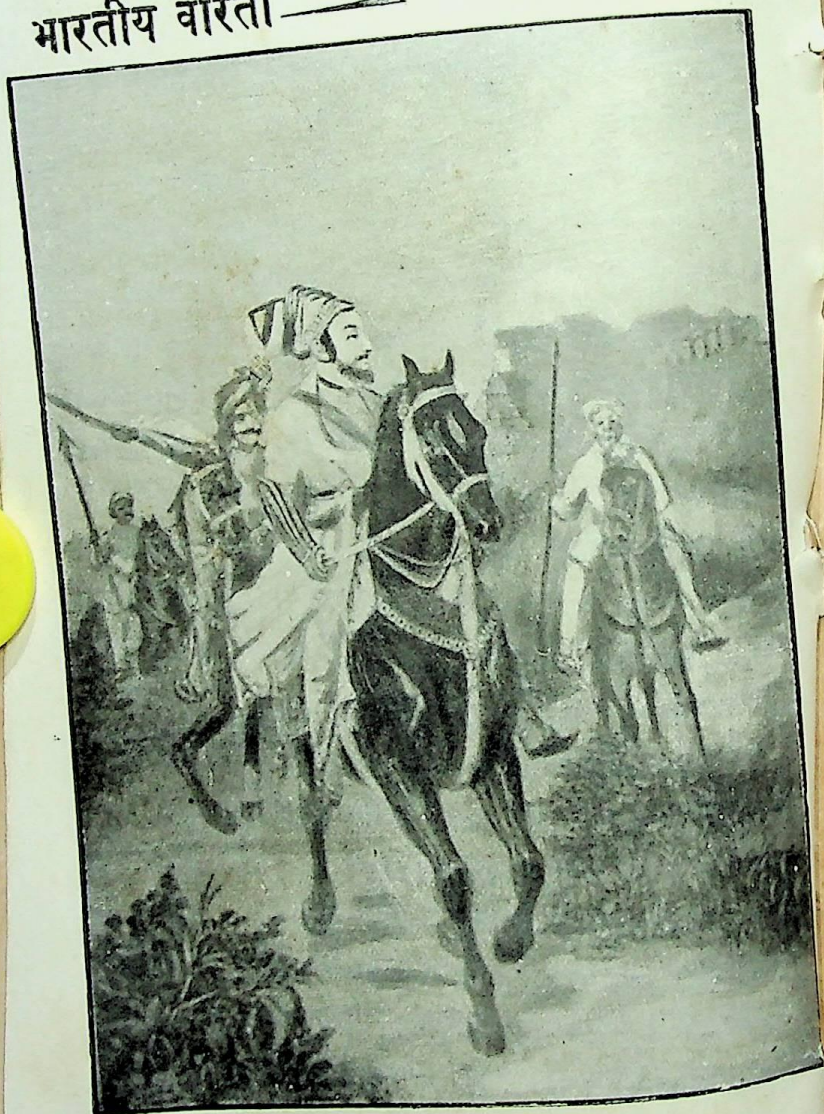
शिवाजीकी महानुभावता

वीर श्रेष्ठ शिवाजी राजगद्दीपर बैठे। उनके नामसे एक सम्बत् भी चलाया गया। उनके नामसे सिक्के भी चलने लगे। शैलमालाओंसे सुशोभित दक्षिणके देशपर आप शासन करते थे। जिस समय मुगलोंकी शक्ति उन्नतिकी चरम सीमातक पहुंच गयी थी उस समय इस वीरने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। मुगलोंकी पताकाके साथ २ शिवाजीकी पताका भी उड़ उड़कर उनके गौरवका परिचय दे रही थी। शिवाजीने दूसरी जगह एक दुर्ग बनाकर अपने अधिकारकी रक्षा की। युद्ध-कुशल हम्बीर राव आपके सेनापति थे। प्रसिद्ध मवाली सेना दूने उत्साहके साथ शिवाजीके अधिकार बढ़ानेकी चेष्टा कर रही थी।

राजपद पानेपर भी शिवाजी संतानकी भांति अपनी प्रजाका पालन करते रहे। अपनी माता जीजाबाईको आप प्रत्यक्ष देवी समझते थे। आप अपनी प्रियतमा स्त्रीसे बहुत प्रेम रखते थे। राजपद प्राप्त करनेके पश्चात् उनकी माता और स्त्री दोनोंका ही स्वर्गवास हो गया। महाराज शिवाजी उनके वियोगसे दुखी हुए पर आपने प्रजापालनसे मुंह नहीं मोड़ा। उनके सुनियम, उदार व्यवहार तथा धर्मानुरागसे प्रजा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती थी। आपने भिन्न भिन्न देशोंपर अधिकार प्राप्त किया पर अपने शरणागत शत्रुओंके साथ दुर्व्यवहार नहीं किया। उनकी

सेना बड़े पराक्रमके साथ युद्ध करती थी परन्तु मार्गमें गौ, किसान, नारी तथा अन्य जातिके धर्ममन्दिरोंपर आक्रमण नहीं करती थी। भिन्न भिन्न किलाओंपर इन लोगोंने अधिकार प्राप्त किया किन्तु किलाके निवासियोंको किसी प्रकार भी कष्ट नहीं दिया। वीर श्रेष्ठ शिवाजीने इसी तरह वीरधर्मकी रक्षा करके अपने उदार भावका परिचय दिया। इसी तरहके महान् कार्योंसे आप संसारमें सम्मानित हुए। उनके सौतेले भाई व्याङ्कोजीने राज्य लोभसे उनके विरुद्ध सेना इकट्ठी की थी परन्तु शिवाजीने इतनेपर भी भ्रातृ-भावका विसर्जन नहीं किया। जिस समय व्याङ्कोजी अपने मन्त्रीके साथ महाराज शिवाजीसे मिलने गये उस समय शिवाजीने अपने सदुपदेशसे उनकी दुर्भावनाओंको दूर करनेकी चेष्टा की।

राजस्थानकी भांति दक्षिणमें भी एक वीर नारीका आविर्भाव हुआ। शिवाजीके समयमें ही इसने अपनी क्षमताका परिचय दिया। वीरप्रवर शिवाजीने उसकी वीरताका अपमान नहीं किया। शिवाजी राज्यभार अपने हाथमें लेनेके पश्चात् दक्षिणके भिन्न स्थानोंपर अधिकार प्राप्त करने लगे। इस समय बल्लारी राज्यपर मलबाई देसाइन नामकी एक विधवा स्त्री राज्य करती थी। जब शिवाजी बल्लारी दुर्गपर अधिकार जमाने लगे तो उस रमणीने आत्म-रक्षाके निमित्त शस्त्र ग्रहण किया। उसने शीघ्र ही दुर्गकी रक्षाका प्रबन्ध कर लिया। महाराष्ट्रपतिके आक्रमणको रोकनेके निमित्त भिन्न भिन्न स्थानोंमें सैनिकगण खड़े हो गये। ये सेनाएं

योग्य सेनापतिओंकी अध्यक्षतामें थीं। मलबाई स्वयं बड़ी तत्परतासे उनकी देखरेख करती थी। भारतका सर्वश्रेष्ठ वीर उसके राज्यपर आक्रमण कर रहा है तथा चुनी हुई असंख्य सेनायें उसे पराधीन बनाना चाहती हैं, इससे उसका चित्त जरा भी विचलित नहीं हुआ। वह जीवनकी कुछ भी परवा न करके हाथमें तलवार लिये शत्रुओंके सामने गयी। महाराष्ट्र सेना बड़े वेगसे उसकी सेनापर टूट पड़ी। वीरांगना निर्भय होकर अपनी रक्षा करने लगी। परन्तु सुशिक्षित महाराष्ट्रवीरोंके साथ वह अधिक समयतक युद्ध नहीं कर सकी। किलेके बाहर खड़ी होकर लड़ना उसे असम्भव प्रतीत होने लगा।

शीघ्र ही उसकी आज्ञासे वीरगण दुर्गमें घुस गये। इधर शिवाजीकी सेनाने भी दुर्गपर आक्रमण किया था। वे लोग दुर्गपर गोलेकी वृष्टि करने लगे। परन्तु मलबाई इससे जरा भी नहीं डरी। वह और भी अधिक साहसके साथ दुर्गकी रक्षा करने लगी। इस तरह सत्ताईस दिन बीत गये। सत्ताईस दिनोंतक शिवाजीकी सेना दुर्गको घेरे रही। इस बीच मलबाई कभी भी घबड़ाई नहीं। उसका साहस लुप्त नहीं हुआ और उसकी तेजस्विता जरा भी नहीं घटी। आत्म-रक्षाके भाव उसके हृदयमें बने रहे। वह इस निपुणताके साथ सेनाओंको चलाती तथा इस धीरताके साथ उन्हें आदेश देती थी कि सत्ताईस दिनोंतक शिवाजोको सेना कुछ भी नहीं कर सकी। सत्ताईसवें दिन किलाका एक अंश टूट गया जिससे किलेकी रक्षाका कोई

उपाय नहीं रहा। शत्रुगण उसी टूटे हुए मार्गसे दुर्गमें घुस गये, वीरांगनाने अपनेको शिवाजीके हाथमें समर्पण किया।

शिवाजीकी आशा पूरी हुई। बल्लारी दुर्ग उनके अधिकारमें आया। विधवा नारी घोर युद्ध करनेके पश्चात् शिवाजीकी शरण में गयी। वीर पुरुषने इस वीर नारीके गौरवकी रक्षा की। आपने मलबाईका यथोचित सम्मान किया। शिवाजीने बल्लारी दुर्ग फिरसे मलबाईको समर्पण करके अपनी महानताका परिचय दिया। मलबाई पहलेकी भांति न्याय और स्वाधीनताके साथ शासन करने लगी।

महाराष्ट्रकी महाशक्ति

मुगल साम्राज्य जिस समय उन्नतिकी चरम सीमातक पहुंच गया था, औरङ्गजेबके कठोर शासनसे जिस समय भारतवर्षकी चारों दिशायें भयके मारे कांप रही थीं, स्वाधीनताके प्रधान उपासक, तेजस्विताके अद्वितीय अवलम्ब एवं साहसके एकमात्र आश्रय राजपूत वीर जिस समय मुगलोंके विरुद्ध सिर नहीं उठाते थे उस समय भारतके दक्षिण प्रान्तमें एक महाशक्ति धीरे धीरे सबको विस्मयान्वित करने लगी। धीरे धीरे भारतके सम्राट् भी इस शक्तिसे डरने लगे। इस शक्तिने तेजस्विता एवं उत्साहके सूत्रमें सारे भारतवर्षको गूंथ दिया। इस महाशक्तिके उपासक थे भवानीभक्त शिवाजी। शिवाजी वीरत्वके स्वरूप एवं स्वाधीनताके आश्रयक्षेत्र थे। जिस समय शिवाजीका आविर्भाव हुआ उस समय भारतका पूर्व गौरव समयस्रोतके साथ लुप्त हो गया था। जो लोग एक समय वीरत्व और कीर्त्तिके लिये प्रसिद्ध थे, वीरेन्द्र--समाजमें प्रसिद्ध होनेके कारण जो अनन्त कीर्त्तिके भागी थे आज उन्हींकी सन्तान स्वाधीनताको जलांजलि देकर पराधीनताकी बेड़ीमें जकड़ी हुई है। पृथ्वीराज एवं प्रतापसिंह जैसे वीरोंकी तेजस्विता अब लुप्त हो गई। अनैक्यके कारण बलवान राजपूत वीरोंने आपसमें लड़ते लड़ते अपने बलका क्षय कर दिया जिससे आज वे

मुसलमानोंके अधीन अपने अधःपतनका फल भोग रहे हैं। पराक्रमी शिवाजीने इस अनैक्यको दूर करके दक्षिणमें एक महाजातिकी प्रतिष्ठा की। इनके महामन्त्रसे मुगल साम्राज्य नष्ट हो गया और मुसलमानोंको अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

भारतवर्षके मानचित्रसे मालूम होगा कि इसके दक्षिण-पश्चिम भागमें पर्वतोंसे पूर्ण एक प्रदेश है। इस प्रदेशकी उत्तरी सीमापर सतपुरा पहाड़ उन्नत भावसे खड़ा है, पश्चिमी सीमा-पर तरङ्गलीला करता हुआ विस्तीर्ण समुद्र जड़जगतकी शक्ति-का परिचय दे रहा है, पूरबकी ओर बरदा नदी प्रवाहित हो रही है और दक्षिणकी ओर गोवा नामक नगर एवं एक विस्तीर्ण असमतल भूमि है। यह प्रदेश महाराष्ट्र नामसे परिचित है। इसका क्षेत्रफल एक लाख वर्गमील है। महाराष्ट्र प्रदेश प्रकृति-की मनोहर सुन्दरतासे विभूषित है। हरे वृक्षोंकी मनोहर पंक्ति-से इसके अधिकांश पार्वत्य भाग सुशोभित हैं। मालूम होता है कि प्रकृतिने अपनी सुन्दरताका भाण्डार यहीं सजा रक्खा है। जिन लोगोंने इस स्थानको देखा है वे ही प्रकृतिकी सुन्दरताका अनुभव कर सकते हैं। संसारके अनन्त सुन्दरतापूर्ण भूखण्डके इसी प्राकृतिक मनोहर प्रदेशमें शिवाजीका जन्म हुआ।

सम्राट् औरंगज़ेबके समयमें दक्षिणके अनेक स्थानोंपर मुसलमानोंका अधिकार था। दक्षिणके अन्यान्य मुसलमान राजाओंमें बीजापुरके मुसलमान अधिपति विशेष शक्तिशाली थे। महाराष्ट्रनिवासी एक राजपूत युवक जिनका नाम शाहजी

था बीजापुर-दरबारमें नौकरी करते थे। धीरे धीरे उनकी शक्ति बढ़ने लगी और अन्तमें उनकी गणना राज्यके प्रधान कर्मचारिओंमें होने लगी। उनके पराक्रमसे बीजापुरके राजाको अनेक स्थानोंमें विजय-लाभ हुआ। शाहजीका विवाह जीजाबाई नामक एक महाराष्ट्र रमणीसे हुआ था। जीजाबाईके गर्भसे दो लड़के हुए। पहलेका नाम शम्भूजी और दूसरेका नाम शिवाजी था।

१५२१ ई० के महीनेमें शिवाजीका जन्म शिउनारी नामक दुर्गमें हुआ था। यह दुर्ग पूनासे पचास मीलकी दूरीपर है। दुर्गकी अधिष्ठात्री देवीका नाम शिवाई है इसीसे जीजाबाईने पुत्रका नाम शिवाजी रक्खा। बालकपनमें कुछ समयतक शिवाजी अपनी माताके साथ शिउनारी दुर्गमें ही रहते थे। शिवाजीके जन्मके तीन वर्ष पश्चात् शाहजीने तुकाबाई नामक एक महाराष्ट्र रमणीसे विवाह किया। दूसरा विवाह करनेके कारण शाहजी एवं जीजाबाईमें विरोध हो गया। शाहजीने दादोजी कोड़देव नामक एक वृद्ध ब्राह्मणको अपना कारबार देखने तथा शिवाजी और उसकी माताकी देखभाल करनेके लिये नियुक्त किया था। दादोजो बड़े ही चतुर और कार्यदक्ष मनुष्य थे। उन्होंने जीजाबाईके रहने योग्य पूनामें एक मकान बनवाया। शिवाजी इसी मकानमें रहने लगे। दादोजी ही इस बालकके एकमात्र संरक्षक थे।

इस समय महाराष्ट्रनिवासी सरस्वतीदेवीके उपासक नहीं थे, पढ़नेकी अपेक्षा वीरोचित गुणोंको वे अधिक गौरवकी

दृष्टिसे देखते थे। शिवाजी स्वयम् अपना नाम भी नहीं लिख सकते थे। परन्तु शस्त्र चलानेमें वे विशेष दक्ष थे। स्वदेशवासी उन्हें सुनिपुण अश्वारोही कहते थे। उनका अश्वचालन कौशल देखकर दर्शकगण उनका गुणगान किये बिना नहीं रह सकते थे। दादोजीने शिवाजीको हिन्दूधर्म-सम्बन्धी तत्त्वोंको बतलाया था जिसका परिणाम यह हुआ कि शिवाजी एक निष्ठावान हिन्दू हो गये। वे बड़े प्रेमके साथ हिन्दूधर्मकी कथाओंको सुनते थे। रामायण, महाभारत एवं भागवतकी कथाओंसे उन्हें बड़ा आनन्द प्राप्त होता था। बालकपनसे ही कथा कहनेवालोंके प्रति उनकी विशेष श्रद्धा थी। हिन्दूधर्ममें इतनी भक्ति होनेके ही कारण उन्होंने हिन्दुओंके गौरवकी रक्षा करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। वे अपनी इस प्रतिज्ञासे कभी भी विचलित नहीं हुए। शत्रुओं द्वारा घोर विपत्तिमें डाले जानेपर भी वे इस प्रतिज्ञासे च्युत नहीं हुए। शिवाजी अन्तिम समयतक निर्भीकताके साथ इस प्रतिज्ञाका पालन करते रहे। रामायण और महाभारतकी वीरत्वपूर्ण कथाओंको सुनकर शिवाजीका हृदय स्वजातिप्रियता तथा स्वदेशहितैषितासे भर जाता था जिससे उनके हृदयमें तेजस्विताका सञ्चार होता एवं साहसकी वृद्धि होती थी। कठोर मुसलमान शासकोंके अत्याचारसे हिन्दूधर्म लुप्त हो गया था। शिवाजीने उसकी महती शक्तिका विकास करने तथा हिन्दू-राज्य स्थापित करनेकी प्रतिज्ञा की। उनकी प्रतिज्ञा निष्फल नहीं हुई। जिस समय सम्राट् औरंगज़ेबके प्रतापसे सारा भारतवर्ष

काँप रहा था उस समय दक्षिणमें शिवाजीने एक हिन्दूराज स्थापित किया। इस स्वाधीन राज्यके स्वाधीनता-भक्त वीरोंके प्रबल पराक्रमसे चिरविजयी मुगलोंकी शक्तिका ध्वंस हुआ। बहुत दिनोंके पश्चात् एक बार फिर भी हिन्दुओंके गौरवका सूर्य्य उदय हुआ।

मवाल नामक पार्वत्य प्रदेशके निवासी मवालियोंपर शिवाजीका पूर्ण अधिकार था। ये लोग बड़े ही कार्य्यपटु, साहसी एवं अध्यवसायी थे। इन्हींपर निर्भर करके शिवाजीने कई स्थानोंपर विजयपताका उड़ायी। वे प्रायः कहा करते थे, "मैं मुसलमानोंको पराजित करके स्वाधीन राज्य स्थापित करूंगा।" वीर पुरुषके ये वाक्य निष्फल नहीं हुए। शिवाजी मुसलमानोंको परास्त करके स्वाधीन राजा कहलाये।

सोलह वर्षकी ही अवस्थामें शिवाजी ऐसे साहसी एवं तेजस्वी हुए कि अश्वारोही सैनिकोंके साथ सदा एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर घूमा करते थे। इसीसे वे अपने देशके सभी दुर्गम मार्गोंसे अभिज्ञ हो गए थे। शिवाजीने अपने कौशलसे कई दुर्गोंपर अधिकार कर लिया। इन दुर्गोंपर अधिकार प्राप्त करनेके कारण बीजापुरके राजासे उनका विरोध हो गया। अफजलखां बीजापुरके अधिपतिकी सेनाका नायक बनकर शिवाजीके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। राहमें उसने हिन्दू तीर्थों तथा देवालयोंके तोड़नेमें संकोच नहीं किया। इस समय शिवाजी रायगढ़में ठहरे थे। अपने पवित्र तीर्थोंके अपमानकी बात सुन-

कर वे बड़े ही दुखी हुए और अफजलखांको दण्ड देनेके निमित्त सैन्य संग्रह करनेके लिये प्रतापगढ़की ओर चले। उनके संकल्पकी सिद्धिमें कोई कठिनाई नहीं हुई। ईश्वरकी कृपासे शिवाजी मुसलमानोंके सामने अपनी प्रधानता स्थापित कर सके।

जङ्गलके दुर्गम गिरिप्रदेशमें सेना ले जाना कठिन समझकर अफजलखांने गोपीनाथपन्त नामक एक ब्राह्मणको प्रतापगढ़ भेजा। दूत दुर्गके निचले भागके एक ग्राममें ठहरा और शिवाजी वहीं उससे मिलनेके लिये आये। गोपीनाथने धीरताके साथ शिवाजीसे कहा—"शाहजीको अफजलखांसे बड़ी मित्रता है। अफजलखां अपने मित्रके लड़केका अनिष्ट करना नहीं चाहता। वह आपसे शत्रुता न करके एक जागीर देनेको तैयार है।" शिवाजीने बड़ी नम्रतासे अफजलखांके भेजे हुए दूतसे कहा—"मैं बीजापुर राजाका एक सामान्य भृत्य हूं, थोड़ी सी जागीर पाकर मैं संतुष्ट हो जाऊंगा।" शिवाजीकी नम्रतासे दूत बहुत ही संतुष्ट हुआ। दूतको शिवाजीने एक उपयुक्त स्थानपर ठहराया और दूतके अन्य साथी दूसरी जगह ठहराये गये। आधीरातमें वे गोपीनाथके पास पहुंचे और अपना परिचय देकर बोले-"मैंने हिन्दुओंके सम्मानकी रक्षाके निमित्त प्रतिज्ञा की है। ब्राह्मण और गौओंकी रक्षा करना, पवित्र देवमन्दिरके अपमान करनेवालोंको ध्वंस करना एवं हिन्दूधर्मके विरोधियोंकी शक्तिका ह्रास करना मेरा प्रधान कर्तव्य है। मैंने भवानीकी आज्ञासे यह पवित्र व्रत धारण किया है। आप ब्राह्मण हैं अतः आपको

मेरी सहायता करनी चाहिये। मुझे आशा है कि अपने देशके ब्राह्मणोंकी सहयोगितासे मैं यह काम सफलतापूर्वक कर सकूंगा।" उपर्युक्त बातें कहकर शिवाजीने गोपीनाथको एक गांव प्रदान करनेका वचन दिया।

गोपीनाथ इस नवयुवक हिन्दू वीरके साहस तथा उसकी देश-भक्ति और स्वदेश-प्रियतापर मुग्ध हो गये। वे शिवाजीके विरुद्ध कुछ भी नहीं कह सके। धीरताके साथ उन्होंने शिवाजीकी सहायता करनेकी प्रतिज्ञा की। गोपीनाथ शिवाजीके गुणोंपर मुग्ध होकर उन्हींके साथ रहने लगे।

तदनन्तर शिवाजीने कृष्णजी भास्कर नामक एक कर्मचारीके साथ बहुत सा द्रव्य देकर गोपीनाथको अफजलखांके पास भेजा। कृष्णजीने बीजापुरके सेनापतिके पास जाकर कहा कि "शिवाजी आपसे मित्रता करनेको तैयार हैं। बीजापुरके शासकके विरुद्ध कोई भी कार्य्य करनेकी उनकी इच्छा नहीं है।"

ये बातें सुनकर अफजलखां बहुत ही संतुष्ट हुआ। गोपीनाथके परामर्शसे वह शिवाजीसे मिलनेको तैयार हुआ। शिवाजीने प्रतापगढ़के नीचे एक स्थानपर उनसे मिलनेका निश्चय किया। शिवाजीने जंगलसे होकर अफजलखांके आनेके लिये वहां तक एक सुन्दर मार्ग बनवा दिया। शिवाजीने इन्हीं जंगलोंमें सड़कके इधर उधर मवाली सेनाओंको छिपाकर रख दिया था। उसका पता अफजलखांके सैनिकोंको किसी प्रकारसे चल नहीं सकता था। पन्द्रह सौ सैनिक अफजलखांके साथ
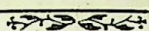
आये थे परंतु गोपीनाथके परामर्शसे वह सेना दूर ही छोड़ दी गयी ।

अफजलखां केवल अपने एक शस्त्रधारी अनुचरके साथ शिवाजीसे मिलनेके लिये निर्दिष्ट स्थानपर पहुंचे। दूसरे दिन शिवाजी उनसे मिलनेके लिये गये। अफजलखां साधारण भेषमें था और शिवाजी अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये पूर्ण रूपसे तैयार थे। इन्होंने लोहेका कवच धारण करके ऊपरसे साधारण वस्त्र पहन लिया था और हाथमें बाघनख पहनकर मुट्ठीमें उसे छिपा रक्खा था। इस प्रकार सुसज्जित होकर शिवाजी किलेसे नीचे उतरे और अफजलखांके पास जा नम्रतापूर्वक प्रणाम करके धीरे धीरे आगे बढ़े। अफजलखांकी भांति इनके साथ भी एक सशस्त्र अनुचर था। नियमानुसार शिष्टाचार समाप्त होनेपर एक दूसरेसे मिल रहे थे कि अकस्मात् अफजलखां घोरतर विश्वासघातकता कहकर चिल्ला उठा। शीघ्र ही शिवाजीने अफजलखांके पेटमें बाघनख घुसेड़ दिया। अधीर होकर अफजलखाँने शिवाजीपर तलवार चलायी परन्तु इसका कुछ भी फल नहीं हुआ। ये सब कार्य्य एक क्षणमें हुए। अफजलखां गिर पड़ा। उसका अनुचर यह देखकर स्थिर नहीं रह सका। वह बड़ी धीरताके साथ लड़ने लगा परन्तु शीघ्र ही वह भी मार डाला गया। पालकीवाले अफजलखांको पालकीमें डालकर भागने लगे परन्तु वे इस कार्य्यमें सफल नहीं हो सके। शिवाजीके कई सैनिक वहां आ गये और उन लोगोंने हठसे

अफजलखांका सिर काट लिया। इधर इशारा पाते ही मवाली सेना जंगलसे निकलकर अफजलखांके सैनिकोंपर टूट पड़ी। विपक्षी इनका सामना न कर सके और भाग निकले। शिवाजी विजयी हुए। शीघ्र ही बहुत सी सेनाएं एवं सम्पत्ति उनके अधिकारमें आ गई।

सरलहृदय मनुष्य शिवाजीको घोरतर विश्वासघातक एवं पाखण्डी कह कर धिक्कारेंगे, परन्तु जो लोग दुष्ट शत्रुको नष्ट करके स्वदेशकी स्वाधीनताकी रक्षाको अपना कर्तव्य समझते हैं वे अवश्य उनके इस कार्यकी प्रशंसा करेंगे। मुसलमानोंको धूर्त्ततासे भारतवर्षकी स्वाधीनता नष्ट हुई। जिस समय महा पराक्रमी पृथ्वीराज स्वदेशकी स्वाधीनताकी रक्षाके निमित्त बहुत सी सेना लेकर दृषद्वती नदीके तटपर पहुंचे उस समय शाहबुद्दीन गोरी उनकी असाधारण तेजस्विता एवं असंख्य सेना देखकर चकित हो गया। यदि शाहबुद्दीन गोरी धूर्त्तता करके रात्रिमें सोये हुए सैनिकोंपर आक्रमण न करता तो पृथ्वीराजका पतन न होता और भारतका सौभाग्यसूर्य्य न डूबता। इस प्रकार धूर्त्ततासे जिसने भारतवर्षपर अधिकार प्राप्त किया उसके साथ ऐसा ही व्यवहार करना ठीक भी था। शिवाजीका विश्वास था कि जबतक धूर्त्तोंके साथ धूर्त्तता न की जायगी तबतक सफलता होनी असम्भव है। शिवाजी बालकपनसे ही इस नीतिको मानते थे। शिवाजी यदि निरस्त्र होते तो अवश्य ही शत्रु उन्हें मार डालते। ऐसे स्थलपर शिवाजीने

बड़ी दक्षतासे काम किया। जो लोग स्वदेशहितैषी हैं और अत्याचारी शत्रुको ध्वंस करना जो लोग अपना कर्तव्य समझते हैं वे इस कार्य्यके लिये शिवाजीकी कदापि निन्दा न करेंगे।

बीजापुरके सैनिकोंके परास्त होनेपर कोकन नामक प्रदेशका अधिकांश शिवाजीके अधिकारमें आ गया। तदुपरान्त शिवाजी कोकन प्रदेशके पन्हाला नामक दुर्ग पर अधिकार करनेकी चेष्टामें लगे। बीजापुरमें यह दुर्ग दुर्भेद्य समझा जाता था। इस दुर्गपर अधिकार करनेमें शिवाजीने अपने अपूर्व कौशलका परिचय दिया। उन्होंने अपने प्रधान प्रधान सेनानायकोंसे परामर्श करनेके पश्चात् उनकी ही सलाहसे अधिकांश सेनानायकोंसे बनावटी विरोध कर लिया। कितने सेनानायक असंतुष्ट होकर आठ सौ सैनिकोंके साथ शिवाजीकी नौकरी छोड़ उस दुर्गके स्वामीके निकट पहुंचे। दुर्गाध्यक्षने इनकी चालाकी न समझी बल्कि प्रसन्न होकर उन्होंने इन सैनिकोंको दुर्गमें स्थान दिया। इधर शिवाजी भी अपने सैनिकोंके साथ दुर्गकी ओर चले। दुर्गकी चहारदिवारीके निकट कई बड़े बड़े वृक्ष थे। शिवाजीके पहलेके आये हुए सैनिकोंने दुर्गका द्वार खोल दिया और इसी वृक्षके सहारे अधिकांश वीर इस दुर्ग में घुस गये। इस प्रकार सहजमें ही दुर्ग अधिकृत हो गया।

इस समय शिवाजीकी ख्याति इतनी बढ़ गयी कि दूर दूरसे हिन्दू वीर आकर उनकी सेनामें भरती होने लगे। बलवृद्धिके साथ साथ और भी कितने कठिन कार्य्य उन्हें करने

पड़े। उनके अश्वारोही सैनिक मुसलमानोंके अधिकृत जनपदको लूटने लगे। इस कार्य्यमें इन लागोंका उत्साह यहांतक बढ़ा कि वे लोग बीजापुरके निकटवर्त्ती ग्रामोंको भी लूटने लगे।

बीजापुरके राजा बड़े ही क्रुद्ध हुए और उन्होंने एक दूत शिवाजीके निकट भेजा। दूत शिवाजीके निकट पहुंचा। शिवाजीने गम्भीर स्वरसे कहा—"क्या तुम्हारे राजा मुझसे अधिक जबरदस्त हैं कि मैं तुम्हारी बात मानूं? यहींसे उलटे पांव फिरो।" दूत लौट गया। शिवाजीकी बातें सुनकर वे और भी क्रुद्ध हुए। शाहजीको कैद करके बीजापुरके राजाने उनसे कहा "यदि तुम्हारा पुत्र अधीनता स्वीकार नहीं करेगा तो तुम्हें इसी जेलमें घुट घुटकर प्राण देने पड़ेंगे।" पिताकी शोचनीय दशा सुनकर शिवाजी बड़े ही दुःखी हुए परन्तु अपने कर्तव्यपथसे नहीं हटे। उन्होंने दिल्ली सम्राट् शाहजहांके पास पत्र लिखा। दिल्ली सम्राट्की आज्ञासे बीजापुरके राजाने शाहजीको छोड़ दिया। मुक्त होकर शाहजी अपने पुत्रके पास रायगढ़में गये। शिवाजीने अपने पिताका उचित सम्मान किया। वे अपने पिताको गद्दी-पर बैठाकर सामान्य भृत्यकी तरह खड़े रहे। इससे शिवाजीकी पितृभक्तिका कैसा अच्छा परिचय मिलता है।

शाहजीके मुक्त होनेपर शिवाजी और भी उत्साहके साथ आधिपत्य बढ़ानेकी चेष्टामें लगे। बीजापुरके राजाको परास्त करनेके लिये उन्होंने एक बड़ी सेना भेजी। शिवाजीकी बुद्धि-मानीसे सेनापति अफजलखां मारा जा चुका था अतः दूसरा

सेनापति उनसे लड़नेके लिये भेजा गया। बीजापुरके सैनिकोंने पन्हाला दुर्गपर शिवाजीके सैनिकोंको घेर लिया। पर इस बार भी शिवाजीकी ही जय हुई। विपक्षिओंका सेनापति अपने अनुचरोंके साथ मारा गया।

जिस समय औरङ्गजेब अपने पिताको सिंहासनच्युत करनेके लिये आगराकी ओर बढ़ा था उस समय उसने शिवाजीसे सहायता मांगी थी परन्तु इस अन्याय कार्य्यमें शिवाजीने उसकी सहायता देनी अनुचित समझी। शिवाजीने औरङ्गजेबके इस कार्य्यपर घृणा प्रकाश करते हुए दूतको लौटा दिया। औरङ्गजेबने जो पत्र भेजा था उसे अपमानित करके कुत्तेकी पूंछमें बंधवा दिया था। ये बातें सुनकर औरङ्गजेब शिवाजीपर बहुत ही क्रुद्ध हुआ। औरङ्गजेब आजीवन शिवाजीके अनिष्ट साधनमें लगा रहा और उन्हें 'पहाड़ी चूहा' कहा करता था।

औरंगजेबने अपने वृद्ध पिताको सिंहासनचयुत करके कारागारमें बन्द कर दिया और स्वयं राजा बन बैठा। इधर बीजापुरके राजाने शिवाजीसे सन्धि कर ली। इस समय समस्त कोकण प्रदेश शिवाजीके अधिकारमें था। उनकी सेनामें सात हजार अश्वारोही और पचास हजार पैदल सिपाही थे।

बीजापुरके राजासे सन्धि होनेके पश्चात् शिवाजी मुगल राज्यपर आक्रमण करनेकी तैयारी करने लगे। इस समय दक्षिणका शासनकर्त्ता था शाइस्ता खां। सम्राट् औरंगज़ेबने इसे शिवाजीको दमन करनेकी आज्ञा दी। उसके आज्ञानु-

सार एक वृहत् सेना लेकर शाइस्ता खां पूना पहुंचा। मुगल सैनिकोंके आनेकी बात सुनकर शिवाजी रायगढ़ सिंह-गढ़में रहने लगे। शाइस्ता खां शिवाजीकी बुद्धिमत्ताके विषयमें भलीभांति जानता था। उसने बड़ी सावधानीसे अपने स्थानको सुरक्षित रक्खा। उसकी आज्ञा बिना कोई भी सशस्त्र महाराष्ट्रीय वीर पूनामें प्रवेश नहीं कर सकता था। मुगल शासनकर्त्ताके इतने सावधान रहनेका भी कुछ फल नहीं हुआ। चतुर शिवाजीने अपने साहस एवं कौशलसे उसका सत्यानाश कर दिया। एक दिन आधीरातमें जिस समय समस्त पृथ्वी अन्धकारसे आच्छादित थी; पूनाका मार्ग, प्रासाद एवं समस्त स्थान अन्धकारमें निमग्न था; कहीं भी मनुष्यके आनेकी आहट नहीं मालूम पड़ती थी उसी समय एक बारात रात्रिकी निस्तब्धताको भंग करती हुई धीरे धीरे पूना की ओर आ रही थी। शिवाजी यह सुयोग देखकर पचीस अनुचरोंके साथ उस दलमें मिल गये। इसी दलके साथ शिवाजी शाइस्ता खांके निवास-गृहमें पहुंचे। शाइस्ता खाँ इस समय निद्रित था। इस आकस्मिक् आक्रमणसे भयभीत होकर स्त्रियोंने उसे जगा दिया। घबड़ाकर वह भागा परन्तु तलवारके आघातसे उसकी अंगुली कट गयी। किसी तरह भागकर उसने अपने प्राण बचाये। उसका पुत्र एवं उसके अनुचरगण मारे गये। शिवाजी विजय प्राप्तकर प्रसन्नचित्त सिंहगढ़को लौट गये।

समस्त महाराष्ट्रमें शिवाजीकी यह कीर्त्ति फैल गयी। समस्त

महाराष्ट्रनिवासी उनकी वीरतापर मुग्ध होकर उनकी प्रशंसा करने लगे। बहुत दिन बीत गये परन्तु शिवाजीकी कीर्त्तिकी कहानी लुप्त नहीं हुई। महाराष्ट्रनिवासी आज भी बड़ी प्रसन्नतासे उनके साहस और वीरत्वके गीत गाते आते हैं।

दूसरे दिन बहुतसे मुगल घुड़सवार सिंहगढ़की ओर गये। शिवाजीने उन्हें दुर्गके निकट आने दिया। वे बड़े पराक्रमके साथ तलवार निकालकर दुर्गके सामने खड़े हो गये। शिवाजीने तोप छोड़नेकी व्यवस्था की। वे तोपके सामने ठहर न सके और भयभीत होकर भाग गये। शिवाजीके एक सेनापतिने उन्हें घेर लिया। इस प्रकार शिवाजीने दक्षिणमें अपनी प्रधानता स्थापित कर ली।

तदुपरान्त शिवाजीने औरङ्गजेबके अधिकृत सूरत नगरको लूटकर बहुत सा धन संग्रह कर लिया और रायगढ़ लौट आये। सूरत नगर लूटनेपर शिवाजीने सुना कि मेरे पिताका स्वर्गवास हो गया। इससे वे सिंहगढ़ लौट आये और क्रियाकर्ममें लगे। क्रिया-कर्मकर वे साथ रायगढ़ गये और अमात्यगणोंके अधिकृत जनपदके शासनका बन्दोबस्त करने लगे। इस काममें कई महीने लगे। इसी समय शिवाजीने राजाकी उपाधि धारण करके अपने नामका सिक्का चलाया। वीर पुरुषकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। प्रतापी मुगलोंके रहते शिवाजीने एक स्वाधीन राज्य स्थापित कर दिया।

मक्का जानेवाले यात्री सूरतमें ही जहाजपर चढ़ते थे अतः सूरत मुसलमानोंका पवित्र स्थान समझा जाता था। इस नगरके लूटे जानेका संवाद एवं शिवाजीके उपाधि धारण करनेकी बात सुनकर औरंगजेब क्रोधके मारे लाल हो गया और उसने राजा जयसिंह तथा दिलेरखांको शिवाजीके विरुद्ध भेजा। शिवाजीने इन लोगोंसे युद्ध न किया बल्कि रघुनाथपन्त न्यायशास्त्रीको एकप्रस्ताव लेकर राजा जयसिंहके पास भेजा। जयसिंहसे कुछ बातचीत करके दूत शिवाजीके निकट लौट आया। शीघ्र ही शिवाजी कुछ अनुचर अपने साथ लेकर राजा जयसिंहके शिविरमें पहुंचे। जयसिंहने अपने प्रधान कर्मचारीको भेजा और कहा कि शिवाजीको दरबारमें ले आओ। जब शिवाज़ी शिविर-द्वारपर आये तब जयसिंह स्वयं वहां गये और मिलकर उन्हें लिवा लाये और उन्हें अपने दक्षिण भागमें बैठाया। सन्धिका नियम ठीकठाक करके दिल्ली भेजा गया जिसे सम्राट्ने स्वीकार कर लिया। तदनन्तर शिवाजी मुगलोंके पक्षमें होकर बीजापुरके राजाके विरुद्ध लड़नेको तैयार हुए। दूसरे ही वर्ष शिवाजीने अपने पुत्र सम्भाजीको पाँच सौ अश्वारोही और एक हजार मवाली सैनिकोंके साथ सम्राट्की सहायताके लिये दिल्ली भेजा। शिवाजी दिल्ली पहुंचे। सभी दिल्लीनिवासी इन्हें देखनेके लिये उत्सुक हो रहे थे।

शिवाजी जब सभामें पहुंचे तब औरंगजेबने उन्हें निम्न

श्रेणीके कर्मचारियोंके साथ बैठनेको आज्ञा दी। इससे शिवाजी बड़े ही दुःखी हुए और वहांसे उठकर चल दिये। शिवाजी दिल्लीके बाहर नहीं जा सके क्योंकि सम्राट्ने उनके डेरेपर पहरा बैठा दिया था। औरंगजेबने बड़ी चतुरतासे शिवाजीके सैनिकोंको यह कहकर कि यहां रहनेका प्रबन्ध नहीं है पहलेही लौटा दिया था। अतः शिवाजी अपने कुछ अनुचरोंके साथ बड़े संकटमें पड़े। एक दिन शिवाजीने फकीरोंको मिठाई बांटनी प्रारम्भ की अतः टोकरीकी टोकरी मिठाइयां उनके घरसे बाहर जाने लगीं। पहरेदारोंने समझा कि केवल मिठाइयोंकी टोकरियां बाहर निकाली जा रही हैं परन्तु एक टोकरीमें सम्भाजी और दूसरी टोकरीमें शिवाजी बैठकर चुपकेसे बाहर निकल गये। घोड़ा तैयार था अतः दोनों घोड़ेपर सवार होकर मथुरा पहुंचे। यहींपर सम्भाजीको एक मित्रके यहां रखकर शिवाजी स्वयं संन्यासीका भेष धारण करके दक्षिणकी ओर चले गये। तदनन्तर उनके मित्र भी सम्भाजीके साथ दक्षिणको गये।

इस समय औरंगजेबसे और बीजापुरके राजासे लड़ाई हो रही थी। इस भयसे कि कहीं शिवाजी बीजापुरके राजासे मिल न जायं औरंगजेबने उन्हें एक जागीर और राजाकी उपाधि प्रदान की। तदनन्तर शिवाजीने बीजापुर और गोलकुण्डाके राजाको हराकर उनसे कर लेना प्रारम्भ किया।

कुछ दिनोंतक शिवाजी युद्ध-कार्य्य छोड़कर राज्यके प्रबन्धमें लगे रहे। उन्होंने राज्यका समस्त भार ब्राह्मणोंके हाथमें

दे दिया। उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया कि जिसमें कोई किसीको न ठगे और कृषकोंके साथ दुष्टता न की जाय। उनके नियमानुसार फसलके पांच भागोंमें तीन भाग कृषकको मिलते और दो भाग सरकारको मिलते थे। राजकर्मचारी राजकर एकत्रित करते थे और राजकरसे उन्हें वेतन दिया जाता था। उनके पैदल सिपाही अधिकांश मवाली ही थे। तलवार, ढाल और बन्दूक इनके प्रधान शस्त्र थे। इनके अश्वारोही सैनिक दो भागोंमें विभक्त थे।

हिन्दूलोग शरद ऋतुको ही दिग्विजय यात्राका उपयुक्त समय समझते हैं। प्रतापशाली शिवाजी इसी समय भवानीकी पूजा करके दिग्विजयके निमित्त यात्रा करते थे। वे शत्रुके जनपदोंको लूटते तो थे पर कृषक, गौ एवं स्त्रियोंपर अत्याचार नहीं करते थे। इस प्रकार पराक्रमी मुगलोंके शासनकालमें ही महाराष्ट्र राज्य स्थापित हुआ। इस समय मरहठोंकी गणना एक प्रधान जातिमें होने लगी।

औरंगजेबने बाहरी सज्जनता दिखलाकर एक बार और भी शिवाजीको अपने पंजेमें लानेकी चेष्टा की। अबकी बार उसकी चेष्टा सफल न हुई। शिवाजी औरंगजेबकी धूर्त्तता-रूपी जालमें न फंस सके। वे पहलेकी तरह दक्षिणमें अपना अधिकार बढ़ाते ही रहे। अन्तमें बाध्य होकर औरंगजेबको शिवाजीके साथ खुल्लमखुल्ला लड़ाई करनी पड़ी। शिवाजी तनिक भी न डरे बल्कि आत्मसम्मानकी रक्षाके निमित्त

दृढ़ रहे। वे सच्चे वीरकी तरह अपने धर्मपर अटल रहे। शीघ्र ही मुगलोंके अधिकृत कई दुर्गोंपर उनकी विजयपताका फहराने लगी। शिवाजी एक बार फिर पन्द्रह हजार अश्वारोही सैनिक लेकर सूरतमें पहुंचे। नगर लूट लिया गया। कोई भी व्यक्ति तेजस्वी महाराष्ट्र वीरोंके विरुद्ध कुछ भी बोलनेका साहस न कर सका। शिवाजी बहुतसी सम्पत्ति लेकर शान्तिपूर्वक अपने राज्यमें लौट आये।

शिवाजी जिस समय सूरतसे लौटते थे उस समय दाउदखां नामक एक मुगल सेनापतिने पांच हजार अश्वारोही सैनिकोंके साथ इनका पीछा किया। शिवाजीने दाउद्खांको पूर्ण रूपसे पराजित किया। इधर उनके सेनापति प्रतापराव अनेक स्थानों-में जाकर कर संग्रह कर रहे थे। शिवाजीके अधिकारसे चिन्तित होकर औरंगजेबने महावतखांके अधीन चालीस हजार-की एक वृहत् सेना शिवाजीके विरुद्ध भेजी। शिवाजीने मरोपन्त और प्रतापराव नामक दो प्रधान सेनापतियोंको इस वृहत् सेनाके विरुद्ध भेजा। इन दो सेनापतियोंके आनेका बात सुनकर महावतखांने इस्लामखांको एक बड़ी सेना लेकर उनसे लड़नेके लिये भेजा। इस युद्धमें मुगल सेना पूर्ण रूपसे पराजित हुई। बाईस सेनानायक और असंख्य वीर मारे गये। प्रधान प्रधान सेनापति घायल हुए और कैद कर लिये गये। मुगलोंके साथ मरहट्ठोंकी यह सबसे बड़ी लड़ाई थी। इस युद्धमें भी शिवाजीको ही विजय प्राप्त हुई।

इस विजयसे उनकी कीर्त्ति चारों ओर फैल गयी। सर्वसाधारण उन्हें पराक्रमी राजा कहकर सम्मनित करते थे। उनका प्रताप एवं उनका वीरता और चतुरता देखकर लोग विस्मित होते थे। मुगल सम्राट् औरंगजेब भी इनके पराक्रमसे घबड़ा गया। जो कैदी हो गये थे उनके साथ शिवाजीने कुव्यवहार नहीं किया। बन्दियोंको बड़े सम्मानके साथ कुछ दिनोंके पश्चात् बिदा किया। पराजित शत्रुके प्रति सज्जनता दिखलाकर शिवाजीने वीरोचित महत्व और उदारताका परिचय दिया। इस फल और उदारताके कारण उनका पवित्र चरित्र चिरस्थायी रहेगा। शिवाजी पहलेसे ही "राजा" की उपाधिसे विभूषित हो अपने नामका सिक्का चला रहे थे। अब वे वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे व्यवस्था ले शास्त्रकी विधिके अनुसार अपने राज्याभिषेककी तैयारी करने लगे। इस समय गागाभट्ट नामक मीमांसक कर्मकांडी ब्राह्मण वाराणसीसे रायगढ़ आए थे। उन्हींको इस कार्यका भार सौंपा गया। महाराष्ट्रके इतिहासमें १५९६ शाकाके ज्येष्ट मासकी शुक्ला त्रयोदशी सदा स्मरणीय रहेगी। इसी दिन शिवाजी रायगढ़में प्रधान भूपति कहकर स्मानित किये गये। शास्त्रज्ञ गागाभट्टने उस दिन शास्त्रानुसार उनका राज्याभिषेक संस्कार कराया। आनन्दके कारण रायगढ़में इस समय अपूर्व दृश्य नजर आता था।

बहुत दिनोंक बाद हिन्दुओंकी जयध्वनिसे रायगढ़ गूँज उठा। शिवाजीने अपने राज्यमें फारसीकी जगह संस्कृत पढ़ानेका
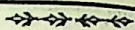
आदेश दिया। राज्याभिषेकके समय कई राजदूत रायगढ़में आये थे। एक अंग्रेज राजदूत भी बम्बईसे यहां पहुंचा था। कम्पनीका प्रतिनिधि प्रकटकर शिवाजीके राज्याभिषेकके समय वह उपस्थित हुआ था। अभिषेक हो जानेपर शिवाजी यथानियम अपने राज्यका काम करने लगे। दक्षिणी भारतमें उनके राज्यका विस्तार नर्मदासे लेकर कृष्णानदीतक हो गया था। शिवाजीने युद्धमें विजय प्राप्त करने तथा मुगलोंके अधिकृत स्थानोंपर अपना अधिकार जमानेमें जैसी योग्यताप्रदर्शित की थी वैसी ही उन्होंने अपनी योग्यताका परिचय राज्यप्रबन्धमें भी दिया। इसके बाद भी उन्हें कई युद्ध करने पड़े। इन सब युद्धोंमें भी उन्हें सफलता हुई। उनके सैनिकोंने मुगलोंके अधिकृत जनपदपर आक्रमण करनेमें कभी संकोच नहीं किया।

एक बार मुगल सेनापति दिलेरखांने बीजापुरके राजापर आक्रमण किया। बीजापुरके राजाने शिवाजीसे सहायता मांगी। शिवाजी सहमत हो गये। शिवाजीकी सेनासे दिलेरखां ऐसा परास्त हुआ कि उसे बीजापुरसे भाग जाना पड़ा। बीजापुरके राजाने कृतज्ञता प्रकाश करते हुए बहुतसा धन रत्न शिवाजीको अर्पण किया।

इस तरह अनेक जगहोंपर असामान्य साहस, अपूर्व क्षमता, अविचलित तेजस्विताका परिचय देनेसे शीवाजीकी उन्नति अपनी चरम सीमा तक पहुंच गई। प्रचंड ज्वरसे पीड़ित होकर वे रायगढ़ लौट आए। ज्वरका प्रकोप बढ़ता ही गया। १६८०

ई० के पाँचवीं अप्रेलको ५३ वर्षकी अवस्थामें शिवाजीका स्वर्गवास हुआ।

इस प्रकार असाधारण वीर पुरुषकी असाधारण घटनापूर्ण जीवनलीला समाप्त हो गयी। इस वीर पुरुषका समस्त कार्य अलौकिक भावोंसे पूर्ण था। भारतके अद्वितीय सम्राट् भी उसकी शक्तिको रोक न सके थे। उनके मवाली सैनिकोंकी समरपटुता देखकर बड़े बड़े वीर चक्करमें आ जाते थे। शिवाजीने अपने पितासे बिना कहे ही अज्ञात रूपसे इस कार्य्यको प्रारम्भ किया था। यद्यपि उनका उस समय कोई सहायक न था तथापि अपनी कार्य्यसिद्धिमें उन्हें सन्देह नहीं था। उन्होंने अपने अपूर्व अध्यवसाय एवम् अलौकिक साहससे इस कार्य्यमें सफलता प्राप्त की। शिवाजी हिन्दूजातिके खोये हुए गौरवके लौटाने वाले थे। बहुत दिनोंसे जो जाति विदेशियों और विधर्मियोंके अत्याचार और अन्यायसे पीड़ित थी, जो जाति स्वाधीनता विसर्जनकर पराधीनताकी बेड़ीसे जकड़ी हुई थी, शिवाजीने उसे उन्नतिके पथपर लाकर साहस और उत्साहका मन्त्र दिया और धीरे धीरे उसे स्वाधीनताभक्त बनाया। मुगल साम्राज्यकी उन्नतिके समय उनके परिश्रमसे एक स्वाधीन हिन्दूराज्य स्थापित हो गया। पराधीनताकी शोचनीयावस्थामें पीड़ित हिन्दुओंमें और कोई भी हिन्दू इस तरहकी वीरता न दिखला सका। अलौकिक क्षमता एवं अपूर्व साहसके ही बल शिवाजी सब कामोंमें सफलमनोरथ हो सके। उनके पराक्रमके आगे सुशिक्षित मुगल

सैनिक भयभीत होकर भाग जाते थे। उनके शत्रु उनके सामने ठहर नहीं सकते थे। सम्राट् औरंगजेब उन्हें "पहाड़ी चूहा" कहा करता था और उनसे घृणा करता था पर अन्तमें उसे भी हार मानकर इनकी प्रधानता स्वीकार करनी पड़ी। शिवाजीका मृत्युसंवाद सुनकर औरंगजेबने कहा था कि "शिवाजी एक योग्य सेनापति था। जिस समय मैं भारतवर्षके हिन्दू राज्योंको नष्ट करता था उस समय उसने ही अकेले एक राज्य स्थापित किया। मैं उन्नीस वर्ष तक उसके विरुद्ध युद्ध करता रहा पर कुछ न कर सका।" औरंगजेबकी बातोंसे ही पाठकोंको शिवाजीकी शक्तिका परिचय मिल गया होगा।

शिवाजी अपने शत्रुका अपकार तो करते थे पर जब शत्रु उनकी अधीनता स्वीकार कर लेता था तब उसके साथ पूर्ण सहानुभूति भी दिखलाते थे। वे अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंके साथ भी असद्व्यवहार नहीं करते थे। गौ और ब्राह्मणकी रक्षामें वे सदा तत्पर रहते थे।

वे जिस तरह पितृभक्त और मातृसेवक थे उसी तरह गुरुभक्त एवं प्रजावत्सल भी थे। उनके गुरुका नाम था रामदास स्वामी। गुरुकी आज्ञासे वे राज्य भी छोड़ सकते थे। गुरुकी आज्ञासे ही उन्होंने वर्णाश्रम धर्मकी रक्षाकी प्रतिज्ञा की थी। महाराष्ट्र प्रदेशके अन्तर्गत देहू नामक स्थानमें तुकाराम नामक एक वैश्य जातिके साधु निवास करते थे। शिवाजीकी इनमें विशेष श्रद्धा थी। नाना प्रकारके विघ्नोंके रहते हुए भी शिवाजी

इनके निकट जाते थे। दादोजी कोड़देवने मरते समय शिवाजी-को राज्यपालन तथा अपने धर्मकी रक्षा करनेकी आज्ञा दी थी। शिवाजी जीवनपर्य्यन्त उनके उपदेशपर दृढ़ रहे।

शिवाजी स्त्रियोंके सम्मानकी यथोचित रक्षा करते थे। उनके एक सेनापतिने किसी जनपदपर अधिकार प्राप्त किया और वहां की एक रूपवती कामिनीको शिवाजीके निकट भेज दिया। शिवाजीने उसे माता कहकर संबोधन किया और सम्मानके साथ उसे घर पहुंचवा दिया। उनके इस व्यवहारसे महाराष्ट्र निवासी बड़े ही संतुष्ट हुए। अपूर्व शक्ति एवं अपरिमित सम्पत्तिके अधिकारी होनेपर भी उनमें विलास-प्रियता न थी। वे भोग और विलासको सदा अनादरकी दृष्टिसे देखते थे। वे बहुत सादा भोजन करते थे। दक्षिणमें शिवाजीके राज्यका घेरा चार सौ मील था। तञ्जोरपर भी उनका अधिकार था। नर्मदा-से तञ्जोरतक एवं कोकणसे मद्रासतक सभी राजाओंको किसी न किसी समय उनकी सहायता अवश्य लेनी पड़ी थी, जिसके बदले उन राजाओंने शिवाजीको कर देना स्वीकार किया था। सारे दक्षिणमें उनकी ही तूती बोलती थी। कोई भी उनकी शक्तिको रोक न सकता था। उनकी धारणा थी कि विश्वासघातकके साथ विश्वासघात न करनेसे अभीष्टसिद्धि न हो सकेगी। इसी धारणाके कारण कभी कभी उन्हें विश्वास-घात करना पड़ता था।

महाराष्ट्रकी महाकीर्त्ति

वीरप्रवर शिवाजी अपने प्रयाससे मुगल सम्राट्के पराक्रमको नष्ट करना चाहते थे। उनका साहस बढ़ने लगा, उच्च अध्यवसायके कारण उनके बड़े साधनका विकास होने लगा। उन्होंने अतुल साहस, असामान्य पराक्रम, एवं अलौकिक अध्यवसायके साथ स्वर्गादपि गरीयसी पुण्य-भूमिकी स्वाधीनताकी रक्षाका प्रतिज्ञा की थी। भारतवर्षरूपी महासागरमें एक प्रचण्ड तरङ्ग प्रवाहित होकर उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम चारों दिशाओंको नष्ट करना चाहती थी। शिवाजी दक्षिणकी ओर अटल पर्वतकी नाईं खड़े होकर उस तरंगकी गतिको रोकने लगे। सत्रहवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें भारतका दक्षिण भाग इसी प्रकारके वीरत्वकी कीर्त्तिसे समुज्ज्वल था। पराधीनताकी शोचनीयावस्थामें स्वाधीनताकी स्वर्गीय मूर्त्ति भारतवर्षके एक प्रान्तमें धीरे धीरे आशा एवं उत्साहसे उनके हृदयको प्रकाशित करती थी। घोर दुर्दिनरूपी मेघमालाओंसे आच्छादित भारतवर्षके लिये इस वीरने सूर्य्यका काम किया।

शिवाजीके पराक्रमको नष्ट करनेके लिये औरङ्गजेबने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलतान मोअज्जम और सेनापति यशवन्त सिंहको दक्षिणकी ओर भेजा। इसके पहले ही जयसिंहने शिवाजीके पुरन्द और सिंहगढ़ नामक दुर्गों पर अधिकार कर लिया था।

मुगलोंका एक बड़ा राजपूत सैन्य सिंहगढ़में था। उदयभानु नामक एक राजपूत वीर इस सैन्यका अध्यक्ष था। इधर शिवाजी इस दुर्गपर अधिकार प्राप्त करके मुगलोंके सामने अपनी प्रधानता स्थापित करना चाहते थे। वीरश्रेष्ठ शिवाजी इस समय शत्रुकी क्षमता नष्ट करनेकी चिन्तामें थे।

सिंहगढ़ प्रकृतिके राज्यके सुन्दर स्थानमें अवस्थित था। वह बड़ी बड़ी पर्वतमालाओंसे घिरा हुआ था। एक ओर लम्बे लम्बे वृक्ष गगनमंडलमें सिर उठाये खड़े थे। सिंहगढ़ इन वृक्षोंके पूरबकी ओर था। उत्तर एवं दक्षिणकी ओर बड़े बड़े पर्वत थे। इन पर्वतोंकी राह अच्छी नहीं थी। आधा मील ऊपर जाकर संकीर्ण दुर्गम पथसे किलेमें जानेका मार्ग था। पच्छिम भागमें इसी तरहके दुर्गम दुरारोह पर्वत विस्तृत थे। दुर्गका आकार त्रिभुजकी भांति था। इसके बीचकी लम्बाई एक कोस थी। इस प्रकारके भीषण प्राकृतिक प्राचीरसे दुर्गकी रक्षा होती थी। जिस समय स्वच्छ नीलाकाश सूर्य्य-लोकसे प्रकाशित होता था उस समय पूरबकी ओर दृष्टि करनेसे वृक्षलताओंसे सुशोभित श्यामलतट देखनेमें अत्यन्त ही सुन्दर मालूम पड़ता था। उत्तरमें पर्वतोंके पश्चात् एक विस्तीर्ण समतल क्षेत्र था। इस क्षेत्रके आगे शिवाजीकी बाल्यलीलाभूमि पूना नगरी नजर आती थी। दक्षिण एवं पश्चिम भागमें बड़ी बड़ी पर्वतमालाएं नीलाकाशको चीरती हुई खड़ी थीं। मालूम होता था कि इन पर्वतोंके शिखर आगे चलकर आकाशमें मिल गये हैं। यहींपर शिवाजीका

रायगढ़ नामक किला भी था। शिवाजीके सेनापति तानाजीने इस दुर्गके अधिकारका भार लिया था। पहले इस दुर्गका नाम कोन्तन था। शिवाजीने तानाजीके पराक्रमका परिचय देनेके लिये इसका नाम सिंहगढ़ रक्खा।

माघका महीना है। दुर्गम गिरि-प्रदेशमें शीतका प्रभाव बढ़ रहा है। साहसी तानाजी जाड़ेकी अन्धेरी रातमें एक हजार मवाला सैन्य लेकर सिंहगढ़पर अधिकार प्राप्त करनेके लिये चले। उनके सैनिक इस मार्गसे भली भांति परिचित थे अतः वे अन्धकारमें भी दुर्गकी ओर चले। तानाजीने अपनी सेनाको दो भागोंमें बांट दिया। एक भागको कुछ दूरपर रख दिया और उन्हें यह आज्ञा दी गयी कि संकेत करनेपर वे लोग आगे बढ़ें। दूसरी सेना दुर्गके निचले भागमें छिपाकर खड़ी की गयी। इनमेंसे एक साहसी वीर पुरुष पर्वतपर चढ़ गया और उसने एक रस्सा एक वृक्षकी डालीपर फेंका। शिवाजीका मवाला सैन्य इसी सीढ़ीका अवलम्बन करके ऊपर चढ़ गया। इस प्रकार तीन सौ सिपाही ज्योंही ऊपर पहुंचे कि एक शब्द हुआ। इस शब्दको सुनकर दुर्गस्थित सैनिक चकित हुए और जिस ओर मवाला सैन्य था उसी ओर देखने लगे। घटना जाननेके लिये ज्योंही एक सैनिक आगे बढ़ा कि मवाला वीरोंके छोड़े हुए तीरसे उसके प्राण निकल गये। इस समय दुर्ग-रक्षक-गण लड़नेके लिये आगे बढ़े। इस समय तानाजी अलौकिक साहसके साथ केवल तीन सौ सैनिकोंके बल रक्षकोंपर टूट पड़े।

मवाला-गण यद्यपि थोड़े थे तथापि वे अलौकिक साहसके साथ लड़ते रहे। थोड़ी देरतक युद्ध होनेके पश्चात् तानाजी सच्चे वीरकी तरह वीर-शय्यापर सो गये। उस समय उनकी सेना रणक्षेत्रसे भागनेके लिये नीचेकी ओर दौड़ी। उस समय तानाजीके भाई सूर्य्याजीने गम्भीर स्वरसे युद्ध-स्थलमें खड़ा होकर कहा—"कौन ऐसा नराधम होगा जो अपने पिताके मृत-शरीरको युद्धस्थलमें छोड़कर भागनेकी चेष्टा करेगा? रस्सीकी सीढ़ी नष्ट हो गई है। शिवाजीके सैनिकोंको उन्हींका सा साहस दिखलाना चाहिये।" सूर्य्याजीके उत्साहपूर्ण वाक्य सैनिकोंके हृदयमें चुभ गए। क्षणभरमें वे लोग दूने उत्साहके साथ शत्रुदलमें घुस गए। इस समय दुर्गरक्षक इनका मुकाबिला नहीं कर सके। इस युद्धमें पांच सौ रक्षक मारे गये। दुरारोह पर्वतशिखरस्थित सिंहगढ़में शिवाजीकी विजयपताका उड़ाई गयी।

इस विजयकी बात शिवाजीके कानोंतक पहुंची। जिस समय शिवाजीने सुना कि दुर्गपर अधिकार प्राप्त करते समय तानाजी मारे गए उस समय शोकाश्रु बहाते हुए उन्होंने कहा, "सिंहका निवासगृह तो अधिकृत हुआ पर सिंह मारा गया।"

स्वाधीनताका सच्चा सम्मान

सत्रहवीं शताब्दीका आधा बीत गया। मुगल-सम्राट् औरंगजेब दक्षिणमें प्रभुत्व प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रहा है। प्रातःस्मरणीय शिवाजी वीरत्व, गौरव एवं तेजस्विताके बल अपने प्राधान्यकी रक्षा कर रहे हैं। उनके प्रताप एवं उनकी महत्तासे सारा भारतवर्ष गौरवान्वित हो रहा है। पराक्रमी मुसलमान लोग अनेक यत्न करनेपर भी इस हिन्दूवीरकी कीर्त्तिमें कालिमा नहीं लगा सके। दिनके बाद दिन, सप्ताहके बाद सप्ताह एवं महीनेके बाद महीने बीत गये परन्तु इस भवानीभक्त हिन्दूवीरका प्रताप मन्द नहीं हुआ। घोर दुर्दिनमें पराधीनताकी शोचनीयावस्थाके समय, मुगलोंकी कठोरतासे पीड़ित आर्य्यभूमि इस वीरके महामन्त्रसे सजीव हो उठी। जिस प्रकार निशीथ रात्रिमें ध्रुवताराके उदय होनेसे पथिकोंको मार्ग चलनेमें कुछ सहारा मिलता है उसी प्रकार इस वीरने महाराष्ट्र निवासियोंको उनका मार्ग दिखला दिया।

शिवाजीको दमन करनेके लिये औरंगजेबने शाइस्ताखांको भेजा। शिवाजीकी शक्तिको शीघ्रताके साथ रोकने, उनके राज्य एवं दुर्गको अपने अधिकारमें लानेकी आज्ञा इस सूबेदारको मिली थी। सम्राट्के आज्ञानुसार शाइस्ताखां बहुसंख्यक सैन्य लेकर औरंगाबादसे होता हुआ पूनाकी ओर बढ़ा। पूना-

पर अधिकार प्राप्त करके शाइस्ताखांने एक विजयिनी सेना एक दूसरे स्थानपर अधिकार प्राप्त करनेके लिये भेजी। इस सूबेदार-ने शिवाजीके अधिकृत जनपदपर अधिकार प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा की थी और दृढ़ प्रतिज्ञाके साथ साथ इसकी तेजस्विताका भी विकास होने लगा। इसको आगे बढ़नेमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। शिवाजीके महामंत्रके बलसे महाराष्ट्र वीर साहसी एवं शक्तिशाली हो गये थे। स्वाधीनता, गौरव, आत्म-सम्मान एवं स्वदेशहितैषितासे उनके हृदय लबालब भरे हुए थे। मुगल सूबेदार अधिक प्रयत्न करनेपर भी इस स्वाधीनता-प्रिय एवं पराक्रमी जातिकी स्वाधीनताको नष्ट नहीं कर सके। महरट्टोंका एक क्षुद्र ग्राम था जिसका नाम था चाकन। इसकी रक्षाका भार फिरङ्गजी नामक एक युद्धवीरको सौंपा गया था। फिरंगजीने सत्रह वर्षतक मुगलोंसे इसकी रक्षा की थी। शाइस्ताखांने सोचा कि इतने छोटे दुर्गपर अधिकार प्राप्त करना कोई बड़ी बात नहीं है। आदेश देनेकी ही देर है, इसका रक्षक शीघ्र ही स्वयं आकर अधीनता स्वीकार करेगा। यद्यपि फिरं-गजी क्षुद्रजनपदके रक्षक थे पर उनकी तेजस्विता और क्षमता क्षुद्र नहीं थी। इस वीरने आत्म-समर्पण न किया, स्वाधीनता-का विसर्जन न किया। उनका साहस एवं पराक्रम बढ़ गया। वीर प्रवर फिरंगजी अलौकिक वीरताके साथ अपनी रक्षाके निमित्त पराक्रमी मुगलोंसे लड़नेके लिये तैयार हो गये। डेढ़ महीनेतक लड़ाई होती रही पर महाराष्ट्रीय वीरोंने मुगलोंकी

अधीनता स्वीकार न की। प्रति दिन नये उत्साह एवं नवीन पराक्रमके साथ फिरंगजी लड़ते थे। इसी प्रकार दस दिनोंतक और भी लड़ाई होती रही परन्तु चाकन मुगलोंके अधिकारमें नहीं आया। इस तरह एक महीना पचीस दिन युद्ध होनेके पश्चात् छब्बीसवें दिन दुर्गकी दीवालकी कुछ ईंटें टूटकर निकल गयीं। आक्रमणकारी मुसलमान सैनिक बड़ी प्रसन्नताके साथ उस मार्गसे नगरमें घुसने लगे। ऐसे संकटके समयमें फिरंगजी अपने सैनिकोंके आगे होकर शत्रुओंको रोकने लगे। उनकी क्षमता, उनके वीरत्व एवं पराक्रमके सामने मुसलमान लोगोंको आगे बढ़नेकी हिम्मत नहीं हुई। इस तरह अपनी क्षमता एवं तेजस्वितासे फिरंगजीने शत्रुओंको रोक रक्खा, वे आगे बढ़ नहीं सके। फिरंगजी सारे दिन अपनी सेनाके उसी टूटे स्थानपर खड़े होकर शत्रुओंका आघात सहते रहे। धीरे धीरे रात्रि आयी आकाशमें तारागण दीख पड़ने लगे। रात्रिमें मुगलसेना युद्धक्षेत्रसे चली गयी। दूसरे दिन सवेरे ही फिरंगजी शाइस्ताखांके सामने पहुंचे। शाइस्ताखांने फिरंगजीके असाधारण साहस एवं पराक्रमकी प्रशंसा करते हुए कहा कि यदि आप मुगल सम्राट्की नौकरी स्वीकार कर लें तो आपको यथोचित पुरस्कार दिया जायगा। तेजस्वी फिरंगजीने अपना सम्मान विक्रय करना उचित नहीं समझा। शाइस्ताखांने उनका वीरोचित सम्मान किया। फिरंगजी वीरत्वसे गौरवान्वित हो शिवाजीके निकट गये। शिवाजीने साहस एवं पराक्रम

दिखलानेके बदले उन्हें यथोचित पुरस्कार दिया। भारतवर्षके वीरोंने किसी समय इसी तरह स्वाधीनताकी रक्षा की थी, आत्म-गौरवको न भूलकर आर्य्यवीरोंने अपनी तेजस्विता एवं महत्ताका परिचय दिया था।

सिक्ख सम्प्रदायकी उत्पत्ति

नानकका जीवन तथा उनका धर्म सिक्ख जातिके इतिहासकी एक आवश्यक घटना है। नानक शाह वा बाबा नानकका जन्म १४६९ ई० में लाहौरसे दस मीलपर कानाकुचा नामक ग्राममें हुआ था। उनके पिताका नाम था कालूबेदी था। वे क्षत्रिय थे। नानकका जीवनचरित्र अनेक काल्पनिक घटनाओंसे परिपूर्ण है। इस दृश्यमान जगतमें जिस समय उनके प्रतापरूपी सूर्य्यकी किरण अपनी ज्योति फैलाने लगी उस समय जनता उनके विषयमें अनेक काल्पनिक बातें कहने लगी। नानकने धर्ममें जैसी दक्षता और क्षमताका परिचय दिया है इससे यदि उनके विषयमें अनेक प्रकारकी किम्वदन्तियां प्रचारित हों तो तनिक भी विस्मयकी बात नहीं है। सिक्खोंने अपने गुरुकी महिमा बढ़ानेके लिये ये सब अलौकिक बातें कहीं। इसीसे वे घटनाएं विश्वासजनक नहीं समझी जातीं। नानकने छोटी अवस्थामें ही गणित तथा फारसी भाषामें निपुणता प्राप्त कर ली। वे स्वभावसे ही सच्चरित्र एवं चिन्ताशील मनुष्य थे। थोड़े ही दिनोंमें सांसारिक कार्य्य तथा सांसारिक विषय-वासनासे उनका चित्त हट गया। कालूबेदीने पुत्रको गृहस्थीके कार्य्यमें लानेकी पूरी चेष्टा की। एक बार उन्होंने अपने पुत्रको चालीस रुपये देकर नमकका

व्यवसाय प्रारम्भ करनेके लिये अनुरोध किया परन्तु उनकी चेष्टा फलवती नहीं हुई। नानकने पिताके दिये हुए द्रव्यसे खाद्य सामग्री खरीदकर भूखों तथा फकीरोंको खिला दी।

नानकने युवावस्थामें ही वेद और कुरानके तत्त्वोंको हृदयंगम कर लिया था। तत्पश्चात् अपनी तीक्ष्ण प्रतिभा तथा प्रगाढ़ शास्त्रज्ञानके बलपर वे अपने धर्मका प्रचार करने लगे। अलौकिक क्रियाओंपर उनका कुछ भी विश्वास नहीं था। जिससे चित्तमें शान्ति मिले और ईश्वरके तत्त्वका ज्ञान हो वही पवित्र धर्म है। उस समयके सभी धर्मशास्त्र तथा धर्मसम्प्रदाय कुसंस्कारोंसे परिपूर्ण थे यह देखकर नानक बड़े ही दुखी हुए। वे संन्यासीके वेषमें भारत भ्रमण करनेके लिये निकले। उन्होंने साधुओं तथा योगियोंसे भेंट की, फकीरोंके कार्य्यको देखा पर कहीं भी उन्हें सत्यता नहीं मिली। सब जगह कुसंस्कारकी भयंकर मूर्त्ति एवं कर्म-कांडकी शोचनीय दशा देखकर वे घर लौट आये।

स्वदेश आकर नानकने संन्यासी धर्म एवं संन्यासी वेषका परित्याग कर दिया। गुरुदासपुर जिलामें एरावती नदीके तटपर नानक "करतारपुर" नामकी एक धर्मशाला स्थापित की। नानकने अपने जीवनका शेष भाग अपने परिवार एवं शिष्यसम्प्रदायके साथ उसी धर्मशालामें बिताया। १५३६ ई०में बाबा नानक ७० वर्षकी अवस्थामें अपना नश्वर शरीर इसी धर्मशालामें छोड़कर परलोक पधारे। लोदी वंशके अभ्यु-

दय कालमें इनका जन्म हुआ था और मुगल वंशके अभ्युदय कालके पश्चात् वे स्वर्ग सिधारे। उनके जीवनके ६० वर्ष पांच मास और सात दिन धर्म चर्चामें बीते।

नानक द्वारा प्रवर्त्तित धर्मपद्धतिका आलोक पहले पहल पंजाबके दीर्घकाय सरल-स्वभाव जाठोंपर पड़ा। धीरे धीरे मुसलमानोंने भी इस धर्मका अवलम्बन किया। नानकके एक विश्वासी मुसलमान शिष्यका नाम था मर्द्धाना। यह शिष्य छायाकी भांति सदा उनके साथ रहता था। संस्कृत नाटकमें जिस प्रकार विदूषकगण प्रतिक्षण उदरकी चिन्तासे व्याकुल हो "हा हतोस्मि" कहते हैं उसी प्रकार मर्द्धाना बारम्बार क्षुधासे कातर हो उठता था। संगीतशास्त्रसे मर्द्धानाकी बड़ी प्रीति थी। वह सदा वीणा बजाकर ईश्वरका गुणगान करता था। जिस समय नानक नेत्र मूंदकर ईश्वरध्यानमें लीन हो जाते और वाह्य जगतसे संसर्ग छोड़कर ईश्वरकी चिन्तामें निमग्न रहते उस समय मर्द्धाना वीणा बजाकर मधुर गीत गाता था।

नानक सदा इसी बातकी चेष्टामें रहते थे कि वाह्य क्रिया और जातिभेद नष्ट हो और आपसमें भ्रातृभावका संचार हो। उनका विचार था कि जातिको अनेक सम्प्रदायोंमें विभक्त करनेकी आवश्यकता नहीं है। देवालयमें जाकर पूजा करना वा ब्राह्मणोंको भोजन करना वे उचित नहीं समझते थे। इन्द्रियदमन और चित्तसयमको ही वे सर्वश्रेष्ठ समझते थे। आत्मशुद्धिको ही वे मूल साधन समझते थे। विशुद्ध हृदयसे ईश्वरकी

उपासनाको ही वे धर्माचरण कहते थे। उनका सिद्धान्त था कि ईश्वर एक है अतः सच्चा विश्वास भी एक ही प्रकारका हो सकता है। ये जो भिन्न भिन्न धर्म देखे जाते हैं वे मनुष्यकल्पित हैं। वे पण्डित, मौलवी और दरवेशोंको एक समझते थे और अनेक देवताओंको छोड़कर ईश्वरमें चित्त स्थिर करनेके लिये उनसे अनुरोध करते थे। जिस ज्ञानबलसे ईश्वरका तत्त्व समझा जाय वे उसीकी प्राप्तिकी चेष्टा करते थे। ईश्वर एक, सर्व-शक्तिमान और सबका स्वामी है। सदाचार तथा सत्कार्य्यसे ही मनुष्य सर्वशक्तिमान ईश्वरका प्रेमपात्र बन सकता है। नानकके विचारमें वैराग्य और संन्यासधर्म अनावश्यक था। वे कहते हैं कि ईश्वरके सामने साधु, योगी वा गृहस्थ सब एकसे हैं। नानककी धर्मसम्बन्धी बातें अब भी बहुत प्रसिद्ध समझी जाती हैं। यहांपर उनकी कुछ उक्तियोंका वर्णन किया जायगा।

एक दिन ब्राह्मण लोग स्नानके पश्चात् पूर्व और दक्षिणकी ओर तर्पण कर रहे थे। उसी समय नानक पश्चिमकी ओर जल देने लगे। सब लोगोंने इसका कारण पूछा तब नानकने जवाब दिया "यहांसे पश्चिमकी ओर करतारपुरमें मेरा एक क्षेत्र है उसीको मैं सिञ्चित करता हूं।" यह बात सुनकर सब लोगोंने हंस दिया और कहा, करतारपुर यहांसे सैकड़ों कोस है जल वहां कैसे पहुं-चेगा? नानकने गम्भीर भावमें उत्तर दिया—"तब तुम कैसे आशा करते हो कि यह जल परलोकगत पितरोंके पास जाकर उन्हें तृप्त करेगा?"

१५२६ ई० में एक बार बाबरकी सामग्री ढोनेके लिये नानक पकड़े गए। उनकी वाक्‌चातुरी एवं साधुतासे प्रसन्न होकर बाबरने उन्हें छोड़ तो दिया ही बल्कि उन्हें बहुत सी सम्पत्ति देकर संतुष्ट करना चाहा। नानकने सम्राट्‌के दिये हुए द्रव्यको स्वीकार नहीं किया और कहा—"मुझे किसी वस्तुका अभाव नहीं है और मेरे पास जा धन है उसका नाश नहीं हो सकता।" बाबरने इसका भावार्थ पूछा तब नानकने कहा "ईश्वरका नामामृत पान करनेसे मेरी क्षुधा और पिपासा एकदम बुझ गई हैं और मैं उसी अमृतसे संतुष्ट हूं।" नानक एक बार मक्का गये और कावा नामक उपासनामन्दिरकी ओर पैर करके वे सोये थे। पवित्र मन्दिरका अपमान करनेके कारण लोगोंने उनकी बड़ी निन्दा की। नानकने वहांके मुसलमानोंसे कहा "ईश्वर सर्वव्यापी है, जिधर पांव रक्खूं उधर ही मौजूद है तो कहिये किधर पांव रखनेमें निस्तार है ? उन्होंने किसी समय कहा था —"राम, कृष्ण, महम्मद इत्यादि सभी कालके वशमें हैं परन्तु वह परमात्मा अमर है और वह किसीके अधीन नहीं है। तोभी लोग राम, महम्मद इत्यादिको ईश्वर कहकर पूजते हैं यह बड़ी लज्जाकी बात है। जिसका हृदय शुद्ध है वही सच्चा हिन्दू और जिसका जीवन पवित्र है वही मुसलमान है।" नानकको अपने धर्म तथा अपनी उपासनाका घमण्ड नहीं था। वे अपनेको सर्वशक्तिमान परमात्माका विनीत दास बतलाते थे जो इस संसारमें उसका संदेश सुनानेके लिये आये थे। यद्यपि उनके

विचार पांडित्यपूर्ण थे और उनके धर्मका असाधारण प्रभाव पड़ता था तोभी वे इसे अलौकिक नहीं कहते थे।

गुरु नानकने इसी प्रकार अपने धर्मका प्रचार करके अनेकों शिष्य बना लिया। ये शिष्यगण इनकी धर्मपद्धतिके अनुसार चलते थे अतः कुछ दिनोंमें यह सम्प्रदाय निष्कलंक समझा जाने लगा। शिष्य शब्दसे अपभ्रंश होकर सिक्ख बना है। किसीका मत है कि शिखासे "सिक्ख" बना है। जिन पंजाबियों-के मस्तकमें शिखा हैं वे हो सिक्ख कहलाते हैं। चाहे कुछ भी अर्थ क्यों न हो पर यह बात स्थिर है कि नानकके शिष्यगण सर्वसाधारण द्वारा "सिक्ख" कहे जाते हैं।

सिक्खोंकी जातीय उन्नति

देवर्षि नारदने एक बार युधिष्ठिरसे पूछा, "आप अपने पराक्रमसे दुर्बल शत्रुको पीड़ित तो नहीं करते ?" नारदके इस वाक्यमें एक राजनैतिक उपदेश भरा है। दुर्बल सम्प्रदायको कष्ट देनेसे वह कष्ट देनेवालेके विरुद्ध बल संग्रह करने लगता है और धीरे धीरे कुछ दिनोंमें उसके मुकाबला करने योग्य हो जाता है। इसीसे महर्षि नारदने उपदेश दिया कि दुर्बल शत्रुपर भी अत्याचार करना नीतिविरुद्ध है। यदि राजा अपनी अधीनस्थ प्रजापर अत्याचार करेगा तो वही प्रजा सबल होकर राजाको राजच्युत कर देगी। जिन जिन राजाओंने नारदके इस उपदेशको नहीं सुना उन्हें अपने राज्यसे हाथ धोना पड़ा।

इतिहासमें ऐसे उदाहरणका अभाव नहीं है। भारतवर्षका इतिहास देखा जाय तो भली भाँति मालूम हो जायगा कि इसी नीतिके अनुसार न चलनेके कारण मुसलमान राजाओंको प्रबल शत्रुओंका सामना करना पड़ा और अन्तमें उनका राज्य भी नष्ट हो गया। मुसलमान राजाओंके अत्याचारसे पीड़ित होकर दक्षिणके किसानोंने शस्त्र धारण किया और प्रातःस्मरणीय शिवाजीके अधीन वे अपनी शक्ति बढ़ाने लगे। आर्य्यावर्त्तमें सिक्ख वीर धीरे धीरे अपनी सेना एकत्रित करके अत्याचारीके

विरुद्ध खड़े हुए। सिक्खोंके उत्थानका विवरण विचित्र घटनाओं-से परिपूर्ण है। नानककी मृत्युके पश्चात् अमरदास प्रभृति कितने ही इस सम्प्रदायके नेता हुए। अबतक सिक्ख लोग धर्म-शास्त्रानुसार योगीकी भांति संयमके साथ अपना काम करते थे। धीरे धीरे मुसलमानोंके अत्याचारसे इनका हृदय दग्ध होने लगा। मुसलमान लोग पशुकी नाईं उन्हें वध्यभूमिमें ले जाते और बिना उनकी बातें सुने असामान्य अत्याचारके साथ इन्हें मार डालते। मुगल सम्राट् जहांगीरकी आज्ञासे इनके गुरु अर्जुन कारागारमें ही घोर अत्याचारके साथ मार डाले गये। पश्चात् उनके पुत्र गुरुगोविन्द हुए और वे अत्याचारी मुसलमानोंके शत्रु बने रहे। जो सिक्ख पहले धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे, अर्जुनकी मृत्युके पश्चात् उन लोगोंने शस्त्र धारण किया। उनके हृदयमें प्रतिहिंसाकी अग्नि धधक रही थी; इसीने उन्हें शस्त्रधारण करनेके लिये उत्तेजित किया।

हरगोविन्द सदा दो तलवार रखते थे। इसका कारण पूछनेपर वे कहते थे, "पहले तलवारसे पिताका बदला लूँगा और दूसरेसे शत्रुका राज्य नष्ट करूंगा।" हरगोविन्दने ही पहले पहल सिक्खोंको शस्त्र धारण करनेकी आज्ञा दी, परन्तु हरगोविन्दके समयमें उनके शस्त्रबलसे उनकी अभीष्टसिद्धि नहीं हुई। इस अभीष्टकी सिद्धिके लिये सिक्ख समाजमें एक दूसरे महात्माका प्रादुर्भाव हुआ। वे अपने स्वजातियोंकी असहनीय यन्त्रणाओंको देखकर बड़े ही दुःखी हुए और प्राण-

पणसे उसके उद्धारकी चेष्टा करने लगे। उनकी तेजस्विता, साहस और महाप्राणता सिक्ख दलमें प्रविष्ट हो गई जिससे उनमें जीवनीशक्तिका सञ्चार होने लगा। इस समय इस पीड़ित जातिमें जीवनके लक्षण दीखने लगे। इसी महापुरुषके महामन्त्रसे दीक्षित होकर सिक्ख वीर सजीव हो गये। इस महापुरुष और महामन्त्र दाताका नाम गोविन्दसिंह था।

गुरु गोविन्दसिंहने ही पहले पहल सिक्खोंको एकताके सूत्रमें बांधा। गुरु गोविन्दसिंहकी ही प्रतिभाके बलसे हिन्दू, मुसलमान ब्राह्मण तथा चाण्डाल एक भूमिपर खड़े होकर एक दूसरेके साथ भ्रातृ-भावसे मिले। गुरुगोविन्दसिंहने ही पहले पहल सिक्खोंमें जातीयताका भाव फैलाया। इतिहासमें वर्णन करने योग्य सिक्खोंकी तेजस्विता, स्थिर प्रतिज्ञता तथा युद्ध-कुशलताके मूल कारण गोविन्दसिंह ही थे। नानकके प्रतिष्ठित सम्प्रदायके अनुयायी गोविन्दसिंहके अतिरिक्त कोई भी मनुष्य भारतकी समस्त जातियोंको मिलाकर एक महाजाति बनानेमें समर्थ नहीं हो सका। सिक्खोंके जातीय उत्थानसे गोविन्द-सिंहके जीवनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। १६६१ ई० में पाटना नामक ग्राममें गोविन्दसिंहका जन्म हुआ था। उनके पिताका नाम तेगबहादुर था। तेग शब्दका अर्थ तलवार है अतः तेग बहादुर उसे कहते हैं जो तलवार चलानेमें कुशल हो। हरगो-विन्दकी भांति तेगबहादुर भी कष्टसहिष्णु एवं परिश्रमी थे। जिस समय सिक्खोंने तेगबहादुरको अपना गुरु माना उस

समय उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा कि मैं हरगोविन्दकी तरह शस्त्र धारण नहीं कर सकता अतः मुझसे उस स्थानकी ठीक ठीक पूर्त्ति नहीं होगी। वे अपने कर्त्तव्यपर दृढ़ रहने लगे जिसका फल यह हुआ कि दिल्लीका सम्राट् उनसे रुष्ट हो गया। अन्तमें दिल्लीके सम्राट्ने तेगबहादुरके विरुद्ध सेना भेजी। वे पराजित होकर कैद कर लिये गये। निठुर औरंगजेबने उनके प्राणदण्ड-की आज्ञा दी। दिल्ली जाते समय तेगबहादुरने गोविन्दसिंह-को पिताकी दी हुई तलवार दी और उसे गुरुका पद देकर कहा-"पुत्र! मुसलमान लोग मुझे दिल्ली ले जाते हैं। यदि वे मुझे मार डालें तो अधीर न होना बल्कि मेरे स्थानमें उन उद्देश्योंका पालन करना। ऐसा उपाय करना जिसमें मेरे मृत शरीरको स्यार और कुत्ते नष्ट न करें। शत्रुसे बदला लेनेमें कसर न करना।"

गोविन्दने जन्मभर पिताकी इन आज्ञाओंका पालन करनेकी प्रतिज्ञा की। तेगबहादुर पुत्रकी यह प्रतिज्ञा सुनकर बड़ी प्रसन्नता के साथ दिल्ली गये। दिल्ली पहुंचनेपर सम्राट्ने किसी अलौकिक घटना द्वारा सिक्ख धर्मके माहात्म्य दिखलानेका अनुरोध किया। तेगबहादुरने गम्भीर स्वरसे कहा—"सर्वशक्तिमान् ईश्वरकी उपासना ही मनुष्यमात्रका प्रधान धर्म है।" जब उनके प्राण-दण्डकी आज्ञा हुई तब उन्होंने एक लिखा हुआ कागज गलेमें बांधकर अपना सिर घातककी ओर बढ़ा दिया। क्षणभरमें तेजस्वी सिक्ख गुरुका मस्तक शरीरसे अलग हो गिरा। इस

अपूर्व आत्मत्याग एवं निर्भीकताको देखकर दिल्लीका सम्राट् चकित हो गया। पश्चात् जब उसने लिखे कागजको पढ़ा तब उसके आश्चर्य्यकी सीमा न रही। औरंगजेबने सविस्मय तथा विह्वलचित्तके साथ देखा कि उसमें लिखा था:—

"सिर दिया सार ना दिया"

"प्राण दे दिया परन्तु धर्मके गूढ़ तत्त्वको नहीं छोड़ा।" इसी तरह १६७४ ई०में तेगबहादुरकी मृत्यु हुई। इस प्रकार तेगबहादुरने धीरताके साथ अपना जीवन विसर्जन किया। इस असाधारण आत्मत्यागसे धर्मवीरका पवित्र जीवन सदा उज्ज्वल बना रहेगा। विनश्वर संसारके विनश्वर जीवोंकी अविनश्वर कीर्त्ति लोगोंको चिर कालतक उपदेश देती है।

पिताकी मृत्युकी बात सुनकर गोविन्दसिंह बड़े ही दुःखी हुए। उन्होंने अपने शिष्योंको एकत्रित करके कहा, "पुत्र! तुम लोगोंने सुना कि मेरे पिता दिल्लीमें मारे गये। अब मैं इस संसारमें अकेला हूं, परन्तु मैं जबतक जीवित रहूंगा पिताकी मृत्युका बदला लेनेकी चेष्टामें लगा रहूंगा। इस कार्य्यके सम्पादनमें मैं अपने प्राणको भी तुच्छ समझूंगा। पिताजीका मृत शरीर अभी तक दिल्लीमें है। तुम लोगोंमेंसे कौन उसे ला सकेगा?" गुरुकी ये बातें सुनकर एक शिष्यने तेगबहादुरके मृत शरीरको दिल्लीसे लानेकी प्रतिज्ञा की। गोविन्दसिंहसे बिदा होकर वह शिष्य दिल्ली गया और तेगबहादुरका मृत शरीर

लेकर पंजाब लौट आया। सिक्खोंने तेगबहादुरके मस्तकका सत्कार किया।

जिस समय तेगबहादुरकी मृत्यु हुई उस समय गोविन्द-सिंहकी अवस्था केवल पन्द्रह वर्षकी थी। पिताका शोचनीय हत्याकाण्ड, स्वजाति एवं स्वदेशके अधःपतनसे गोविन्दसिंहके हृदयमें ऐसे गम्भीर भाव उत्पन्न हुए कि उन्होंने अत्याचारियोंके हाथसे स्वदेशका उद्धार करना ही अपने जीवनका लक्ष्य समझा। उन्होंने भारतवर्षकी सारी जातियोंको एकताके सूत्रमें बांधकर इस अत्याचारी शत्रुके विरुद्ध खड़ा किया। अल्पवयस्क होनेके कारण उनकी धीरता विचलित नहीं हुई, कोमल बुद्धि होनेके कारण उनकी दृढ़ता लुप्त नहीं हुई।

पिताकी अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त करके वे यमुनाके निकट-वर्त्ती पार्वत्य प्रदेशमें चले गये। यहांपर शिकार खेलने, पारसी भाषा सीखने तथा जातीय गौरवकी कहानी सुननेमें वे समय बिताने लगे।

सत्रहवीं शताब्दीका अधिकांश व्यतीत हो चुका था। भारत-वर्षमें मुगल राज्यका पूर्ण विकास हो रहा था। यद्यपि अकबरकी उदारताके चिह्न भी लुप्त हो गये तथापि उसके सुव्यवहार बार-म्बार स्मरण हो आते हैं। शाहजहांकी शोचनीय दशाका स्मरणकर सभी सहृदय लोगोंके नेत्रसे अश्रुधारा बहने लगती है। औरंगजेब अपनी पाशविक शक्तिसे भारतवर्षका शासन करनेके लिये तैयार था। पूर्वकी ओर राजसिंहने इस शक्तिके

रोकनेकी चेष्टा की। दक्षिणमें प्रातःस्मरणीय शिवाजीने हिन्दुओं-की गौरवरक्षाके निमित्त वीरत्वकी महिमाका परिचय दिया।

उत्तरमें एक तरुण युवक इस शक्तिको मूलसे नष्ट करनेके लिये दुर्गम गिरिकन्दरामें योगासन लगाकर बैठा था। प्रशान्त एवं गम्भीर युवक संयमके साथ तपस्या कर रहा था। उसमें विलासिता तथा सांसारिक प्रलोभनोंकी रेखातक न थी। उसमें स्वार्थका लेशमात्र न था। वह भोग-विलाससे अलग मातृ-भूमिके हितसाधनके संकल्पमें अचल एवं दृढ़ था। यह काल्प-निक चित्र नहीं है, उपन्यासकी मोहिनीमाया नहीं है, यह एक सच्चा ऐतिहासिक चित्र है। पाठक! आप लोगोंने मेजिनीके कर्त्तव्यकी बातें सुनी होंगी, गेरीबाल्डीकी वीरतापर विस्मित हुए होंगे, वाशिङ्गटनकी दृढ़ताके आगे मस्तक नवाया होगा। इन वीरोंने अपने आत्म-त्याग, दृढ़ता एवं वीरतासे सारे देशको मत्त कर दिया था। औरङ्गजेबके समयमें मुगल–साम्राज्य उन्नतिकी चरम सीमातक पहुंच गया था। औरंगजेबने अपने छल, बल तथा कौशलसे कितनोंको अपने अधीन कर लिया परन्तु उसकी कुटिलताका परिणाम ऐसा भीषण हुआ कि भारतवर्षके प्रत्येक भागमें उसके शत्रु तैयार हो गये। दक्षिणमें शिवाजीने अपनेको स्वतंत्र बना लिया परन्तु असमयमें उनकी मृत्यु हो जानेसे औरंगजेबको कुछ शान्ति मिली। मुगलोंके इसी प्रतापके समय सिक्ख गुरु गोविन्दसिंह एक नया राज्य स्थापित करनेके उद्योगमें लगे।

यमुनाके पार्वत्य प्रदेशमें गोविन्दसिंहने अज्ञात भावसे बीस वर्ष बिताये। इसी बीस वर्षमें उनके असंख्य शिष्य हो गये। गोविन्दसिंह एक बार अपने असंख्य शिष्योंको लेकर पंजाबमें आये और वहां अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये उद्योग करने लगे। गुरु गोविन्दसिंहकी शिक्षासे उनके शिष्योंका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था, उनकी विचार-शक्ति परिमार्जित हो गयी थी। अतः वे प्रगाढ़ प्रेमके साथ देशोद्धारकी चेष्टामें लगे। इस महान् उद्देश्यकी नींव एकता एवं स्वार्थत्यागपर दी गयी थी। वे अपने साधनमें अटल, सहिष्णुतामें अविचल तथा उद्देश्य-सिद्धिमें तत्पर थे। गुरु गोविन्दसिंहके महामन्त्रसे उनके शिष्योंमें सजीविता आ गयी। गुरु गोविन्दसिंहने प्रबल पराक्रमी राज्यमें रहकर भी उसी राज्यके ध्वंस करनेका संकल्प किया। गोविन्दसिंह साहसी, कर्त्तव्यपरायण तथा स्वजातिवत्सल थे। वे पृथ्वीपर पापाचार देखकर बड़े दुःखी हुए एवं मुसलमानोंके अत्याचारसे अपना जीवन संकटमें देखकर बड़े ही क्रुद्ध हुए। उनका विश्वास था कि मानवजाति अपने साधनके बलसे महान्से महान् कार्य कर सकती है। वे सदा ऋषि महर्षिकी शिक्षाओंको स्मरण करते और एक ऐसा उपाय ढूंढ़नेमें लगे रहते थे कि जिससे संसारके कुसंस्कार दूर हों। वे अपने शिष्योंको उत्तेजित करनेके लिये सदा ऋषि महर्षियोंकी कहानियां उनसे कहा करते थे। देवताओंने किस प्रकार कष्ट सहन करके दैत्योंको हराया। सिद्ध लोगोंने कितने

साधनके पश्चात् अपना सम्प्रदाय प्रतिष्ठित किया, गोरखनाथ एवं रामानन्दने अपने मतप्रचारके लिये कितना परिश्रम किया, महम्मद किस प्रकार घोर विपत्तियोंका सामना करता हुआ अपनेको ईश्वरप्रेरित बतलाकर लोगोंके हृदयपर आधिपत्य प्राप्त करनेमें समर्थ हो सका। विशेषकर उपर्युक्त विषयोंपर ही वे अपने शिष्योंसे बात-चीत करते थे। वे अपनेको ईश्वरका भृत्य बतलाते और कहते कि सरल एवं स्वच्छ हृदय ही ईश्वरके रहने योग्य उपयुक्त स्थान है।

गोविन्दसिंह इसी प्रकार अपने मतका प्रचार करते और उनके शिष्यगण इन उपदेशपूर्ण वाक्योंसे उत्तेजित हो उठते। गोविन्दसिंहने यत्नपूर्वक वैदिक तत्वों एवं वैदिक क्रियाओंका अनुशीलन किया। यद्यपि वे शास्त्राध्ययनमें अधिक समय बिताते थे तथापि उनकी शारीरिक तेजस्विता कम नहीं हुई। वे निकटवर्त्ती पर्वतमें जाकर अर्जुनके सदृश पराक्रम एवं तेजस्विता प्राप्त करनेके निमित्त तपस्या करने लगे। आत्म-संयमी गोविन्दसिंहका सिक्ख-समाजमें बहुत मान होने लगा।

गोविन्दसिंहने अपने उद्देश्यकी सिद्धिके निमित्त सांसारिक सुखको त्याग दिया। उन्होंने अपनी स्थायी सम्पत्ति भी छोड़ दी। उन्होंने अपने शिष्योंको भी सांसारिक भोग-विलाससे अलग रहनेके लिये कहा। एक बार सिन्ध देशके एक शिष्यने उन्हें ५००००) मूल्यके दो हाथके गहने दिये। पहले तो गोविन्दसिंहने उन गहनोंको स्वीकार नहीं किया परन्तु बहुत

आग्रह करनेपर उन्हें अपने हाथोंमें पहन लिया। कुछ दिनके पश्चात् एक दिन उन्होंने निकटवर्त्ती नदीमें एक हाथका गहना फेंक दिया। एक शिष्यने उनका एक हाथ शून्य देखकर इसके विषयमें पूछा। गुरु गोविन्दसिंहने कहा—"एक गहना जलमें गिर गया।" शिष्यने एक डुब्बीको बुला करके कहा-"यदि तुम गुरुजीका गहना ढूंढ़ दोगे तो ५००) रुपये पुरस्कार पावोगे"। डुब्बी सहमत हो गया। शिष्यने गुरुजीसे वह स्थान बतलानेकी प्रार्थना की जहां गहना गिरा था। गोविन्दसिंह नदीतटपर गये और बचा हुआ गहना भी फेंककर बोले—"यहीं गिरा है।" शिष्य गुरुजीकी सांसारिक सुखसे इतनी निवृत्ति देखकर बहुत ही विस्मित हुआ। गुरुजीके त्यागका ऐसा प्रभाव पड़ा कि कितने शिष्योंने भी सांसारिक सुख त्याग दिया।

गोविन्दसिंहने इस प्रकार नयी रीतिपर सिक्ख-समाजका संगठन किया। उन्होंने शिष्योंको एकत्रित करके कहा-"एक ईश्वरकी उपासना करनी होगी। सांसारिक वस्तुओंको ईश्वर मानकर उसकी शक्तिमें धब्बा लगाना नहीं होगा। सरलहृदय तथा एकान्तचित्त होकर ईश्वरकी आराधना की जाती है। सबको एकताके सूत्रमें आबद्ध रहना होगा यही इस समाजका नियम है। इस समाजमें वंशकी प्रधानताका विचार न किया जायगा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र सभी एकसे समझे जायंगे और जातिभेदका विचार छोड़कर सबको एक साथ भोजन करना पड़ेगा। इस समाजका प्रधान उद्देश्य यही है कि तुर्कोंका नाश तथा

जातीयताका प्रचार करे।" ये वाक्य कहकर गोविन्दसिंहने एक क्षत्रिय, एक ब्राह्मण और तीन शूद्रोंके शरीरपर चीनीके शरबतकी छींटा दी और उन्हें "खालसा" (पवित्र) की उपाधि दी। तत्पश्चात् उन्हें "सिंह" की उपाधि देकर युद्धके लिये तत्पर होनेको कहा। गोविन्दसिंहने स्वयं भी यह उपाधि धारण की तबसे सब लोग उन्हें गोविन्दसिंह कहने लगे।

गोविन्दसिंहने इस प्रकार जाति-भेद हटाकर सबको एक बना दिया और उन्होंने सबके हृदयमें एक नयी शक्ति संचारित-की। उनके इस कार्य्यपर पहले तो लोगोंने असं-तोष प्रकट किया परन्तु गोविन्दसिंहकी तेजस्विता एवं कार्य्य-कुशलताके कारण उनका असंतोष शीघ्र ही दूर हो गया। गुरुकी अनिर्वचनीय तेजस्विताके कारण उनके शिष्यगण किसी बातमें कभी आपत्ति नहीं करते थे बल्कि उनके बताये हुए मार्गपर सदा अग्रसर रहते थे। वे एक ईश्वरकी उपासना करते थे तथा गुरु नानक और उनके अन्यान्य उत्तराधिकारियोंको सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। वे लोग राजपूतोंकी तरह अपनेको 'सिंह' कहते तथा उन्हींकी भांति केश एवं दाढ़ी मूंछ रखते और अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित हो सच्चे वीरकी नाईं अपना जीवन बिताते थे। वे नीले रंगके वस्त्र पहनते थे। गुरुजीका खालसा, गुरुजीकी फतेह (विजय) उनके जातीय वाक्य थे।

गोविन्दसिंहने "गुरु मठ" नामकी एक शासन-पद्धति स्था-पित की। इसका अधिवेशन अमृतसरमें होता था। अनैक्यका

नाश करना, शत्रुओंके आक्रमणमें अटल रहना, सिक्ख समाजमें एकप्राणता तथा समवेदनाका प्रचार करना 'गुरुमठ' का अभिप्राय था।

गुरु गोविन्दसिंहने धीरे धीरे नवीन विषयोंका प्रचार करके सिक्खसमाजमें साधारणतन्त्रप्रणाली स्थापित कर दी। पहले तो सिक्ख लोग अलग रहकर धर्माचरणमें ही अपना समय बिताते थे परन्तु इस समय वे लोग साधारणतन्त्रमें मिलकर एकप्राण हो गये। गोविन्दसिंहके जीवनके एक साधनकी सिद्धि तो हुई पर दूसरा साधन असिद्ध ही रहा। उन्होंने मुसलमानोंको भी शिष्य बनाकर "सिंह" की उपाधि दी। पण्डित, मौलवी, ब्राह्मण, चाण्डाल सबको एक समाजमें संगठित किया पर सम्राट्की सेनाको ध्वंस नहीं कर सके। वे पिताके सामनेकी प्रतिज्ञा स्मरण करके शीघ्र ही अत्याचारी मुसलमानोंसे लड़नेके लिये तैयार हो गये। भारतवर्षके प्रत्येक भागमें मुगलोंका राज्य नहीं था। मुगल-साम्राज्यके स्थापनकर्त्ता बाबरशाहने बहुत दिनोंतक राज्य नहीं किया। उसका लड़का हुमायूँ पाठान वंशीय शेरशाहसे राजच्युत किया गया और सोलह वर्षतक वह इस अवस्थामें रहा। यद्यपि अकबरने अपनी प्रगाढ़ राजनीतिज्ञता एवं युद्धकुशलताके बलपर पचास वर्ष राज्य किया तथापि उसके लड़के सलीमने उसके साथ कठोर व्यवहार किया और बंगालके विद्रोहमें सम्मिलित हो गया। जहांगीर क्रूर तथा इन्द्रियलोलुप था। उसके प्रधान प्रधान कर्मचारी भी उसके

विरुद्ध हो गये थे। एक बार उसके प्रधान कर्मचारी महावत खांने उसे बन्दी बना लिया। शाहजहांने अपने पुत्रोंको आपसमें लड़ते देखा और स्वयं निठुर औरंगजेब द्वारा कैद किया गया। औरंगजेबकी धर्मान्धता और कुटिलता भारतवर्षके इतिहासमें प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने कठोर व्यवहार तथा अपनी विश्वास-घातकताके कारण सारे भारतको अपना शत्रु बना लिया। एक ओर राजसिंह और दुर्गादास स्वजाति-अपमानसे उत्तेजित होकर युद्धके लिये तैयार हुए, दूसरी ओर मुगलोंके कठोर शासनसे पीड़ित निस्तेज मरहट्ठोंमें शिवाजीने तेजस्विताका सञ्चार किया। उधर गोविन्दसिंह अपनी प्रतिभाके बल जाठोंको एकत्रित करके वहां एक नया राज्य स्थापित करनेकी चेष्टा करने लगे। गोविन्दसिंहने इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अपने शिष्योंको भिन्न भिन्न भागोंमें विभक्त कर दिया। उन्होंने अपने विश्वस्त शिष्योंमेंसे एक एकको प्रत्येक विभागका सेनापति बनाया। इसके अतिरिक्त गोविन्दसिंहने कुछ शिक्षित पाठान सेनाओंसे अपने दलकी वृद्धि की। शतद्रु और यमुनाके बीच पार्वत्य भाग-में तीन दुर्ग निर्मित किये गये। पार्वत्य प्रदेशमें सेनाओंको शिक्षित बनाने तथा वहांसे युद्ध करनेकी बड़ी सुविधा थी। इसी-से गोविन्दसिंहने इन दुर्गोंकी व्यवस्था की। इस प्रकार गोविन्द-सिंहने शीघ्र मुगलोंके साथ लड़नेका प्रबन्ध किया। वे धर्म-प्रचारकों तथा धर्मोपदेशकोंको भेजकर शिष्योंकी संख्या बढ़ाने लगे। इस समय उनकी युद्ध-कुशल सेना निरापद स्थानमें थी।

पहले तो मुगलोंके साथ युद्धमें गोविन्दसिंह कई जगह विजयी हुए परन्तु अन्तमें उन्हें पराजित होना पड़ा। गोविन्द-सिंहकी माता और उनके दो पुत्रोंको सरहिन्दके शासनकर्त्ताने पकड़ लिया। यह शासनकर्त्ता धर्मनिष्ठ मनुष्य था, अतः इस-ने उन लोगोंको प्राणदण्डकी सज़ा नहीं दी। उसके दीवानने उन लोगोंको बहुत कष्ट दिया और उन्हें अपना धर्म छोड़नेके लिये कहा पर वे राजी नहीं हुए। एक दिन गोविन्दसिंहके दोनों लड़के दरबारमें बैठे थे, नवाब उनकी आकृति एवं माधुरी मूर्त्ति-को देखकर बहुत संतुष्ट हुआ और उसने पूछा—"बच्चे! यदि मैं तुम्हें स्वतंत्र बना दूं तो तुम लोग क्या करोगे?" दोनों बालकोंने गम्भीर-भावसे उत्तर दिया—"मैं सिक्ख सेना एकत्रित करके उन्हें शस्त्र दूंगा और युद्ध करूंगा।" नवाबने कहा—"यदि युद्धमें पराजित हो जाओ।" अबकी बार बालकोंने गम्भीर एवं वीरताव्यञ्जक शब्दोंमें कहा—"फिर भी सेना एकत्रित करके आप लोगोंसे लड़ूंगा यदि हो सका तो आप लोगोंके प्राण लूंगा अथवा स्वयं मारा जाऊंगा।" उनके ये वाक्य सुनकर नवाब बहुत उत्तेजित हुआ। उसने उन्हें दीवानको समर्पण कर दिया। दीवानने उनके प्राण ले लिये।

गोविन्दसिंहकी माताने इसी शोकसे शरीर त्याग किया। इस घटनाको सुनकर गोविन्दसिंह बड़े ही दुःखी हुए पर अपने कर्त्तव्य-पथसे विचलित नहीं हुए। उनके शिष्योंने जो युद्ध-कुशलता दिखलाई उससे वे कुछ शान्त हुए और मुसल-

मानोंसे बदला लेनेकी चेष्टामें लगे। इस तेजस्वी सिक्ख गुरुकी तेजस्वितासे औरंगजेब आश्चर्यित हुआ और उसने उन्हें दिल्ली बुलाया। गोविन्दसिंहने उसकी बात न मानी और घृणाके साथ कहा—"मैं उसका विश्वास नहीं कर सकता। इस समय खालसा लोग उसके पूर्वकृत अपराधोंका दण्ड देंगे।" तत्पश्चात् उन्होंने नानक, अर्जुन और तेग़बहादुरकी शोचनीय दशाका वर्णन किया। मुगलोंने उनके पुत्रोंके साथ जो दुर्व्यवहार किया था उसका भी उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा—"इस समय मैं सांसारिक बन्धनोंसे अलग होकर स्थिरचित्तसे मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहा हूं। ईश्वरके अतिरिक्त मुझे किसीका भी भय नहीं है।" इस तरह उत्तर पानेपर भी औरङ्गजेबने उनसे मिलनेके लिये आग्रह किया। इस बार गोविन्दसिंह सहमत हो गये परन्तु उनसे साक्षात् होनेके पहले ही मुगल सम्राट्का देहान्त हो गया। औरङ्गजेबके उत्तराधिकारी बहादुरशाहने गोविन्दसिंहके प्रति बड़ी ही सज्जनता दिखलायी। गोविन्दसिंह बहुत दिनोंतक इस संसारमें रहकर अपनी असाधारण कृतकार्यताका परिचय नहीं दे सके। औरङ्गजेबकी मृत्युके साथ साथ उनकी भी आयु समाप्त हो गयी। गोविन्दसिंह जिस समय दक्षिणमें थे उस समय उनके हाथसे एक पाठान मारा गया। इसी पाठानके पुत्रोंने एक दिन गुप्त रीतिसे गोविन्दसिंहके शिविरमें आकर उनकी हत्या की। गोदावरी नदीके तटपर "नादर" नामक स्थानमें यह शोचनीय घटना हुई।

गोविन्दसिंह सिक्ख-समाजके जीवनदाता थे। उन्हींके समयसे सिक्ख लोग पराक्रमी समझे जाते हैं। गुरु नानक धर्म-सम्प्रदायके प्रवर्त्तक थे और गोविन्दसिंहने उस धर्म-सम्प्रदायमें एकप्राणता एवं स्वाधीनताका प्रचार किया। उनका उद्देश्य महान्, साधन गम्भीर, वीरत्व असाधारण एवं मानसिक स्थिरता अतुलनीय थी। उन्होंने जातीय जीवनको समझा था। उनका दृढ़ विश्वास था कि यदि सब लोग एक सूत्रमें न बांधे जायंगे तो निर्जीव भारतका उद्धार नहीं होगा। इसीसे उन्होंने हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, शूद्र सबको एक श्रेणीमें रक्खा और घमण्डके साथ औरङ्गजेबके पास लिखा—"तुम हिन्दूको मुसलमान बनाते हो और मैं मुसलमानको हिन्दू बनाता हूं। तुम अपनेको निरापद समझते हो परन्तु स्मरण रखना कि मेरी शिक्षासे गौरिया बाजको पृथ्वीपर गिरावेगा।" तेजस्वी सिक्ख वीरका यह वाक्य निष्फल नहीं हुआ। वास्तवमें गौरियाने बाजको पृथ्वीपर गिराया।

तरुणावस्थाहीमें गोविन्दसिंहकी मृत्यु हुई थी। यदि कुछ दिन वे और जीवित रहते तो अनेकों महान् कार्य्य करते। यदि महम्मद भागकर मदीना न जाता तो संसारके इतिहाससे उसका नाम उठ जाता। यदि गोविन्दसिंह अपने महामन्त्रका उपदेश न करते तो सिक्खोंका नाम इतिहाससे उठ जाता। गोविंदसिंहने छोटी उम्रमें थोड़े ही समयमें सिक्खसमाजमें जीवनीशक्ति एवं तेजस्विता प्रसारित की। इसीसे आजतक यह जाति जीवित
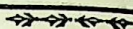
समझी जाती है और नवशेरा, रामनगर एवं चिलियानवालाके नाम अबतक इतिहासमें वर्त्तमान हैं। गोविन्दसिंहका नश्वर शरीर लुप्त हो गया परन्तु उनका यशरूपी शरीर अभीतक वर्त्तमान है। जनसमुदायसे सुशोभित नगर जब अरण्य रूपमें परिणत हो जायगा; शत्रुओंके न पहुंचने योग्य राज-प्रासाद जब नष्ट हो जायगा, जलपूर्ण नदियां जब जलरहित हो जायंगी तबतक गोविंदसिंहका पवित्र नाम इतिहासमें स्वर्णाङ्कित रहेगा।

सिक्खोंकी स्वाधीनता

अठारहवीं शताब्दीमें मुगल-साम्राज्यकी अधोगतिका प्रारम्भ हुआ। अनेकों राजा दिल्लीके सिंहासनपर बैठाये गये, उतारे गये तथा मार डाले गये। कर्मचारिगण राजाकी आज्ञाकी अवहेलना करके अपने इच्छानुसार काम करने लगे। पराक्रमी नादिरशाहके आक्रमणके पश्चात् मुगल सम्राट्की शोभायमान लीलाभूमि (देवानी खास और देवानी आम) श्मशानरूपमें परिणत हो गयी। तदुपरान्त अहमदशाह दुर्रानी साहसी अफ़गानोंकी एक सेना लेकर भारतवर्षमें आया। पानीपतके प्रसिद्ध मैदानमें मरहट्ठोंके साथ इनका युद्ध हुआ जिसमें मरहट्ठे हार गये। दिल्लीका सम्राट् राज्यच्युत होकर विहारमें चला गया। ऐसे भयानक विप्लवके समयमें सिक्खोंने अपनी तेजस्विताकी रक्षा की। गोविन्दसिंहने उन्हें जिस मन्त्रकी दीक्षा दी थी उससे वे तनिक भी नहीं विचले। उनके सेनापति साहसी और शासनकर्त्ता सुदक्ष थे इसी से वे लोग अपने अधिकारकी रक्षा कर सके। जो लोग शस्त्र-विद्या में चतुर और घुड़सवारीमें निपुण नहीं होते थे खालसा लोगोंमें उनका मान नहीं था। अतः प्रत्येक खालसाको शस्त्रविद्या एवं घुड़सवारीमें निपुणता प्राप्त करनी पड़ती थी। धीरे धीरे खालसा लोगोंके कई दल हो गए।

प्रत्येक दलका एक सरदार होता था और राज्यके किसी भागमें वे लोग स्वाधीनताके साथ रहते थे। इस प्रकार समस्त सिक्ख-साम्राज्य छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त हो गया। एक एक खण्ड "मिसिल" कहलाता था। प्रत्येक मिसिलके सरदार स्वाधीनताके साथ कार्य करने लगे। खालसा लोग कई भागोंमें विभक्त किये गए परन्तु उन लोगोंमें पहले सा भाव बना रहा। प्रति-वर्ष वे लोग अमृतसरके पवित्र मन्दिरमें जाते और अपनी उन्न-तिके साधनपर विचार करते थे।

अठारहवीं शताब्दीमें जिस समय अंग्रेज लोग दक्षिणमें फ्रां-सीसियोंकी प्रधानता लुप्त करना चाहते थे, एक बूढ़े मुसल-मान सैनिकने जिस समय मैसूरके सिंहासनपर अधिकार जमाकर सबके हृदयमें विस्मयका सञ्चार किया, उसी समय सिक्खोंके खण्ड-राज्यमें एक प्रतिभाशाली एवं कार्य्य-कुशल व्यक्ति आविर्भूत हुआ। इस महापुरुषके आविर्भावसे सिक्ख-समाज और भी बलिष्ठ हो गया। इस महापुरुषका नाम था रणजीतसिंह। महाराणा रणजीतसिंह असाधारण क्षमता-पन्न मनुष्य थे। रणजीतसिंहके पिता महासिंह एक मिसिलके अधिपति थे। १७८० ई० की नवम्बरको रणजीतसिंहका जन्म हुआ। महासिंह बड़े ही साहसी एवं रणकुशल मनुष्य थे। रणजीतसिंह पूर्ण रूपसे पिताके साहस तथा युद्ध-कुशलताके अधिकारी हुए। बालकपनमें ही वसन्त रोगसे उनकी एक आंख नष्ट हो गई। इसीसे वे "काना

रणजीत" के नामसे प्रसिद्ध हैं। महासिंहकी मृत्युके समय रणजीतसिंहको अवस्था केवल आठ वर्ष की थी।

यद्यपि रणजीतसिंहका शरीर सुन्दर नहीं था पर उनकी बुद्धि एवं उनका साहस और पराक्रम असाधारण था। वे अपने इन्हीं गुणोंके बलपर अपनी प्रधानता स्थापित कर सके। इस समय पंजाबमें दुर्रानी राजाओंका आधिपत्य था। उधर अंग्रेज लोग धीरे धीरे अपना अधिकार बढ़ाना चाहते थे। सिन्धिया और होलकर राजा धीरे धीरे बलसंग्रह करके अंग्रेजोंको दबाना चाहते थे। इसी समय रणजीतसिंहने अहमदशाह दुर्रानीके पौत्रकी सहायता करके पुरस्कारस्वरूप लाहौरका आधिपत्य प्राप्त कर लिया। धीरे धीरे सिक्ख-समाजमें रणजीतसिंहकी शक्ति बढ़ती गयी और सब सिक्ख उनके अधीन हो गये। पाठानोंने भारतवर्षमें हिन्दुओंका अनैक्य देखकर जिस चातुरीसे देववाञ्छनीय भूमिपर अधिकार प्राप्त किया यह इतिहासपाठकोंको भलीभांति मालूम है। महाराज रणजीतसिंहने पाठानोंको उचित शिक्षा देनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। मुसलमानोंने शठताके साथ भारतवर्षपर अधिकार प्राप्त किया था इसीसे सब खंड-राज्यके अधिपतियोंने इसके उद्धारकी चेष्टा की। उनकी यह चेष्टा कुछ अंशमें सफल हुई। उन लोगोंने अफगानोंको भगाकर मुलतानपर अधिकार प्राप्त किया। पश्चात् भारतके नन्दनकानन काश्मीरपर उन लोगोंने विजयपताका उड़ायी। काश्मीरपर अधिकार प्राप्त करते समय महाराज रणजीतसिंहके पुत्र खड़गसिंह सैनिक
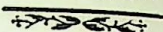
दलके अग्र भागमें थे। रणजीतसिंहके साहसी अश्वारोही एवं पैदल सिपाही दुर्गम पर्वतको पार करके काश्मीर पहुंचे। सिक्खोंके पराक्रमके सामने अफगान सेनापति जब्बरखांको हार माननी पड़ी। बहुत दिनोंके पश्चात् हिन्दुओंकी विजयपताकासे काश्मीर सुशोभित हुई। तदनन्तर रणजीतसिंह पेशावरपर अधिकार प्राप्त करनेकी चेष्टामें लगे। सन् १७१३ ई० का २३ मार्च भारतवर्षके लिये एक स्मरणीय दिन है। इसी दिन हिन्दू-लोग दृषद्वती नदीके तटपर पराजित हुए और भारतवर्षपर दूसरोंका आधिपत्य हुआ। तदनन्तर इसी तारीखको सिक्ख वीर विजयपताका स्थापन करनेके लिये अग्रसर हुए।

इसी दिन भारतवर्षके राजा लोग पाठानोंके शोणितसे पृथ्वी-राज और समरसिंहकी आत्माको तृप्त करनेके लिये तैयार हुए। महाराज रणजीतसिंह निर्भय होकर असीम साहसके साथ पाठानोंके राज्यमें घुस गये। अफगानिस्तानके प्रधान सरदार अजिमखांने बहुतसी सेनायें एकत्रित की थीं। वे सेनायें अफगानिस्तानके पार्वत्य प्रदेशमें पहुंचीं। १४ वीं मार्चको काबुल नदीके पार्श्ववर्त्ती नवशेराके निकट थेराई नामक स्थानमें इनकी रणजीतसिंहसे मुठभेड़ हुई। इस महासमरमें महावीर रणजीतसिंह अश्वारोहियोंके अग्रभागमें थे। लड़ाई छिड़ गयी। विशाल शरीरधारी अफगान वीर अटल पर्वतकी नाईं रण-जीतसिंहके आक्रमणको रोकने लगे। सारे दिन लड़ाई होती रही। किसीने विश्राम नहीं किया। दिन भर सिक्ख लोग अतुल

पराक्रमके साथ अफगानोंको नष्ट करनेकी चेष्टामें लगे रहे। धीरे धीरे रात्रि हो गयी। गम्भीर अन्धकारने गम्भीर भावसे युद्ध-स्थलको ढक लिया। अन्धकारमें रक्तकी नदी बह चली। ऐसी अवस्थामें भी रणजीतसिंह युद्धसे विमुख नहीं हुए। पहलेकी नाईं वे अपने अतुल पराक्रमके साथ शत्रुके नाशकी चेष्टामें लगे रहे। अन्तमें अफगान लोग पंजाब-केशरीके आघातोंको सहन नहीं कर सके। अन्धकारमें छिपकर वे लोग युद्ध-स्थलसे भाग गये। पञ्जाबकेशरीकी विजयपताका पाठानोंके अधिकृत जनपदमें मन्द वायुके वेगसे धीरे धीरे उड़कर उनके हृदयमें भय उत्पन्न करने लगी। उन्नीसवीं शताब्दीमें भारतवर्षके वीर पुरुषोंने इस तरहका पराक्रम दिखलाया। इस तरह सिक्खोंके पराक्रमके सामने पाठानोंको सिर नीचा करना पड़ा।

महाराज रणजीतसिंह दुर्जेय होकर पञ्जाबमें राज्य करने लगे। उनका राज्य उत्तरमें काश्मीर, पश्चिममें पेशावर, दक्षिणमें मुल्तान एवं पूरबमें शतद्रुतक फैला हुआ था। इनकी सेना अंग्रेज़ी प्रणालीपर शिक्षित बनायी गयी थी अतः सब जगह उनकी प्रशंसा होने लगी। रणजीतसिंहने अंग्रेजोंसे मित्रता कर ली थी अतः पराक्रमी होनेपर भी उन्होंने अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र-धारण करके मित्रताको कलंकित नहीं किया। रणजीतसिंहका जीवनलेखक लिखता है—"रणजीतसिंह यथार्थमें ही सिंह थे। वे सिंहको नाईं इहलोक परित्यागकर परलोकको गये।" इस

सिंहके सदृश पराक्रमी पुरुषके जीवनकी कुल घटनाओंका यहां उल्लेख करना सम्भव नहीं है। रणजीतसिंहका साहस, उनकी क्षमता और बुद्धि दूसरोंकी शिक्षासे परिस्फुटित नहीं हुई थी। स्वयम् इन गुणोंका विकास हुआ था। वे अपनी स्वाभाविक प्रतिभा एवं दक्षताके कारण पूजनीय समझे जाते हैं। अपने सैनिकोंको युद्ध-कुशल और सुशिक्षित बनाना उनका प्रधान कर्त्तव्य था। वे अपने कर्त्तव्यपथपर सदा दृढ़ रहते थे। फ़रीद खांने अकेले व्याघ्रको मारकर "शेरशाह" नाम धारण किया और वह अपने पराक्रमसे दिल्लीका सिंहासन प्राप्त कर सका। असाजिल नामक एक वीर पुरुषने असीम साहस दिखलाकर अपना नाम "शेर अफगान" रक्खा और अतुल लावण्यवती नूरजहांके साथ विवाह किया। यद्यपि इतिहास लेखकोंने इन दो वीर पुरुषोंके साहसपर विस्मय प्रकट किया है तोभी मैं रणजीतसिंहकी क्षमताके साथ इनकी तुलना नहीं कर सकता। रणजीतसिंह इनकी अपेक्षा कहीं अधिक साहस एवं क्षमता दिखलानेमें समर्थ हो सके। संसारमें विरले ही किसी वीरने इनके सदृश अश्वारोहण, शस्त्रचालन तथा व्यूहभेदनशक्ति दिखलायी है।

रणजीतसिंह वीर-लीला-भूमि भारतके यथार्थ एवं आदर्श वीर पुरुष थे। अठारहवीं शताब्दीमें उनके ऐसा वीर पुरुष कोई नहीं हुआ। जिस समय चक्रवर्त्ती राजा पृथ्वीराजने तिरौरीके पवित्र युद्ध-स्थलमें पाठानोंको हराकर भगा दिया और स्वयं

गरीयसी जन्मभूमिकी रक्षाके निमित्त पुण्यसलिला दूषद्वती नदीके तटपर सो गये उस समय विपक्षी भी उनकी वीरतापर विस्मित हुए। अतुल पराक्रमी प्रतापसिंहने जिस समय भारतके थर्म्मापली *पुण्यतीर्थ हल्दी घाटमें स्वदेशियोंकी प्रोच्छालित रक्त-धारा देखकर कहा, "इसी प्रकार शरीर त्यागनेके लिये राजपूत लोग जन्म-ग्रहण करते हैं" उस समय शत्रुओंने भी उनके आत्म-त्यागपर मुक्त कण्ठसे उनकी प्रशंसा की। जिस समय महा पराक्रमी शिवाजी पर्वत पर्वत घूमकर विजय-भेरीके गम्भीर स्वरसे चिर निद्रित भारतको जगा रहे थे उस समय दिल्ली सम्राट्ने भी उनकी देशभक्ति एवं वीरताकी प्रशंसा की। भारतभूमि किसी समय इन्हीं वीरोंकी महिमासे गौर-वान्वित समझी जाती थी। चारों दिशाएं इन वीरोंकी कीर्त्तिसे-गूंज रही थीं। शिवाजीकी मृत्युके साथ साथ यह कीर्त्ति-कहानी समाप्त नहीं हुई बल्कि उनके पराक्रमरूपी अग्निसे निकली हुई चिनगारियोंने मुसलमानोंको दग्ध कर दिया। शिवाजीके पश्चात् गुरु गोविन्दसिंहके महा मन्त्रसे सञ्जीवित रणजीत-सिंहने नया राज्य स्थापित करके वीर महिमा प्रसारित की।

---

* यह स्थान एथेन्समें है। यहां एक भीषण युद्ध हुआ था। ग्रीसके कुछ मनुष्य स्वदेशके गौरवकी रक्षाके निमित्त दारापुसकी बड़ी सेनासे यहींपर लड़े थे।

सिक्ख राज्यका पतन

पञ्जाबकेशरीकी मृत्युके साथ साथ सिक्खोंकी स्वाधीनता नष्ट हो गयी। गुरु गोविन्दसिंहके महामन्त्रसे दीक्षित एवं रणजीतसिंहके शासनसे परिचालित इस महाजातिके शोचनीय परिणामकी कुछ बातें यहाँ संक्षेपमें लिखी जायंगी। रणजीतसिंहकी मृत्युके पश्चात् दरबारियोंमें अनैक्य हो जानेके कारण राज्यका काम ठीकसे नहीं चल सका। जहां तहां नर-हत्या होने लगी। एक एक करके कई राजा लाहौरकी गद्दीपर बैठाये गये और उतार दिये गये। अन्तमें महाराज रणजीतसिंहकी महिषी महारानी झिन्दन अपने पुत्र दलीपसिंहके नामपर राज्य करने लगी। इसी समय सिक्खोंको अंग्रेजोंसे लड़ना पड़ा।

अंग्रेजी सैनिकोंकी चतुरता एवं अपने सैनिकोंकी विश्वासघातकताके कारण सिक्खोंको हार माननी पड़ी। आजतक भारतका सच्चा इतिहास नहीं लिखा गया है। विदेशी इतिहासलेखकोंने भारतवर्षके इतिहासको कलंकित कर दिया है। विदेशियोंमें भी दो एक इतिहासलेखकोंने पक्षपातरहित घटनाका उल्लेख किया है। यदि इस तरहके उदार इतिहासलेखक इतिहास लिखें तो वे निस्संकोच-भावसे कहेंगे कि यदि देशद्रोही राजा लालसिंह और सरदार तेजसिंह गुप्तरीतिसे कप्तान लारेन्स और कप्तान निकलसनके साथ षड्यन्त्रमें सम्मिलित न होते तो

रणजीतसिंहके खालसा वीर पहली ही लड़ाईमें अंग्रेजोंसे पराजित नहीं होते।

इस युद्धके पश्चात् गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिञ्जने लाहौर दरबारके साथ सन्धि कर ली। उस समय महाराज दलीपसिंह नाबालिग थे। सरकार उनका संरक्षक नियत हुई। जबतक दलीपसिंह बालिग न हो जायँ तबतक राज्यसम्बन्धी कार्य सम्पादन करनेके लिये लाहौर दरबारके कुछ चुने मनुष्योंकी एक समिति संगठित की गयी। ब्रिटिश रेजिडेन्ट इस समितिका अध्यक्ष बनाया गया। एक प्रकारसे ब्रिटिश गवर्नमेन्टने पंजाबको अपने अधिकारमें कर लिया। इस सन्धिके पश्चात् अंग्रेज लोग धीरे धीरे पंजाबमें अपना आधिपत्य बढ़ाने लगे। रणजीतसिंहकी पुण्य-भूमिके प्रति अंग्रेजोंकी भोगलालसामयी दृष्टि स्थिर होती गयी। दलीपकी माता बड़ी तेजस्विनी थी। उसका राज्य दूसरोंसे पददलित किया जाता है, समुद्र पारसे विदेशिगण आकर उसके राज्यमें हुकूमत कर रहे हैं, इन्हें वह सहन नहीं कर सकी। वह समझ गयी कि अंग्रेज लोग शीघ्र ही पंजाबको अपने राज्यमें मिला लेंगे। उसने देखा कि राज्यसम्बन्धी सभी काम अंग्रेज लोगोंने अपने हाथमें ले लिया है। यहांतक कि उसका प्राणप्रिय पुत्र भी उनके हाथकी कठपुतली बन गया था।

विदेशियोंके इस दुस्साहससे महारानीको मार्मिक कष्ट हुआ। कामिनीके कोमल हृदयपर इससे बड़ा आघात पहुंचा। ब्रिटिश

रेजिडेन्ट हेनरी लारेन्सने इस तेजस्विनी स्त्रीको लाहौरसे हटा-कर शेखपुर नामक निर्जन स्थानमें भेजवा दिया। अंग्रेज इति-हास-लेखकोंने लिखा है कि झिन्दन गुप्तरीतिसे अंग्रेजोंके विरुद्ध षड्यन्त्र रच रही थी इसीसे उसे यह सजा मिली। दण्ड देनेके पूर्व अपराधोंका विचार किया जाना चाहिए था पर अंग्रेजोंने ऐसा नहीं किया। अंग्रेज रेजिडेन्टने बिना कुछ विचारे केवल सन्देहपर दलीपसिंहकी माताको शेखपुर भेज दिया। महारानी झिन्दन बहुत दिनोंतक वहां भी नहीं रह सकी। दूसरे रेजिडेन्ट-ने उसे पंजाबसे बाहर निकाल दिया। अप्राप्तवयस्क दलीप-सिंह रेजिडेन्टके अधिकारमें थे। अतः फ्रेडरिक (रेजिडेन्ट) की अभीष्टसिद्धिमें विलम्ब नहीं हुआ।

शीघ्र ही महारानी झिन्दनकी निष्काशनलिपि दलीपसिंहके नामयुक्त मोहरसे सुशोभित की गयी। एक कर्मचारी उसे लेकर दो ब्रिटिश सैनिकोंके साथ शेखपुर पहुंचा। महारानी झिन्दनने पुत्रके नाम युक्त निष्काशन-दण्ड-लिपिके सामने सिर झुकाया। वह अटल भावसे भाग्यपर संतोष करती हुई सदाके लिये पंजाब-से चली गयी। वह इन पांचों नदियोंको अधिष्ठात्री देवियोंकी भांति समझती थी। आज उनका दर्शन भी दुर्लभ हो गया। पहले लोग उसे फिरोजपुर ले गये। फिर काशी ले गये। महारानी झिन्दन हिन्दुओंके आराध्य क्षेत्र काशीमें मेजर जर्ज्जम्याक-ग्रेगर नामक एक अंग्रेज सैनिककी संरक्षकतामें रहने लगी। इस तरह रणजीतसिंहकी महिषी झिन्दनके निर्वासनका कार्य

समाप्त हुआ। पंजाबियोंने धीर जलधिकी भांति गम्भीर भावसे अपनी अधिष्ठात्री देवीके शोचनीय निर्वासनको देखा। उनके नेत्रोंसे आंसुओंके दो बूंद भी न गिरे। जिस अग्निसे उनका हृदय जल रहा था उसकी एक चिनगारीने भी निकलकर अपना प्रभाव नहीं दिखलाया। मानों पंजाबनिवासी जड़तासे ढक गये थे। परन्तु यह सच्ची निर्जीविता नहीं थी। दलीपसिंह बाल्यक्रीड़ाके आनन्दमें माताकी शोचनीय अवस्थाका अनुभव नहीं कर सके। भविष्य जीवन एवं सांसारिक तत्त्वोंसे अनभिज्ञ बालक प्रसन्नचित्त होकर रेजिडेन्टके आज्ञानुसार कार्य्य करता था। पंजाब बहुत दिनोंतक निश्चेष्ट नहीं रहा। यह अग्नि उसके हृदयमें प्रवेश कर गई। गुरु गोविन्दसिंहने पंजाबमें जो तेज प्रसारित किया था उसकी अलौकिक शक्तिसे यह जड़ता शीघ्र ही नष्ट हो गयी। महारानी झिन्दनके निर्वासनके कुछ ही दिन पश्चात् पंजाबनिवासी जातीय जीवनकी महिमासे उत्तेजित होकर सरकारके विरुद्ध युद्धके लिये तैयार हो गये।

महारानी झिन्दनके निर्वासनके अतिरिक्त अन्यान्य दो कारणोंसे सिक्खोंको विवश होकर अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र धारण करना पड़ा। पहला कारण तो यह है कि अंग्रेज़ लोग दलीपसिंहके विवाहका दिन निश्चय करना नहीं चाहते थे और दूसरा कारण यह है कि उन लोगोंने वृद्ध सरदार क्षत्रसिंहका अपमान किया था। सरदार क्षत्रसिंह हजाराके शासक थे। ये वृद्ध सरदार बड़े अनुभवी थे। इसीसे सिक्खसमाजमें इनका बड़ा

मान था। इनका लड़का शेरसिंह उदारप्रकृति एवं युद्धकुशल होनेके कारण सेनापतिके पदपर प्रतिष्ठित किया गया था। छत्रसिंहकी लड़कीसे महाराज दलीपसिंहके विवाहकी बात थी। मेज़र एडवर्ड नामक एक अंग्रेज़ सैनिकने विवाहके सम्बन्धमें लाहौरके रेजिडेन्टके पास लिखा, "इस समय सर्वसाधारण समझते थे कि अंग्रेजों और सिक्खोंमें विरोध है यदि ऐसे अवसरपर हम लोग दलीपसिंहके विवाहमें सहायता देंगे तो लोग यही समझेंगे कि अंग्रेज लोग उनसे मेल करना चाहते हैं।" यह पत्र पाकर रेजिडेन्टने दरबारियोंसे सलाह ली। उनके भावसे मालूम हुआ कि वे उन लोगोंके सम्मानकी रक्षा करना चाहते थे। रेजिडेन्ट इस चतुरतासे कार्य्य करता था कि दरबारके सभासद उसके भीतरी भावको नहीं समझ सकें। पश्चात् रेजिडेन्टने सरकारके पास लिखा, "यह विवाह सम्बन्ध हो जानेपर हम लोगोंके सिरपर राज्यका इतना झंझट नहीं रहेगा। कन्याका पिता दरबारका एक सभासद है। इसीसे मुझे इस विवाहमें आपत्ति नहीं है।" सरलहृदय मनुष्य इस पत्रको देखकर सुखी होंगे पर जो राजनीतिके तत्वोंको जानते हैं वे शीघ्र ही समझ जायंगे कि दलीपसिंह और शेरसिंहमें आत्मीयता हो यह अंग्रेजोंकी राय नहीं थी। बिना अंग्रेजोंकी रायके दलीपसिंहका विवाह होना असंभव था। इसीसे कहा जा सकता है कि पंजाब सिक्खोंके हाथसे चला जायगा। जो आज रणजीतसिंहका राज्य कहा जाता है कल वही ब्रिटिश

भाव, ब्रिटिश आचार और ब्रिटिश नीतिकी क्रीड़ाभूमि बन जायगा।

उधर रेजिडेन्टकी आज्ञासे छत्रसिंहकी जागीर जप्त कर ली गयी। वृद्ध सरदारके अपमान एवं दुरवस्थाका हद्द हो गया। स्वदेशकी यह सोचनीय दशा तथा वृद्ध पिताका ऐसा अपमान देखकर महा पराक्रमी सेनापति शेरसिंहके हृदयपर बड़ा आघात पहुंचा। उन्होंने गोविन्दसिंहके मन्त्रसे अभिमन्त्रित रक्तको कलंकित नहीं किया। शीघ्र ही युद्धकी तैयारी करने लगे। इसीसे शेरसिंहके साथ अंग्रेजोंकी पहली लड़ाई रामनगरमें हुई। यहांपर अंग्रेज लोग हार गए। तदनन्तर शेरसिंह चिलियानवाला गये। १८४६ ई० की ४३ वीं जनवरीको घोर युद्ध हुआ। इस दिन वीर श्रेष्ठ शेरसिंहने असीम साहसके साथ चिलियानवालाके मैदानमें ब्रिटिश सेनापति गफको पराजित किया। इसी दिन ब्रिटिश पताका सिक्खोंके हस्तगत हुई। ब्रिटिश शस्त्र सिक्खोंके हाथमें आया, ब्रिटिश सैनिक सिक्खोंके पराक्रमसे भयभीत होकर भाग गये। इसी दिन सेनापति शेरसिंहने विजयी होकर अपनी तोपकी आवाज़से चारों दिशाओंको कम्पित कर दिया। जिन अंग्रेजोंने असामान्य युद्धवीर नेपोलियनके घमण्डको चूर चूर कर दिया था आज उन्हें एक भारतवर्षीय वीर पुरुषकी तेजस्विता, साहस एवं वीरताके सामने सिर नवाना पड़ा। ऐसे ही वीर पुरुषोंकी तेजस्विताके कारण भारतवर्षका इतिहास बहुत दिनोंतक प्रसिद्ध समझा जायगा। यदि कोई
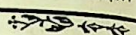
ग्रीसके युद्धोंके साथ भारतवर्षकी तुलना करे, यदि कोई वीरेन्द्र समाजमें प्रसिद्ध ग्रीस सेनापतियोंका विवरण पढ़े और उसकी तुलना भारतवर्षके साथ करे तो उसे निस्संकोच भावसे कहना पड़ेगा कि हल्दीघाट भारतवर्षका थर्मापली है और चिलियानवाला भारतवर्षका माराथन है। मेवाड़के प्रतापसिंह भारतके लिउनिडिस एवं वीरशिरोमणि शेरसिंह भारतके मिलटाइडिस थे। यदि कोई वीर वीरेन्द्र समाजमें पूजे जाने योग्य है, यदि कोई पराक्रमी महापुरुष अपने प्रगाढ़-देश-प्रेमके कारण स्वर्गमें भी देवताओंके बीच अप्सराओंके वीणानिन्दित मधुर स्वरसे आदर किये जाने योग्य है तो निस्सन्देह यह कहना पड़ेगा कि लिउनिडिस और मिलटाइडिस तथा प्रतापसिंह और शेरसिंह ही हैं। चिलियानवाला उन्नीसवीं शताब्दीका एक पवित्र युद्ध-स्थल है। सिक्खोंके इस दूसरे युद्धकी पवित्र गौरव कहानी भारतवर्षके इतिहाससे कभी भी लुप्त नहीं होगी।

चिलियानवालाके पश्चात् गुजरातकी लड़ाईमें सिक्ख वीर पराजित हुए। यद्यपि सिक्ख वीर हार गये पर उनकी तेजस्विता नष्ट नहीं हुई। शस्त्रहीन सिक्ख गुरुने ब्रिटिश सेनापतिसे गम्भीर भावसे कहा—"अंग्रेजोंके अत्याचारके कारण हमलोगोंने उनके विरुद्ध शस्त्र उठाया था। हमलोगोंने स्वदेशके लिये यथाशक्ति लड़ाई की। इस समय हम लोगोंकी अवस्था अच्छी नहीं है। हमारे सभी सैनिक सच्चे वीरकी भांति सदाके लिये वीर-शय्यापर सो गये। इस समय हम लोगोंके पास अस्त्र
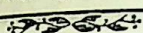
शस्त्र भी नहीं हैं। इन्हीं अभावोंके कारण हम लोग आपके हाथ-में पड़े हैं। हम लोगोंको इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं है। शक्ति होनेपर हम लोग फिर भी ऐसी ही वीरता दिखलावेंगे।" पश्चात् सब वीरोंने अश्रुपूर्णनेत्र हो गम्भीर स्वरमें कहा, "आज ही वास्तवमें रणजीत सिंहकी मृत्यु हुई है। शोक है कि इन तेजस्वी वीरोंकी सम्मान-रक्षा नहीं की गयी। उन्नीसवीं शताब्दीके सभ्यताश्रोतमें वीरताका सम्मान एवं आदर डूब गया।

युद्धके पश्चात् लाहौरपर अधिकार प्राप्त करनेकी इच्छासे लार्ड डालहौसीने इलियट साहबको प्रतिनिधि स्वरूप लाहौर दरबारमें भेजा। सर फ्रेडरिकका कार्य समाप्त हो गया इससे हेनरी लारेन्स दोबारा रेजिडेन्ट बनाये गये। इलियट साहब और रेजिडेन्ट दोनोंने मिलकर अनुरोध किया कि दलीपसिंह अपना राज्य कंपनीको दे देवें। उसके दूसरे दिन २९ वीं मार्च-को दरबारकी दूसरी बैठक हुई। आज दलीपसिंह पिताके राज्य-सिंहासनपर अन्तिम बार बैठे। निकट ही एक वृहत् श्रेणीवद्ध ब्रिटिश सैन्य सशस्त्र खड़ी थी। दीवान दीनानाथने इस कुविचारके निवारणकी पूर्ण चेष्टा की, सन्धिका नियम दिखलाया। अंग्रेजोंने सिक्खोंकी स्वाधीनताकी रक्षाकी प्रतिज्ञा की थी। ऐसे कितने कागज उन्होंने दिखलाये पर इसका कुछ भी फल नहीं हुआ। लार्ड डलहौसीकी घोषणा पढ़नेके पश्चात् उस दिनके दरबारकी समाप्ति हुई। इसी तरह रणजीतसिंहके दुर्गमें ब्रिटिश-पताका उड़ायी गयी।

दुर्गमें तोपकी ध्वनि होने लगी। रणजीतसिंहके वाक्य सफल हुए। डलहौसीकी नीतिसे भारतके मानचित्रमें पंजाब भी लाल रंगका हो गया। महाराज[१] दलीपसिंह पंजाबसे हटा दिये गये। फतेहगढ़ उनका निवासस्थान हुआ। महाराज दलीपसिंह की जो खास सम्पत्ति थी उसे लेनेमें भी अंग्रेजोंने संकोच नहीं किया। लोकप्रसिद्ध कोहनूर हीरा जिसे महाराज रणजीतसिंह-ने बड़े यत्नसे प्राप्त किया था और उसे अपने बांहमें पहनते थे अंग्रेजोंने पांच जूती[२] मूल्य देकर दलीपसिंहसे छीन लिया। पञ्जाबपर अधिकार प्राप्त करनेके पश्चात् अंग्रेजोंने दलीपसिंह और उनके आश्रितोंको चार लाखसे पांच लाखतक प्रति वर्ष खर्च करनेकी आज्ञा दी। परन्तु पहले उन्हें केवल एक लाख बीस हजार रुपये मिले। सात वर्षके पश्चात् यह बढ़ा दिया गया और अब उन्हें डेढ़ लाख रुपये मिलने लगे। १८५८ ई० के पश्चात् उन्हें ढाई लाख रुपये मिलने लगे।

तदनन्तर १० हजार प्रतिवर्ष घटाया जाने लगा और यह एक

---

(१) एक बार रणजीतसिंह भारतका मानचित्र देख रहे थे। उस समय किसी सिक्खने चित्रके लाल अंशके विषयमें पूछा, रणजीतसिंहने कहा, "अंग्रेजोंका अधिकृत स्थान लाल रङ्गका है" पश्चात् फिर बोले "सब लाल हो जायगा अर्थात् सब अंग्रेजोंके अधिकारमें चला जायगा।

(२) एक बार ब्रिटिश राज्य-प्रतिनिधिने रणजीतसिंहसे कोहनूरका मूल्य पूछा, रणजीतसिंहने कहा, "इसकी कीमत पांच जूती" अर्थात् यह बलसे ही प्राप्त हो सकता है।

लाख अस्सी हजारसे भी कम हो गया। यदि न्यायकी दृष्टिसे देखा जाय तो निस्सन्देह लार्ड डलहौसीने स्थायी सन्धिको तोड़कर पंजाबपर अधिकार प्राप्त किया। वीरश्रेष्ठ शेरसिंहने पिताके अपमानसे दुःखी होकर अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र धारण किया। लाहौर दरबारके सदस्य इस युद्धमें सम्मिलित नहीं थे। शासनसमितिके आठ सदस्योंमें छः तो अंग्रेजोंके पक्षमें थे, एक किसीकी ओर न था और एकके विषयमें सन्देह है। लार्ड डलहौसीने उनके विषयमें कहा, यदि दलीपसिंहको राजच्युत करनेमें वे लोग सहमत न होंगे और इस कागजपर हस्ताक्षर न करेंगे तो उनकी सारी सम्पत्ति जप्त कर ली जायगी।

इस प्रकार अत्याचारके भयसे सदस्योंने स्वदेशके स्वाधीनतानाशक पत्रपर हस्ताक्षर किया। इधर ब्रिटिश रेजिडेन्ट लाहौर दरबारका अध्यक्ष था। दलीपसिंह अप्राप्तवयस्क बालक था जिसके संरक्षक अंग्रेज लोग थे और उसकी माता काशीमें थी। शासन सम्बन्धी सभी काम अंग्रेजोंके इच्छानुसार होते थे। तब किस अपराधसे दलीपसिंह राज्यभ्रष्ट किया गया? किस अपराधसे उसकी पैत्रिक सम्पत्ति छीनो गयी? सहस्रों वर्ष बीते एक बार दिग्विजयी सिकन्दरने पंजाबके राजा पुरुको हराया पर शत्रुका साहस और पराक्रम देखकर वह बहुत संतुष्ट हुआ और राज्य लौटाकर उनसे मित्रता कर ली। उन्नीसवीं शताब्दीमें सभ्यदेश निवासी एक सुशिक्षित राजपुरुषने अपने अधीनस्थ एक निर्दोष एवं सरल स्वभाववाले बालकको
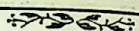
राजच्युतकर वीरधर्मको कलंकित किया। समयकी कैसी अपूर्व गति है। ज्ञान और धर्मकी कैसी अपूर्व उन्नति है।

राज्यच्युत होनेके समय दलीपसिंहकी अवस्था केवल ग्यारह वर्षकी थी। उस समय वे एक अंग्रेजके अधीन शिक्षा ग्रहण करते थे। १८५३ ई० में ईसाई धर्मके अनुसार उनकी दीक्षा हुई थी। इसके एक वर्ष पश्चात् वे इङ्गलैण्ड गये। महारानी झिन्दनकी क्या दशा हुई ? जिनके निष्काशनसे खाल्सा सैन्य उन्मत्त हो रही थी। उनकी अवस्थामें आज बहुत परिवर्त्तन हो गया। वह भी भग्नचित्त, अन्धी होकर वृद्धावस्थामें इङ्गलैण्ड पहुंची। १८६३ ई० में प्राणाधिक पुत्रके निकट अज्ञात स्थानमें राज्यभ्रष्ट रणजीतसिंहकी स्त्रीकी जीवन-लीला समाप्त हुई। सिक्ख-राज्यके अवस्थान्तरकी बात इसी तरह है। आदिगुरु नानकने सरलता एवं कर्त्तव्यपरायणताके बलधर्म सम्प्रदाय स्थापित किया, गोविन्दसिंहने अपने योग बलसे इसमें जीवनी शक्ति दी एवं रणजीतसिंहने राज्य स्थापित करके अपने पराक्रमसे सबको चकित कर दिया, वह राज्य आज दूसरेके हाथमें चला गया। पंजाबकेशरीकी पांचों नदियां आज अंग्रेजोंके अधिकारमें हैं। देववाञ्छनीय कोहनूर आज ब्रिटिश साम्राज्यके सर्वश्रेष्ठ रत्नोंमें गिना जाता है। समयकी प्रबल धाराने उस गौरव और उस महत्वको धो दिया। महाराज रणजीतसिंहने मुसलमानोंको परास्त करके जो राज्य स्थापित किया था वह राज्य आज भी वर्तमान है। जिन नदियोंके तटपर इनकी विजयपताका

फहराती थी वे नदियां आज भी अविराम गतिसे प्रवाहित हो रही हैं पर अब वह दृश्य नहीं है। बहुत दिन हुए समयके अनन्त स्रोतके साथ वे दृश्य भी अदृश्य हो गये। परन्तु सहृदय मनुष्योंकी स्मृतिसे एवं इतिहासके पन्नोंसे सिक्खोंकी वीरता एवं महाप्राणताकी कहानी लुप्त नहीं होगी। यदि भारत महासागरके अनन्त जलमें भारतवर्ष निमग्न हो जाय, हिमालय पर्वत गिर पड़े और भारतवर्ष चूर चूर हो जाय तो भी सिक्खोंकी अनन्त कीर्त्ति लुप्त नहीं होगी। पृथ्वीके सहृदय-समाजमें गुरु गोविन्दसिंह, रणजीतसिंह एवं शेरसिंहका यशोगान होता रहेगा।

———

फूलासिंह

सन् १८०९ ई० में जिस समय सर चार्ल्स मेटकाफ अमृतसरमें रहते थे, अंग्रेजी सेना अकटर लोनीके अधीन एकत्रित होकर गवर्नर जनरल लार्ड मिन्टोकी आज्ञासे महाराणा रणजीतसिंहके साथ सन्धि करनेकी चेष्टा करती थी उस समय एक साहसी युवकने निर्भय होकर तलवार हाथमें ली और अपने कुछ अनुचरोंके साथ पंजाबकेशरीके निकट जाकर गम्भीर स्वरमें बोला—"विदेशी अंग्रेज हमारे राज्यपर अधिकार जमाना चाहते हैं। मैंने उन लोगोंपर आक्रमण किया पर सफलता नहीं हुई। उन लोगोंने मेरे अनुचरोंके साथ दुर्व्यवहार किया है। यदि आप इसी समय उन्हें उचित दण्ड नहीं देंगे तो इसी तलवारसे आपका सिर काट डालूंगा।"

रणजीतसिंह युवकके मुखसे अकस्मात् ऐसी बात सुनकर विस्मित हुए। आश्चर्यके साथ उन्होंने युवककी ओर देखा तो उसकी निर्भय मूर्त्ति एवं विस्फारित दृष्टिने उसके दृढ़ प्रतिज्ञ होनेका परिचय दिया। असमयमें इस अपूर्व दृश्यको देखकर पंजाबके अधीश्वर विचलित नहीं हुए। धीरताकी सीमाको उल्लंघन करके उन्होंने अपनी चपलता नहीं दिखलायी। स्नेहके साथ वे गम्भीर स्वरमें बोले,—"युवक ! मैं तुम्हारे साहससे बहुतही प्रसन्न हूं। अंग्रेजदूत मेरा मित्र है वह कोई अनिष्ट नहीं करेगा, मेरा सिर तुम्हारे सामने है यदि इच्छा हो तो काट डालो।"

महाराणा रणजीतसिंहके मुखसे स्नेहभरी बातें सुनकर युवकका उत्तेजित हृदय कुछ शान्त हुआ। युवकने अब अपनी उद्धत प्रकृति छोड़ दी और उसने अपना सिर नीचा कर लिया। रणजीतसिंह उससे बहुत सन्तुष्ट हुए। पंजाबकेशरीने उसे एक घोड़ा और कुछ स्वर्ण मुद्रा देकर पुरस्कृत किया तथा उसके अनुचरोंको भी कुछ द्रव्य दिया। युवक धीर भावसे महाराजका दिया हुआ पुरस्कार लेकर चला गया।

इस तेजस्वी युवकका नाम फूलासिंह था। सिक्ख गुरु गोविन्दसिंहने 'अकाली' नामका एक सम्प्रदाय स्थापित किया था। इसी सम्प्रदायका नेता था फूलासिंह। अकाली सम्प्रदायके सभी अनुयायी नीले रंगका वस्त्र पहनते थे। इनमें अटल साहस, अजेय पराक्रम एवं आलस्यरहित कर्त्तव्यपालनकी शक्ति थी। शत्रु-सैन्य-को नष्ट करने तथा उनके दुर्गपर अधिकार जमानेमें इन लोगों-ने कैसा पराक्रम दिखलाया इसे इतिहास लेखक बड़ी प्रसन्नताके साथ वर्णन करेंगे। ये दुर्बल तथा गरीबोंके परम मित्र थे और अत्याचारी धनियोंके परम शत्रु थे। कर्त्तव्य-पालनके समय ये अपने प्राणको भी तुच्छ समझते थे। गुरुगोविन्दसिंहने इसी सम्प्रदायके बलपर औरंगजेबके विरुद्ध शस्त्र धारण किया। उन्नीसवीं शताब्दीमें इसी दलके नेता फूलासिंहने इतिहासमें वर्णन किये जाने योग्य वीरता, साहस एवं कर्त्तव्य-बुद्धि दिखलायी। जिस दिन फूलासिंहने अपने महाराज रणजीतसिंहके सामने अपने असाधारण साहस एवं तेजस्विताका परिचय

दिया उसी दिनसे अकालियोंकी उद्देशसिद्धिका संचार होने लगा और उसी दिनसे इस सम्प्रदायवाले उसे अपना नेता समझने लगे। धीरे धीरे उसके अधीनस्थ अकालियोंकी संख्या बढ़ाने लगी, कुछ समयके ही पश्चात् चार सौ अकाली सदा उनकी आज्ञानुसार कार्य करनेके लिये तत्पर रहने लगे। इन्हीं लोगोंकी सहायतासे फूलासिंहने बहुत साधन एकत्रित कर लिये। निराश्रय एवं दुःखियोंकी रक्षा उसका प्रधान कर्त्तव्य था। वह सदा सब जगह अन्तःकरणसे इसी कर्त्तव्य-पालनकी चेष्टामें रहता था। जहां कहीं कोई निर्धन, निराश्रय तथा पीड़ित व्यक्ति निरन्तर दुःखाग्निसे दग्ध होता था, फूलासिंह वहीं आविर्भूत होता था। जहां कहीं कोई धनी मनुष्य विलास-तरंगमें गोते लगाता हुआ धन-वृद्धिका सुख-स्वप्न देखता था फूलासिंह उसके धन-ग्रहणकी चेष्टामें लगा रहता था। यदि कोई निर्बल निस्सहाय एवं आश्रयहीन व्यक्ति अपनी झोपड़ीमें हृदयकी प्रचंड दुःखाग्निके कारण आंसू बहाता था तो फूलासिंह अवश्य ही वहां उपस्थित होकर उसे शान्ति देता था।

फूलासिंहसम्बन्धी सभी बातें पंजाबकेशरी रणजीतसिंहके कानोंतक पहुंचीं। रणजीतसिंहने उसे बुलाया और पहलेकी नाईं स्नेहपूर्वक उसे दूसरेकी सम्पत्ति ग्रहण करनेसे निषेध किया। फूलासिंहने अबकी बार उनकी आज्ञा नहीं मानी। रणजीतसिंहने उन्हें बहुत सा धन देकर तथा शान्तिमय जीवनकी श्रेष्ठता दीखलाकर उन्हें राजी करना चाहा परन्तु उनकी

सारी चेष्टा निष्फल हुई। उनके परामर्श, पुरस्कार एवं वाक्य-चातुरीकी मोहनीशक्तिको परास्त होना पड़ा। फूलासिंहको वे अपने वशमें नहीं कर सके। फूलासिंह अचल पर्वतकी नाईं अपने साधनपर दृढ़ रहा। पहलेकी नाईं विपन्नोंका उद्धार करने, दरिद्रोंके दुःख छुड़ाने तथा उद्धतप्रकृति धनियोंके घमंडको नष्ट करनेमें लगा रहा। इस समय फूलासिंहके दलमें चार पांच हजार मनुष्य थे। ये लोग अपने नेताके आज्ञापालन करनेके लिये सदा तत्पर रहते थे। महाराणा रणजीतसिंह भली भांति समझते थे कि फूलासिंहको भय दिखलानेका कुछ भी फल नहीं होगा। वे जानते थे कि स्नेहयुक्त धीर भावसे अनेकों प्रलोभन दिये जायं तो फूलासिंह वशमें किया जा सकता है। पहले तो रणजीतसिंहने फूलासिंहके विरुद्ध एक सेना भेजी थी पर अन्तमें उन्हें इसी उपायका अवलम्बन करना पड़ा। इस समय उनकी इच्छा फलवती हुई। फूलासिंह पंजाबकेशरीका अनुगामी बन गया और कुछ ही कालमें धीरे धीरे उनका प्रीतिपात्र बन गया।

इस समय महाराणा रणजीतसिंहकी शक्ति बढ़ गयी। इस समय उन्होंने फूलासिंहके साहस एवं पराक्रमके आधारपर अनेक स्थानोंपर अधिकार जमा लिया। फूलासिंहके दलके एक मनुष्यके साहसके बल उन्होंने मुल्तानपर अधिकार जमा लिया। फूलासिंहने स्वयं असाधारण साहस दिखलाकर भारतके नन्दन-कानन काश्मीरको हस्तगत कर लिया। महाराज रण-

जीतसिंहने जिस समय पेशावरपर अधिकार प्राप्त करनेकी चेष्टा-से पञ्जाबके हिन्दू राजाओंकी हिन्दू-सेना एकत्रित की और नव-शेराके युद्ध-स्थलमें वे अफगानोंके विरुद्ध खड़े हुए उस समय फूलासिंहने भली भांति अपने साहस एवं वीरताका परिचय दिया। पेशावर अफगानोंके अधिकारमें था। काबुलके प्रधान-मन्त्री महम्मद आज़िम खां पराक्रमी सेना लेकर पञ्जाबकेशरीके विरुद्ध खड़े हुए। अटक और पेशावरके बीच नवशेराके निकट करोई नामक स्थानमें पराक्रमी अफगान और युद्ध-कुशल सिक्ख वीर अपनी अपनी प्रधानता दिखलानेके लिये एक दूसरेसे भिड़ गये। इस युद्धमें सिक्ख वीर पहले तो कुछ विचलित हुए, थोड़ी देरके लिये यह मालूम हो गया कि अफगानोंको जीत हुई, रणजीतसिंहके सेनापति अफगानोंके आक्रमणसे निरस्त्र होकर भाग चले। इस विपत्तिके समय रणजीतसिंहने अपने सैनिकोंको एकत्रित करके विपक्षियोंके गतिरोधकी जो चेष्टा की वह व्यर्थ हुई। घोड़ेपरसे अपने गुरुके पवित्र नामको उच्चारण करते हुए इन्होंने अपने सैनिकोंको आगे बढ़नेके लिये जो उत्साह दिया वह व्यर्थ हुआ। अन्तमें वे घोड़ेसे उतर, हाथमें तलवार निकालकर शत्रु-सैन्यमें घुसे और अपने अनुचरोंको साथ देनेके लिये अनुरोध किया परन्तु उनकी चेष्टा निष्फल हुई। रणजीतसिंह हताश हो गये। अपने सैनिकोंको युद्धसे विमुख देख वे क्रोध और क्षोभसे उत्तेजित होकर शत्रु-दलमें घुस गये। ऐसी अवस्थामें "गुरुजीको विजय-लक्ष्मी प्राप्त हो"

ये शब्द रणजीतसिंहके कर्णगोचर हुए जिससे उनके मनमें आशा एवं आनन्दका सञ्चार हुआ। रणजीतसिंहने विस्मयके साथ देखा कि फूलासिंह नीले वर्णकी पताका उड़ाता पांच सौ अकालियोंके साथ "गुरुजीको विजय-लक्ष्मी प्राप्त हो" शब्द करता अफगानोंके विरुद्ध अग्रसर हो रहा है। उन्होंने फूलासिंहको विपक्षियोंकी गोलीके आघातसे घोड़ेपरसे गिरता हुआ देखा। फूलासिंहका एक हाथ कट गया और लोग उन्हें युद्ध-क्षेत्रसे अलग ले गये, इसे भी महाराजने देखा।

फिर फूलासिंह हाथीपर सवार होकर असीम उत्साहके साथ अपनी सेनाको आगे बढ़ाने लगा। गोलियोंके आघातसे उसका शरीर क्षत विक्षत हो गया था तथापि वह दृढ़ रहा। उसके चौड़े ललाटमें भीतिव्यञ्जक रेखाएं नहीं देखी गयीं। दोनों आंखें निराशा एवं दुश्चिन्ताकी सूचना नहीं देती थीं। फूलासिंह हाथीके ऊपरसे गम्भीर स्वरमें बोल रहा था—"गुरुजीको विजय-लक्ष्मी प्राप्त हो।" उसकी सेना इन वाक्योंसे उत्साहित होकर आगे बढ़ी। फूलासिंहकी ऐसी तेजस्विता देखकर पञ्जाबकेशरी बहुत ही उत्साहित हुए और उन्हें आश्वासन मिला। कौन कहता है कि गुरु गोविन्दसिंह मर गये? कौन कहता है कि गुरु गोविन्दसिंहकी महत्ता उनके शरीरके साथ लुप्त हो गयी? उन्नीसवीं शताब्दीमें नवशेराके निकटव युद्ध-क्षेत्रमें गुरु गोविन्दसिंह वर्त्तमान थे। उस समय उनके उत्साहपूर्ण वाक्योंको स्मरणकर उनके अनुयायी मत्त हो रहे थे।

फूलासिंह अपने गुरुकी महत्तासे महिमान्वित होकर पञ्जाब-को अकलङ्कित रखनेके लिये तैयार था। इस विनश्वर संसारमें सिक्ख-गुरुकी यह महिमा लुप्त नहीं होगी। फूलासिंह अफ-गानोंकी सेनामें आगे बढ़े, यह देखकर रणजीतसिंह असामान्य वीरताके साथ आगे बढ़ने लगे। इस समय अफगानलोग फूलासिंहकी बराबरी नहीं कर सके। एक क्षणमें अकालियोंने विपक्षी सेनाको तितर बितर कर दिया। थोड़ी देरमें अकालि-योंकी सहायताके लिये रणजीतसिंहकी दूसरी सेना आ पहुंची। फूलासिंह जिस हाथीपर चढ़ा था उसके महावतके शरीरमें एक एक करके तीन गोलियां प्रवेश कर गयीं। फूलासिंहको भी एक गोली लगी थी तो भी वह दृढ़ रहा और उसने महावतको शत्रु-सैन्यमें हाथी बढ़ानेकी आज्ञा दी। घायल महावत इस बार उसकी आज्ञा पालन नहीं कर सका। फूलासिंहके बारम्बार कहनेपर भी जब महावतने हाथी नहीं चलाया तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसके सिरको लक्ष्य करके उसने पिस्तौल छोड़ी। महावत गिर पड़ा और फूलासिंह तलवारके अग्र भागसे हाथी-को हांककर शत्रु-सैन्यमें ले गया और वीरोंको उत्साहित करने लगा। उसी समय विपक्षियोंकी एक गोली उसके मस्तकमें घुस गयी। वीरशिरोमणि फूलासिंह इस आघातको सहन नहीं कर सका। उसका प्राण-शून्य शरीर हौदेमें लोट गया। अपने नेताकी मृत्युसे अकालीगण दुःखी तो अवश्य हुए पर उत्साह-हीन नहीं हुए। अबकी बार उन लोगोंने अधिक साहसके साथ

शत्रुओंपर आक्रमण किया। अफगानसेना अबकी बार उनके शस्त्र-प्रहारको सहन नहीं कर रण-क्षेत्रसे भाग चली। नवशेराके निकटवर्त्ती युद्ध-क्षेत्रमें फूलासिंहके असामान्य पराक्रमसे पंजाब-केशरीको विजय लाभ हुआ।

पाठानोंने आश्चर्यके साथ फूलासिंहकी वीरताकी प्रशंसा की। जिस स्थानपर फूलासिंहकी मृत्यु हुई वहां एक स्तम्भ निर्मित करा दिया गया। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इस स्थानको पवित्र समझते हैं एवं श्रद्धा और भक्तिकी दृष्टिसे देखते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इस पवित्र स्थानपर आकर फूलासिंहके उद्देश्यकी प्रशंसा करते हैं। जबतक एक-चक्षु वृद्ध सिक्ख राजा जीवित थे तबतक नवशेराके युद्धकी बात स्मरण आनेपर उनके उज्ज्वल नेत्रोंसे अश्रु-धारा बहने लगती थी। वीरभक्त वीरकेशरीने वीरशिरोमणि फूलासिंहके लिये शोकाश्रु बहाकर अपने अनुरागका परिचय दिया और जनता-को दिखला दिया कि आदर्श वीरपुरुष सदा वीरेन्द्र समाजमें पूजित समझे जायंगे।

कुंवर सिंह

ब्रिटिश कम्पनीके अभ्युदय कालमें यदि बंगालके नवाब द्वारा की गयी अन्धकूपकी हत्या सच्ची घटना है तो वास्तवमें यह एक भयंकर एवं असंतोषजनक कार्य्य है। गरमीका मौसिम था, सूर्य्य भगवानकी प्रचंड किरणोंसे सारा संसार सन्तप्त हो रहा था, ऐसे ही समयमें १२३ अंग्रेज एक छोटे मकानमें बन्द कर दिये गये। वायु तथा जलके अभावसे तड़प तड़पकर उनके प्राणपखेरू उड़ गये। इसके ठीक एक वर्ष पश्चात् एक ऐसी भयंकर घटना हुई कि जिसके भीषण परिणामसे सारा भारतवर्ष त्रस्त हो गया। यह घटना अन्धकूपकी हत्यासे कहीं बढ़कर थी। अन्धकूपकी हत्यासे भारतवर्षके एक अंशमें निराशा, विषाद एवं भयका संचार हुआ था; परन्तु इस भयंकर घटनासे भारतवर्षरूपी नौका शोकसमुद्रमें डूबने लगी। अन्धकूपकी हत्याके समयतक अंग्रेज लोगोंका पैर भारतवर्षमें भली भांति नहीं जमा था। उस समय ये लोग केवल व्यवसायीमात्र थे। परन्तु इस आन्दोलनके समय हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक, सिन्धु नदसे लेकर ब्रह्मपुत्र पर्य्यन्त सारी भूमि अंग्रेजोंके प्रतापरूपी सूर्य्य की किरणोंसे प्रकाशित होरही थी। सिन्ध और पंजाबकी विशाल भूमिमें, बंगाल और विहारके सुन्दर नगरोंमें एवं समृद्धिशाली बंबई और मद्रासमें अंग्रेजोंकी विजय-पताका

जगदीशपुरके क्षत्रिय-वीर
बाबू कुंवरसिंह

BANIK PRESS CALCUTTA

फहरा रही थी। उस समयके अंग्रेज नेताका प्रताप अशोक, विक्रमादित्य एवं नेपोलियनके प्रतापके सदृश था। १८५७ ई० में जिस समय भीषण विप्लव प्रारम्भ हो गया था, सिपाही लोग अधीर होकर गवर्नमेन्टके विरुद्ध अपने असाधारण साहसका परिचय देना चाहते थे, बंगालसे अयोध्यातक एवं दिल्लीसे दक्षिणतक सारा प्रदेश नर-शोणितसे रंगा जा रहा था, मृत्युकी विकराल एवं निराशा और विषादकी अन्धकारमयी मूर्त्तिसे सारा भारतवर्ष ढका हुआ था, ऐसे समयमें एक वृद्ध राजपूत वीरने अपनी मर्य्यादाके रक्षणार्थ अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र उठाया। उन्होंने आत्म-सम्मान एवं आत्ममर्य्यादाके रक्षणार्थ जीवनके अन्तिम समयमें ऐसी शूरता तथा तेजस्विता दिखलायी कि जिस से अंग्रेज लोग चकित हो गये। इस तेजस्वी वृद्ध राजपूत वीर का नाम कुंवरसिंह था।

आप आरा जिलान्तर्गत जगदीशपुरके रहनेवाले थे। यह एक बड़े जमीन्दार थे। यह महाराज डुमरांवके सम्बन्धी थे। किसी किसीका मत है कि सिपाही-विद्रोहके समय इनकी -अवस्था अस्सी वर्षकी थी। कुछ लोग कहते हैं कि उस समय इन की अवस्था ६० वर्षकी थी। कुछ भी हो पर यह बात सभी मानते हैं कि सिपाही विद्रोहके समय कुंवरसिंह बूढ़े हो चले थे।

कुंवर सिंहकी बाल्यावस्थाका विवरण मालूम नहीं है। जिस देशमें जीवन-चरित्र लिखनेकी प्रथा नहीं है, बड़े बड़े लोगोंके जीवनकी घटना जिस देशमें प्रचारित नहीं की जाती,

जिस देशमें कुमारिल, शायणाचार्य्य, विजयसिंह एवं गोविन्द-सिंह जैसे आदर्श पुरुषोंके चरित्र बड़े कठिनसे मिलते हैं तो भी ठीक ठीक सब घटनाओंका पता नहीं लगता उस देशमें कुंवरसिंहके बाल्यजीवनका पता लगाना सहज नहीं है। केवल इतनाही मालूम है कि बालकपनमें ही उन्होंने अपनी तेज-स्विता एवं साहसका परिचय दिया था। बालकपनमें वे अपने शिक्षककी आज्ञाओंको भलीभांति पालन करते थे। संयमी गुरु-के मुखसे एक दिन जब उन्होंने शम तथा दमकी प्रशंसा सुनी उसी दिनसे वे बड़े शान्ति एवं संयमके साथ रहने लगे। पढ़ने लिखनेके समय वे तेजस्विता, वीरता एवं साहसकी शिक्षाको सच्चे राजपूतकी नाईं बड़े ध्यानसे सुनते थे।

जिस प्रकार प्रतापसिंहने अपने साहसी अनुचरोंके साथ पर्वत पर्वत एवं जंगल जंगल घूम कर अपनी दृढ़ताका परिचय दिया; गोविन्दसिंहने जिस प्रकार तरुणावस्थामें ही शस्त्र धारणकर अपनी भविष्य कीर्त्तिकी रक्षा की, फूलासिंहने जिस प्रकार असा-धारण तेजस्विता दिखलाकर अक्षय कीर्त्ति पायी थी ठीक उसी तरह कुंवरसिंहने भी अपनी दृढ़ता एवं तेजस्विताका परिचय दिया। शस्त्र चलानेमें उन्हें बहुत ही आनन्द मिलता था। जिस जंगलमें शिक्षा पाकर शेरशाहने दिल्लीके सम्राट्को परास्त किया था उसी जंगलमें कुंवरसिंह भी प्रायः आखेटको जाते थे। सदा ऐसे ऐसे दुर्गम स्थानोंमें जाने तथा भीषण वन-जन्तुओंके मारनेसे कुंवरसिंह धीरे धीरे साहसी, तेजस्वी एवं दृढ़प्रतिज्ञ हो गये।

यह राजपूत वीर धीरे धीरे अपने पूर्वपुरुषोंके गुणोंसे विभूषित होनेके कारण बिहारमें प्रसिद्ध हो गये। डुमरांवके महाराज पुराने जमानेसे बिहारके उज्जैन समुदायके नेता समझे जाते थे। कुछ दिनोंके पश्चात् इन क्षत्रियोंके दो दल हो गये। सिपाही-विद्रोहके समय एक क्षत्रिय-दलके नेता बाबू कुंवर सिंह थे। दूसरा दल डुमरांवके महाराजके अधीन था। कुंवरसिंहके अधीनस्थ क्षत्रिय वीरोंकी सेना प्रबल थी। इन वीरोंकी तेजस्विता एवं साहसके कारण शाहाबादका इतिहास विशेष पवित्र समझा जाता है। कुंवरसिंहने अपनी सेनाके सभी सिपाहियोंको निष्कर भूमि दी थी। कोई भी दीन दुःखी उनके यहांसे निराश होकर नहीं लौटता था। उन्होंने कितनोंको बिना लगानकी भूमि दे दी जिसका परिणाम यह हुआ कि वे स्वयं ऋणग्रस्त हो गये। कुछ दिनोंके पश्चात् वे मुकद्दमेके फन्देमें फंस गये। ये सब मुकद्दमे शाहाबादके कलक्टरके यहां थे। इस समय उन्हें बहुत कर्ज हो गया था। सरकारी मालगुजारी भी उनके जिम्मे बाकी पड़ गयी थी। एक मनुष्यसे बीस लाख रुपये कर्ज लेकर उन्होंने मालगुजारी एवं कर्ज देनेका प्रबन्ध किया। रुपया मिलनेमें कुछ विलम्ब था, अतः थोड़ा सा रुपया उन्होंने किसी दूसरे मनुष्यसे लिया। जितने दिनोंमें उन्हें रुपये मिलनेकी आशा थी उतने दिनोंतक ठहरनेके लिये उन्होंने रेविन्यू-बोर्डसे प्रार्थना की। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि रेविन्यू-बोर्ड उनकी प्रार्थना अस्वीकार नहीं करेगी। इस प्रकार

उन्होंने सुप्रबन्ध करनेकी चेष्टा की। परन्तु उनकी आशा एवं चेष्टा निष्फल हुई। रेविन्यू-बोर्ड बिना कुछ सोचे विचारे उन्हें कष्ट देनेको तैयार हो गयी। पटनाके कमिश्नरने उन्हें निम्न-लिखित सूचना दी—"यदि आप एक मासमें रुपये न दे सके तो आपकी जमीन्दारी नीलाम कर दी जायगी। इस प्रकार यदि आपकी जमीन्दारी दूसरोंके हाथ लग जाय तो सरकारका इसमें कुछ भी दोष नहीं है।" इस समाचारसे कुंवर सिंह बड़े दुःखी हुए। एक मासमें वे कुल रुपये नहीं दे सके, अतः उन्हें बड़ी हानि हुई।

वे सरकारके सच्चे मित्र थे। उन्हें पूर्ण आशा थी कि सरकार उन्हें कुसमयमें सहायता देगी परन्तु उनकी आशा-पर पानी फिर गया। तेजस्वी राजपूत वीर दुखी तो अवश्य हुए परन्तु उनका तेज और भी बढ़ गया। उन्हें सरकारसे विरक्ति हो गयी। सरकारने जो उन्हें हानि पहुंचायी एवं अपमान किया ये सब बातें उनके हृदयमें चुभ गयीं। कुंवर सिंह निश्छल एवं स्वच्छ हृदयके मनुष्य थे। उन्होंने कभी भी बिना कारण किसीपर अत्याचार करके अपने उद्धत स्वभावका परिचय नहीं दिया। सच्चे क्षत्रियकी नाईं उन्होंने सदा क्षत्रियत्वकी रक्षा की। मालगुजारीके लिये वे किसी भी प्रजापर कड़ाई नहीं करते थे। प्रजाएं अपने जीसे उन्हें जो कुछ दे देती वे उसे प्रसन्नतापूर्वक ले लेते थे। प्रजा भी उनसे सन्तुष्ट रहती थी। यदि किसी प्रजाको अधिक लाभ हो जाता तो वह निश्चित मालगुजारीसे अधिक भी दे देती थी।

यदि उनकी जमीन्दारीके किसी व्यवसायीको अधिक लाभ हो जाता तो वह भी लाभका कुछ अंश कुंवर सिंहको दे देता था। परन्तु कभी भी उन्होंने किसी व्यवसायी एवं प्रजाको कष्ट देकर धन ग्रहण नहीं किया। कुंवर सिंहकी उपाधि "बाबू" थी। इसीसे लोग उन्हें बाबू कुंवर सिंह कहते थे। शाहाबाद जिलाके सभी मनुष्य श्रद्धा और भक्तिके साथ बाबू कुंवर सिंहका नाम लेते थे। रेविन्यू-बोर्डने उन्हें जो हानि पहुंचायी थी सो तो पाठकोंको भलीभांति मालूम है; परन्तु ऐसा अपमान एवं ऐसी हानि पहुंचानेपर भी वे सरकारके मित्र ही बने रहे। एक बार जिसे मित्र बना लिया उसे त्यागकर अपनी क्षुद्रताका परिचय देना वे नहीं चाहते थे। गम्भीर उत्तजनासे उत्तेजित होनेपर भी उन्होंने सरकारके विरुद्ध खड़े होकर अपनी अधीरताका परिचय नहीं दिया। उनका हृदय जैसा स्वच्छ था वैसे ही साधुता और कर्त्तव्यपरायणता भी उनमें कूट कूटकर भरी हुई थी। अंग्रेजोंने ऐसे उच्चप्रकृति एवं आदर्शवीरका आदर नहीं किया। सिपाही-विद्रोहके प्रारम्भमें वे सरकारके प्रीतिभाजन थे। पटनाके कमिश्नर टेलर साहबने १४ वीं जून सन् १८५७ के पत्रमें सरकारको लिखा था—"कितने लोग बाबू कुँवर सिंहको राजद्रोही कहते हैं, परन्तु मुझसे उनसे जैसी मित्रता है एवं सरकारके प्रति जैसी उनकी भक्ति देखी जाती है इससे मैं उन्हें राजविद्रोही कदापि नहीं कह सकता।" तत्पश्चात् ८ वीं जुलाई-का कमिश्नर साहबने फिर भी लिखा—"बाबू कुँवर सिंह

सब कुछ कर सकते हैं पर अभी समय नहीं आया है। उहोंने कई बार मेरे पास चिट्ठियां भेजी हैं जिसके प्रत्येक अंशसे राजभक्ति टपकती है।" शाहाबादके मजिस्ट्रटने भी इस सम्मतिका समर्थन करते हुए सरकारको एक पत्र लिखा—"मेरे पास बहुत सी चिट्ठियां आयी हैं जिसमें लिखा है कि बाबू कुंवर सिंह इस विद्रोहमें सम्मिलित हैं, परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता।" कमिश्नरने जिसके विषयमें ऐसी संतोषजनक सम्मति दी है वह कभी भी सरकारके विरुद्ध नहीं हो सकता।

अपनी अटल राज-भक्तिके कारण वे सदा सरकारके प्रशंसा-पात्र बने रहे। यदि अंग्रज लोग अपनी सहृदयताका परिचय देकर इस वृद्ध राजपूत वीरको संतुष्ट रखते तो मालूम होता है कि सिपाही-विद्रोहकी काया पलट गयी होती। यदि इस तेजस्वी वीरके साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जाता तो मालूम होता है कि अंग्रेज लोग घोर विपत्तिमें नहीं पड़ते। परन्तु कालक्रमसे अंग्रेजों-की बुद्धि बदल गयी। अदूरदर्शी अंग्रेजोंने परिणामके विषयमें कुछ भी नहीं सोचकर इस तेजस्वी राजपूत वीरके हृदयपर आघात पहुंचाया। इस आघातका परिणाम ऐसा भीषण हुआ कि शाहाबाद जिला नर-रक्तसे रंग गया। जिस समय सिपाहियोंने सरकारके विरुद्ध शस्त्र धारण किया, उस समय छोटे छोटे गाँवोंमें भी आन्दोलन होने लगा; सभी नगरोंमें विद्रोही हो गये। उस समय सरकारी कर्मचारियोंने सबपर कड़ी दृष्टि की। ऐसा करना ठीक था पर साथ ही साथ धीरता एवं

परिणामदर्शितासे काम लेना चाहिये था। यदि ऐसा किया जाता तो विश्वासी मनुष्यको शीघ्र अविश्वासी कहकर विद्रोही नहीं बतलाया जाता, गवर्नमेन्टको भी विपत्तिमें पड़ना नहीं पड़ता, प्रजाको भी इतना कष्ट नहीं होता। ऐसे समयमें अंग्रेज लोग धीरता तथा परिणामदर्शिताका अवलम्बन नहीं कर सके। उन लोगोंने शीघ्र ही विश्वासी मनुष्यपर भी सन्देह किया।

जो लोग ऐसे समयमें सरकारकी सहायता सच्चे दिलसे करना चाहते थे इस अविश्वासके कारण वे भी शत्रु बन गये। शाहाबाद जिलाके बाबू कुंवर सिंह असाधारण प्रतिभाशाली वीर थे। तेजस्विता तथा प्रवीणताके कारण सभी उन्हें श्रद्धा एवं भक्तिकी दृष्टिसे देखते थे। सिपाही-विद्रोहके समय बाबू कुंवर सिंहके शत्रुओंने इनके विरुद्ध कितनी बातें सरकारको लिखीं। पहले तो पटनाके कमिश्नरने विश्वास नहीं किया। उन्होंने कुंवर सिंहके विषयमें जो जो बातें सरकारको लिखीं वह उल्लिखित हैं। गयाके मजिस्ट्रेटने कुंवर सिंहके साथ सद्व्यवहार करनेकी सलाह दी। उन्होंने साफ साफ लिखा—"दो एक मनुष्योंको फांसी देनेसे प्रजा अवश्य डरेगी; परन्तु जिस समय सारे भारतवर्षमें विद्रोहियोंकी संख्या प्रति दिन बढ़ती जा रही है ऐसे समयमें बहुत विचारकर काम करना चाहिये। विश्वासी मनुष्यपर भी अविश्वास करनेका परिणाम यह होगा कि वे भी विद्रोही हो जायंगे।" तत्पश्चात् उन्होंने कुंवरसिंहके विषयमें लिखा—"यदि कुंवर सिंह जैसे राज-

भक्त वीर जमींदारपर सन्देह किया जायगा तो इसका परिणाम बहुत विषमय होगा। वह तो गवर्नमेन्टके विरुद्ध होवेगा। साथ ही साथ और लोग भी उसके पक्षमें जा मिलेंगे।" परन्तु कमिश्नर साहबने इनकी एक न सुनी। इस सच्चे विश्वासी वृद्धकी राज-भक्ति तथा सहानुभूतिकी कुछ भी परवा नहीं की।

यद्यपि उन्होंने अपनी लेखनीसे कुंवर सिंहकी प्रशंसा की थी, एक बार उन्हें सच्चा तथा विश्वासी मित्र समझा था तथापि दूसरोंके बहकानेसे बिना कारण वे इस बार उनके विरुद्ध हो गये। कमिश्नर साहबने व्यर्थ ही उनपर सन्देह किया और उन्हें पटना बुलानेके लिये एक मुसलमान दूत भेजा।

कमिश्नरकी आज्ञासे दूत जगदीशपुर पहुंचा। कुंवर सिंह इस समय बीमार थे और शय्यापर पड़े रहते थे। इसी अवस्थामें दूतने पहुंचकर कमिश्नर साहबकी आज्ञा सुनायी। कुंवर सिंहने धैर्य्यके साथ दूतकी बातें सुनीं। पवित्र मित्रताके शोचनीय परिणामको उन्होंने भलीभांति अनुभव किया। उनके हृदयपर बड़ा भारी आघात पहुंचा तथापि उन्होंने दूतके सामने क्रोध दिखलाकर अधीरताका परिचय नहीं दिया। वे पहलेहीकी नाईं धीर बने रहे और कमिश्नरको लिख दिया कि अस्वस्थताके कारण उनकी आज्ञा नहीं पालन की जा सकती। आरोग्यलाभ करनेपर जब ब्राह्मण लोग दिन देंगे तब वे पटने जायंगे। इधर कमिश्नर साहबकी आज्ञासे कुंवर सिंहके विषयमें बड़ी सूक्ष्म रीतिसे जांच होने लगी। पूर्ण रीतिसे अनुसंधान

करनेपर भी कुंवर सिंहके विरुद्ध कुछ नहीं पता लग सका। यहांतक कि यह भी सिद्ध नहीं हो सका कि अमुक व्यक्तिको कुंवर सिंहने सरकारके विरुद्ध होनेकी सलाह दी थी। अनुसन्धान करनेवाले निराश हो गये परन्तु तेजस्वी वीर, बाबू कुँवर सिंहके मुखपर निराशाकी छाया भी नहीं दीख पड़ी। इसी समय उनके एक संबन्धीके घर विवाह था। कुँवर सिंह कुछ क्षत्रिय वीरोंके साथ बारातमें सम्मिलित होना चाहते थे, परन्तु अंग्रेज लोगोंको सन्देह हुआ अतः वे अकेले ही बारातमें गये। अंग्रेजोंके बारम्बारके दुर्व्यवहारसे इस तेजस्वी क्षत्रिय वीरका चित्त भी उन लोगोंकी ओरसे फिर गया। पहली बारके दुर्व्यवहारसे बाबू कुंवर सिंहकी केवल जमीन्दारी नष्ट हुई थी, परन्तु अबकी बार उन लोगोंके दुर्व्यवहारसे वृद्ध क्षत्रिय-की मानिहानि हुई। उन्होंने ब्रिटिश गवर्नमेन्टसे मित्रता की थी तथा वे उसे अपना भाई समझते थे।

कुंवर सिंहने अपनी उदारता, हृदयकी सरलता एवं साधुता द्वारा अबतक मित्रताकी रक्षा की थी परन्तु जब अंग्रेजों-ने उनकी मर्यादा नष्ट की तथा उन्हें अविश्वासी समझा तब उनसे नहीं रहा गया। एक सामान्य विधर्मी उनकी राज-भक्ति-के विरुद्ध प्रमाण संग्रह कर रहा था, तेजस्वी वृद्ध इस अपमान-को सह नहीं सके। इस कुविचार और अत्याचारके पश्चात् वे स्थिर नहीं रह सके। उन्होंने अपने वंशके गौरवकी रक्षाका संकल्प किया। वृद्धावस्थामें भी युवावस्थाकी तेजस्विताका

आविर्भाव हुआ। क्षोभ, क्रोध तथा अपमानसे उत्तेजित होकर क्षत्रिय वीरने सरकारके विरुद्ध शस्त्र धारण किया। इतना उत्तेजित होनेपर भी बाबू कुंवर सिंहने अन्यायसे अंग्रेजोंकी रक्तधारा बहाकर क्षत्रियोंकी वीरतामें कलंक नहीं लगाया। लार्ड डलहौसीकी परस्वत्वसंहारिणी एवं परराज्य ग्रहण करनेवाली नीतिका फल बड़ा ही विषमय हुआ। भारतवर्षका प्रधान प्रधान नगर एक एक करके सिपाही-विद्रोहमें सम्मलित हो गये। सारा हिन्दुस्थान इस तरङ्गमें गोते लगाने लगा। पंजाबसे कन्याकुमारी एवं सिन्धसे ब्रह्मदेशतक भय, विषाद तथा विद्रोहकी मलिन मूर्त्ति दीखने लगी। इस भीषण विप्लवमें यदि कुंवर सिंह अंग्रेजोंके विरुद्ध नहीं होते तो निश्चय ही शाहाबाद नर-शोणितसे रंगा नहीं जाता तथा इतने अधिक अंग्रेज सिपाहियों द्वारा मारे नहीं जाते। अंग्रेज अफसरोंकी भूलसे कुंवर सिंहका जो अपमान हुआ वह उसे विस्मरण नहीं कर सके। पश्चात् अंग्रेजोंके विरोधी सिपाहियोंने जब उनकी शरण ली और उन लोगोंने कुंवर सिंहके सामने प्रतिज्ञा की कि वे लोग अंग्रेजोंके रक्तसे अपना हाथ रंगेंगे उस समय कुंवर सिंह अंग्रेजोंसे अपमानित होनेके कारण विवेकशून्यसे हो रहे थे अतः वे सहमत हो गये। २७ वीं जुलाईको दानापुरके सिपाही आरा आकर कुंवर सिंहसे मिल गये। इस समय कुंवर सिंहके छोटे भाई अमरसिंह भी अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित होकर लड़नेके लिये तैयार हो गये।

धीरे धीरे और भी कितनोंने कुंवर सिंहका साथ दिया। परिणाम यह हुआ कि आराके अंग्रेजोंके विरुद्ध एक वृहत् सेना तैयार हो गयी। कुंवर सिंहने खजाना लूट लिया, कैदी लोग छोड़ दिये गये परन्तु कलकृरीका एक चिट्ठा भी नष्ट नहीं हुआ। कुंवर सिंहकी प्रबल धारणा थी कि राज्य हम लोगोंका हो जायगा और बिना कलकृरीके कागज-के प्रजाका स्वत्व निर्धारित नहीं हो सकेगा अतः उन्होंने कलकृरीका कागज नष्ट करनेसे रोका। वृद्धावस्थामें भी इस तेजस्वी वीरकी ऐसी उच्च आशा एवं ऐसा गम्भीर विश्वास था। ऐसी ही उच्च आशा एवं गम्भीर विश्वाससे कुंवर सिंहने अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र धारण किया। आराके अंग्रेज लोग भी अपनी रक्षाकी चेष्टामें सफलमनोरथ हुए। उसी समय ईस्ट इण्डियन रेलवे कम्पनी सङ्गठित हुई थी। आरामें जितने रेलवे कर्मचारी थे उन सबोंके ऊपर एक इञ्जिनियर महाशय थे। उनका एक दो तल्ला मकान था जिसमें अंग्रेज लोग विलियर्ड खेला करते थे। यही क्रीड़ा-गृह अंग्रेजोंके लिये दुर्ग हो गया। सभी अंग्रेज इस दुर्गके भीतर बाल बच्चोंके साथ घुस गये। पचास सिक्ख वीर अपने प्राण हथेलीपर रखकर इस दुर्गकी रक्षा करने लगे। कुंवर सिंहने इस दुर्गको नष्ट करनेके लिये प्राणपणसे चेष्टा की पर सफल नहीं हुए। अन्त-में उन्होंने इसकी चहारदीवारीके चारों ओर काष्ठ इत्यादि एकत्रित करके अग्नि जला दी परन्तु पवनदेव अंग्रेजोंके अनुकूल

थे अतः उनका कुछ अनिष्ट नहीं हो सका। जितने अश्व मरे सब वहां एकत्रित किये गये थे, वायु अनुकूल होनेके कारण उनके दुर्गन्धसे भी अंग्रेजोंकी कुछ हानि नहीं हुई। अंग्रेजोंने दुर्गके चारों ओर खाई खोदकर अपनी रक्षा की। कुंवर सिंहने गोली चलाकर दुर्गस्थ अंग्रेजोंको आहत करना चाहा; परन्तु अंग्रेजोंने कुछ गायोंको लाकर अपने दुर्गमें रख दिया। गो-हत्याके भयसे कुंवर सिंहके मनुष्योंने अंग्रेजोंपर गोली चलाना बन्द कर दिया। अंग्रेज लोग गायोंके बीचसे गोलियोंकी वृष्टि करने लगे। यद्यपि अंग्रेजोंने अपनी बुद्धिसे कुछ कालतक अपनी प्राण-रक्षा की तथापि वे कुंवर सिंहको शीघ्र ही परास्त नहीं कर सके। उस समय कुंवरसिंहके प्रतापरूपी सूर्य्यसे दशों दिशाएं प्रकाशित हो रही थीं। शाहाबादको उन्होंने कुछ कालतक अपने अधिकारमें कर लिया। इनके प्रतापमें धब्बा लगाना तो दूरकी बात है अंग्रेज लोग दुर्गके बाहर निकलतक नहीं सके। दुर्गमें जो खाद्य वस्तुएं थीं धीरे धीरे वे समाप्त हो गयीं। खाद्य वस्तुओंके समाप्त होनेसे उन्हें महान कष्ट होने लगा। उस समय उन्हें संसार अन्धकारमय मालूम होता था। इस दुःखसे छुटकारा पानेके लिये उन लोगोंने ईश्वरसे प्रार्थना की। मानों ईश्वरने उनकी कातर प्रार्थना सुन ली, दूसरी जगहसे एक सेना उनकी सहायताके लिये आ पहुंची। दानापुरके सेनापतिको जब यह समाचार मिला कि कुंवर सिंहने आराके अंग्रेजोंको घेर लिया है तब उसने पटनाके कमिश्नर

टेलर साहबकी सम्मतिसे कुछ अंग्रेज एवं सिक्ख सिपाहियोंको उनके रक्षणार्थ आरा भेजा। उस सेनामें चार सौ सिपाही और पन्द्रह नायक थे। वे लोग कप्तान डानवरके अधीन जहाज द्वारा आराकी ओर चले। २९ वीं जुलाईको दो पहरके पश्चात् वे लोग जहाजसे उतरे। सभी सिपाही अनाहार रहनेके कारण कातर हो रहे थे, अतः वे लोग जहाजसे उतरते ही भोजन बनानेका प्रबन्ध करने लगे। आराकी राहमें कुछ दूरतक जल था अतः भोजनादिके पश्चात् वे लोग नौकाकी खोजमें लगे। ठीक समयपर उन लोगोंको नौका मिल गयी। नौका द्वारा पार होकर वे लोग स्थल मार्गसे आराकी ओर चले। इस समय दो पहर रात बीत गयी थी। थके सिपाहियोंने मि० डानवरसे उस रातको विश्राम करनेकी आज्ञा मांगी। डानवर साहबने उनकी प्रार्थना नहीं सुनी। आराके असहाय अंग्रेजोंके दुःखसे वे कातर हो रहे थे अतः उनके उद्धारके लिये उन्होंने उसी रात्रिको अपनी सेनाको अग्रसर होनेके लिये कहा। सिपाहीगण कप्तानकी आज्ञासे गम्भीर रात्रिकी शान्तिको भङ्ग करते हुए धीरे धीरे आगे बढ़े। सैनिकगण जब आराके निकट पहुंचे उसी समय पार्श्ववर्त्ती आम्रकानन जल उठा। निशीथ रात्रिमें अकस्मात् एक आम्रकाननमें प्रज्वलित अग्निको देखकर अंग्रेज लोग घबड़ाये। क्षणभरमें अंग्रेज सैनिकोंपर गोलियोंकी वृष्टि होने लगी। गोलियोंके आघातसे सभी वीर सदाके लिए वीरशय्यापर सो गये।

कप्तान डानवर भी मारा गया। कुछ बचे हुए सैनिक आगे न बढ़कर सोन नदकी ओर भागे। कुँवरसिंहने इस प्रकार अंग्रेजोंकी सेनाओंको मार भगाया। आराके घिरे हुए अंग्रेजोंने जब गम्भीर रात्रिमें बन्दूक को ध्वनि सुनी तब उन लोगोंने समझा कि अंग्रजी सेना उनके उद्धारके लिये आ पहुंची, परन्तु उनकी आशा निराशारूपमें पलट गयी। धीरे धीरे वह शब्द रात्रिके अन्धकारमें लीन हो गया और आराके घिरे हुए अंग्रेजोंका हृदयाकाश निराशा एव विषादरूपी मेघोंसे आच्छादित हो गया। सवेरे एक सिक्खदूत वेश बदलकर दुर्गमें पहुंचा। घिरे हुए अंग्रेजोंने जब उन सेनाओंकी दुरवस्था सुनी तब वे लोग निराश हो भाग्यको कोसने लगे। इस समय दुर्गस्थ अंग्रेज लोग बड़ी दुर्गतिमें थे, क्योंकि दुर्गमें जल भी नहीं था। पिपासाके कारण उनके प्राण कण्ठगत हो रहे थे। दुर्गस्थित सिक्ख वीरोंने जलाभावके कारण उन्हें व्याकुल देखकर एक कुआं दुर्गके भीतर खोद दिया। उसी कुएंके जलसे अंग्रेजोंने अपनी प्यास बुझायी। इसी प्रकार अंग्रेज लोग एक संकीर्ण गृहमें एक सप्ताहतक बन्द रहकर अनेकों कष्ट सहते रहे। दूसरी अगस्तको सवेरे ही कुछ दूर बन्दूककी ध्वनि सुन पड़ी। इस समय दुर्गस्थ अंग्रेजोंके हृदयमें आशा एवं निराशा और हर्ष तथा विषादको तरंगे उठने लगीं। विन्सेण्ट आयर नामका एक सेनापति अपनी सेना लेकर कलकत्तासे प्रयाग जाता था। बक्सर पहुँचनेपर उसने आराकी घटनाके

विषयमें सुना। गाजीपुरकी राहसे वह आराकी ओर चला परन्तु शीघ्र ही उसे मालूम हो गया कि यह राह शत्रु-सैन्यसे भरा है अतः वह बक्सर लौट गया। वहांपर उसकी सहायताके लिये एक और सेना आ पहुंची। कप्तान आयर इन दोनों सेनाओंको लेकर आराकी ओर चला। इधर समस्त आरा कुँवर सिंहके अधीन हो गया था। वृद्ध राजपूत वीरके प्रतापसे समस्त आरा कांप रहा था तो भी उन्होंने किसीके साथ दुर्व्यवहार नहीं किया। निर्बलोंपर अत्याचार करना तो वे धर्म-विरुद्ध समझते थे। इस समय आराके बङ्गाली लोग कुँवर सिंहकी शरणमें गये। ये बङ्गाली लोग अंग्रेजोंकी नौकरी करके अपनी जीविका निर्वाह करते थे। उन लोगोंने समझा कि कुँवर सिंह उन्हें प्राण-दण्डकी सजा देंगे। बङ्गाली लोग कातर भावसे चुपचाप कुँवर सिंहके सामने खड़े रहे। कुँवर सिंहने गम्भीर-भावसे उनकी ओर देखा। इस दृष्टिमें आवेगका लक्षण नहीं था, क्रूरताका विकास नहीं था तथा इस दृष्टिसे कठोरताका परिचय नहीं मिलता था। यह दृष्टि शान्त थी। शान्ति-पूर्वक उन्होंने बङ्गालियोंसे कहा—"आप लोग निर्भय होकर स्वदेश लौट जावें। मेरी आज्ञासे कोई भी मनुष्य आप लोगोंपर अत्याचार नहीं करेगा।" पश्चात् कुँवर सिंहने उन लोगोंको हाथीपर चढ़ाकर पटने पहुंचवा दिया। कुँवर सिंहने निर्बल बङ्गालियोंकी रक्त-धारासे वीर-धर्म्मको अपमानित नहीं किया। कुँवर सिंह बड़े ही उच्चप्रकृतिके मनुष्य थे।

उनका हृदय पवित्र वीर-धर्मरूपी अलंकारोंसे अलंकृत था। सेनापति आयर पहली अगस्तकी सन्ध्याको गजराजगञ्ज नामकी एक छोटी बस्तीमें पहुंचा। रास्तेके दोनों ओरका धान्य-क्षेत्र जलमें डूब गया था। मार्गमें वहांसे थोड़ी ही दूरपर घने वृक्षोंकी श्रेणी थी। अंग्रेज सैनिकोंकी गति रोकनेके लिये कुँवर सिंहने वहींपर सेना एकत्रित की थी। आयर साहबने दूसरी अगस्तको सवेरे ही यात्रा प्रारम्भ करनी चाही, इस समय बाजेकी आवाज सुन पड़ी। बाजेके शब्दसे कप्तानने समझ लिया कि विपक्षी लोग निकट ही युद्धकी तैयारी कर रहे हैं। शीघ्र ही उन्हें कुँवर सिंहकी सेना दीख पड़ी। अंग्रेज लोग भी तैयार हो गये। उधर कुँवर सिंहकी सेना वृक्षोंकी श्रेणीसे होकर गोलियोंकी वृष्टि करने लगी। इधर कप्तानकी आज्ञासे अंग्रेज सैनिकोंने तोपद्वारा गोला बरसाना प्रारम्भ किया। कुँवर सिंहके सिपाही बड़े ही कट्टर एवं साहसी थे। उनकी संख्या भी अंग्रेजोंकी अपेक्षा बहुत अधिक थी। उन्हें तोपें न थीं और उनकी बन्दूकें भी अच्छी न थीं। शस्त्रहीनताके कारण वे लोग अधिक समयतक अंग्रेजोंकी गति रोक नहीं सके। कुंवर सिंहकी सेना पीछे हट गयी और अंग्रेज लोग आगे बढ़े। आगे जाकर अंग्रेजोंकी गति रुक गयी। राहमें एक नदी थी जिसे पार करनेके लिये एक पुल था। कुँवर सिंहने पुल तोड़ दिया था अतः अंग्रेज लोग आगे बढ़ नहीं सके। उन लोगोंने दक्षिणकी ओर लौटकर रेलवे बांधसे पार

होना चाहा। एक रास्ता इधरसे भी आराकी ओर गया है। अंग्रेजोंने इसी रास्तेसे जाना चाहा। कुँवरसिंहने इधर भी उन लोगोंको नहीं छोड़ा। वे नदीके दूसरे तटपर अपनी सेनाके साथ अंग्रेज सैनिकोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अबकी भी अंग्रेजोंने गोलावृष्टि प्रारम्भ कर दी परन्तु इस बार कुँवर सिंह असीम साहसके साथ डटे रहे। इस भयंकर युद्धमें उन्होंने अंग्रेजोंको आगे बढ़ने नहीं दिया। बांधके निकट घने वृक्षोंका एक छोटा जंगल था। अंग्रेज सैनिक ज्योंही बांध पार करके आराकी राह-पर पहुंचे त्योंही कुँवर सिंह ससैन्य जंगलमें घुस गये। क्षण भरमें वे लोग जंगलके भीतर छिप गये और वहांसे गोलियोंकी वृष्टि करने लगे। दनादन गोलियोंके आघातसे कप्तान आयरके सैनिक घबड़ा उठे। वे लोग आगे बढ़ नहीं सके। कुंवरसिंहने बड़ी वीरताके साथ उनपर आक्रमण किया। वे लोग इस युद्धमें कुंवरसिंहसे परास्त हो गये। वृद्ध राजपूतके साहस एवं पराक्रमसे अंग्रेज लोग आश्चर्य्यान्वित हो गये। इन लोगोंने भी विपक्षियोंपर गोलियां चलायी थीं परन्तु साहसी राजपूतोंके निकट इनकी एक न चली। अंग्रेजी सैन्यको पीछे हटते देख राजपूतोंने आगे बढ़कर उनकी तोपें छीन लेनी चाहीं। जब राजपूत वीर तोपके निकट चले गये तब कप्तानके आदेशसे अंग्रज़ों-ने भाला, बरछा, तलवार इत्यादि चलाना आरम्भ कर दिया। इस समय राजपूतोंके पास भाला, बरछा इत्यादि नहीं था, अतः वे लोग इधर उधर भाग गये और अंग्रेज लोग धीरे धीरे आरा

पहुंचे। आराके घिरे हुए अंग्रेजोंको जब यह समाचार मिला तब उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही।

इधर बाबू कुंवर सिंह अपने घर जगदीशपुरको चले गये। उनके कितने घायल सिपाहियोंको अंग्रेजोंने बन्दी बना लिया। कप्तान आयरने उन घायल सिपाहियोंपर कुछ भी दया न दिखलायी। उनकी आज्ञासे दो घायल सिपाहियोंको प्राणदण्डकी सजा मिली। अंग्रेज वीर इसी तरह वीर-धर्मकी अवहेलना करते हुए धीरे धीरे ग्यारहवीं अगस्तको जगदीशपुरकी ओर बढ़े। जगदीशपुरके मार्गमें छोटे छोटे जंगल थे। कुंवर सिंहने इन जंगलोंमें कुछ वीरोंको एकत्रित कर रक्खा था। उन लोगोंने अंग्रेजोंको रोकनेकी पूरी कोशिश की परन्तु सफलमनोरथ नहीं हो सके। कप्तान आयरने जगदीशपुर पहुंचकर कुँवर सिंहकी सारी सम्पत्तिपर अधिकार जमा लिया। यहाँतक कि देवालय भी नहीं बच सका। कुंवर सिंहने बहुत धन व्यय करके देवमुर्त्ति स्थापित की थी। अंग्रेजोंने मूर्त्ति नष्ट करके हिन्दूधर्मका बड़ा भारी अपमान किया। अमरसिंह और दयालसिंह कुंवर सिंहके भाई थे, अंग्रेजोंने उनके निवास-गृह भी नष्ट कर दिये। जगदीश-पुरसे कुछ दूरपर कुंवर सिंहका एक और भी मकान था, अंग्रजोंने उसे भी नष्ट कर दिया। जिस समय वह परास्त होकर भागे, जगदीशपुरकी सहस्रों स्त्रियां उनके साथ हो गयीं। उन स्त्रियोंने पकड़े जाकर मारे जानेकी अपेक्षा लड़कर प्राण त्यागना अच्छा समझा। उन स्त्रियोंके हृदय सच्ची वीरतासे भरे हुए थे।

जिस समय कुंवर सिंहने अपने गृह एवं देवालयके नष्ट होनेकी बात सुनी उस समय वे क्रोधके मारे पागलसे हो गये। जगदीशपुर पहुंचकर उन्होंने अंग्रेजोंको मार डालना चाहा। शीघ्र ही एक बड़ी अंग्रेजी सेना आ पहुंची। इस समय कुंवर सिंहके दलके सभी स्त्री पुरुष युद्धवेषमें सुसज्जित होकर अंग्रेजोंपर टूट पड़े। यहांपर क्षत्रिय महिलाओंने अपने असीम साहसका परिचय दिया। जब राजपूत स्त्रियोंने देखा कि जयकी आशा नहीं है तब उन लोगोंने स्वयं अपना प्राण विसर्जन कर दिया। इस तरह डेढ़ सौ स्त्रियोंने शान्त भावसे अपने प्राण त्यागकर अक्षय कीर्त्ति लाभ की। जगदीशपुर नष्ट हो गया। परन्तु कुंवर पकड़े नहीं गये। लोग कहते हैं कि वे ससरामकी ओर चले गये। सच्ची बात तो यह है कि पूर्ण चेष्टा करनेपर भी अंग्रेज लोग उन्हें पकड़ नहीं सके। एक समय वे हाथीपर सवार होकर गंगापार हो रहे थे कि अकस्मात् विपक्षियोंकी गोली उनके बायें हाथमें लग गयी। उन्होंने अपना घायल हाथ काटकर गंगामें फेंक दिया और कहा-"मा गङ्गे! अपनी सन्तानकी यह अन्तिम भेंट स्वीकार करो।" विपन्नावस्थामें वे हाथीकी पीठपर चढ़े हुए सदाके लिये भागीरथीके गर्भमें सो गये। कुंवर सिंहको निम्न लिखित कहानी बहुत अच्छी लगती थी। जब कभी वह जमीन्दारीके कार्य्यसे छुट्टी पाकर स्थिर होते तो इस कहानीको बड़े आनन्दके साथ सुनते थे। कथा यों है—

"एक समय महाराज विक्रमादित्य अपने भाई भर्तृहरिको

राज्य-भार सौंपकर स्वयं साधुके वेषमें भ्रमणार्थ निकले। जाते समय वे अपने भाईसे कह गये कि 'यदि राज्यमें कोई विषम समस्या उपस्थित होगी तो मैं आकर उचित परामर्श दूंगा। वह यह भी कह गये कि मैं तो किसी निश्चित स्थानमें रहूंगा नहीं अतः मुझे इस बातकी सूचना देनेके लिये सारे राज्यमें सांकेतिक घोषणा दे देना। बस, मैं कहीं भी रहूं गुप्त रीतिसे यहां आकर परामर्श दे दूंगा। मैं यहां इस रूपमें नहीं आऊंगा अतः तुम्हारे द्वारपाल मुझे न पहचानेंगे। मैं सांकेतिक वाक्य कहला दूंगा बस उस वाक्य-के सुनते ही समझ जाना कि मैं आ गया।' ये बातें कहकर वीर विक्रमादित्य साधुके वेषमें भ्रमणार्थ चले गये। भर्तृहरि नियमा-नुसार राज्य-भार चलाने लगे।

कुछ दिनोंके पश्चात् राज्यमें एक विषय समस्या उपस्थित हुई। उन्होंने सारे राज्यमें सांकेतिक घोषणा दे दी। वीर विक्रमादित्य यह घोषणा सुनकर शीघ्र ही राज-द्वारपर पहुंचे। आधी रातके समय वे राज-प्रासादके दरवाजेपर पहुंचे। द्वार-पालोंने उन्हें नहीं पहचाना अतः वे उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सके। बहुत विनती करनेपर द्वारपाल इस बातपर सहमत हुए कि मैं आपका संदेशा राजातक पहुंचा दूंगा। द्वारपाल शयनगृहके द्वारपर जा कर बोला—"महाराज! एक अपरिचित साधु आपसे मिलना चाहता है और अमुक बात कहता है," भर्तृहरिने सांकेतिक बातें सुनकर शीघ्र ही उस संन्यासीको

अपने निकट बुलाया। द्वारपालगण संन्यासी विक्रमादित्यको महाराज भर्तृहरिके शयन-गृहमें लिवा लाये। जब विक्रमादित्य भर्तृहरिके शयन-गृहमें आये तो उन्होंने वहां रक्त-धारा देखी। उन्होंने भर्तृहरिसे पूछा कि यह रक्त-धारा कैसी? पहले तो भर्तृहरिने इस बातको टालना चाहा पर बहुत आग्रह करनेपर उन्होंने कहा—"मैंने ही अपनी स्त्रीको इस तलवारसे काट दिया है। इस निस्तब्ध रात्रिमें यदि मैं आपसे सलाह करनेके लिये बाहर जाता वा स्त्रीको यहांसे हटाकर आपसे परामर्श लेता तो वह सन्देह करती। ऐसे गम्भीर विषयमें आपसे सलाह लेना था कि मैं कलके लिये ठहर नहीं सकता था अतः उसे दो टुकड़े करके सारा झंझट मिटा दिया। इसके लिये कौन सी चिन्ताकी बात है, इच्छा होनेसे ही दूसरी शादी शीघ्र हो जायगी। ये बातें सुनते ही विक्रमादित्यका मुखमण्डल गम्भीर हो गया, ललाटकी रेखाएं सिमट गयीं। उन्होंने कहा—"भाई! अब परामर्श देनेको आवश्यकता नहीं है।" उपर्युक्त बातें कहकर विक्रमादित्य शीघ्रही वहांसे चले गये। कुँवर सिंहने ये बातें सुनकर कहा—"भर्तृहरिने बहुत ही अच्छा किया। राजनैतिक विषयमें मनुष्यको ऐसा ही दृढ़ रहना चाहिये।"

पाठक अब समझ गये होंगे कि बाबू कुँवर सिंह राजनीतिक बातोंको कितने गौरवकी दृष्टिसे देखते थे। शाहाबाद जिलामें कुँवर सिंहका ऐसा प्रताप था कि कोई भी मनुष्य अपने दरवाजे-पर बैठकर तमाकू पीनेका साहस नहीं करता था। शाहाबाद

जिलाका इतिहास इस साहसी, प्रतापी, कार्य्य-दक्ष, दृढ़प्रतिज्ञ वृद्ध राजपूतकी जीवनीसे पवित्र समझा जायगा। जीवनकी अन्तिम अवस्थामें उन्हें बाध्य होकर अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र धारण करना पड़ा। दुःखके साथ कहना पड़ता है कि उनकी बुद्धिकी स्थिरता, दूरदर्शिता एवं गम्भीरताका पूर्णरूपसे विकास नहीं हो सका।

लक्ष्मीबाई

उन्नीसवीं शताब्दीमें एक सच्ची वीर नारी हुई, उसका नाम था लक्ष्मीबाई। जिस समय अंग्रेजोंका प्रतापरूपी सूर्य्य हिमालय पर्वतसे कुमारी अन्तरीपतक और सिन्धुनदसे ब्रह्मपुत्रतक चमक रहा था उसी समय लक्ष्मीबाईने स्वाधीनताके गौरवकी रक्षाका संकल्प किया और अपने असाधारण वीरत्वसे अंग्रेजोंके विरुद्ध खड़े होकर उनको चकित कर दिया। लक्ष्मीबाई जिस तरह सरलहृदया और दयालु थी उसी तरह स्थिरचित्त और दृढ़प्रतिज्ञ भी थी। लक्ष्मीबाईमें विधाताने मधुरता, कोमलता एवं सुन्दरताके साथ साथ भयंकर भावोंका समावेश किया था। मानों वीणाके मधुर रवके साथ साथ पर्वतोंपर होनेवाले भैरव-रवका सम्मिश्रण हो गया था। इस लावण्यमयी वीर नारीकी वीरताकी कहानी सुनकर चकित होना पड़ता है।

लक्ष्मीबाई कौन थी? क्यों उसने अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र उठाया जिसकी शक्तिके आगे विजयी मरहट्ठोंको भी सिर नवाना पड़ा, पंजाबकेशरी भी जिस शक्तिको रोक न सके, जिस शक्तिके विरुद्ध बंगाल, बिहार, पंजाब और मद्रासमें कोई भी खड़ा न हो सका था? इङ्गलैण्डकी वणिक-समितिका एक कर्मचारी भारतमें आया था जिसने अन्तमें अशोक एवं भोज

जैसी क्षमता दिखलायी थी। क्यों ऐसी शक्तिके विरुद्ध एक स्त्री खड़ी हुई, उसीका उल्लेख यहां किया जायगा।

लक्ष्मीबाई मोरोपन्त नामक एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मणकी कन्या थी। मोरोपन्त बाजीराव पेशवाके सहोदर चिमाजी अप्पा साहबके प्रियपात्र थे। अप्पा साहबके साथ ये काशीमें ही रहते थे। उनकी प्रियतमा भार्य्या भागीरथीबाई स्वामीके साथ रहती थी। उसी पवित्र भूमिमें उन्हें एक कन्या हुई जिसका नाम मन्नुबाई रक्खा गया। मन्नुबाई ही पीछे लक्ष्मी-बाई कहलायी।

इसी समय बाजीराव पेशवा सरकारसे आठ लाख रुपयेकी वृत्ति लेकर राज्य छोड़ कानपुरके निकट बिठूरमें रहते थे। अप्पा साहबकी मृत्युके बाद मोरोपन्त अपनी स्त्री और कन्याके साथ बिठूर जाकर राजच्युत पेशवाके आश्रयमें रहने लगा। यहींपर मन्नुबाईकी बाल्यावस्था पेशवाके दत्तक पुत्र नाना साहबके साथ खेल कूदमें कटी। मन्नुबाईके सुन्दर मुखमडल एवं सुनहली कान्ति-युक्त शरीरको देखकर बाजीराव और उसके सहचरगण बहुत प्रीति करते थे। एक बार किसी एक ज्योतिषीने इस बालिकाकी जन्मकुण्डलीको देखकर कहा कि किसी समय यह रानी होगी। ज्योतिषीका वचन यथार्थ निकला।

भारतवर्षके अन्तर्गत बुन्देलखण्डके पार्वत्य प्रदेशमें झांसी नामक स्थानमें एक छोटा राज्य स्थापित था। झांसी बड़े ही

मनोहर स्थानमें है। उसके उत्तर और दक्षिणमें पर्वत-माला शोभायमान है। पर्वतके निचले भागमें हरे हरे वृक्ष उसकी शोभाको और भी बढ़ा रहे हैं। बीच बीचमें जला-शयकी अपूर्व शोभा मनको मोह लेती है। इस क्षुद्र राज्य-की परिधि १५६७ वर्गमील है। पहले तो झांसी महारा-ष्ट्रकुल-गौरव पेशवाके अधीन थी पर १८१७ ई०में यह ब्रिटिश गवर्नमेण्टके अधिकारमें चली आई। परन्तु नाम-के लिये उसी खान्दानके राजा राज्यपर बिठलाये जाया करते थे। १८३८ ई०में गङ्गाधरराव झांसीकी गद्दीपर बैठे। जब इन-की पहली धर्मपत्नी मर गई तब इन्होंने दूसरी बार मन्नुबाई-का पाणिग्रहण किया। जिस समय मन्नुबाई राजधानीमें आयीं उस समय प्रजा उसकी सुन्दरतापर मुग्ध होकर उसे लक्ष्मी-बाई कहने लगी।

१८५८ ई० में गंगाधरराव मर गये। उन्हें कोई लड़का न था अतः मृत्युके पहले ही उन्होंने एक दत्तक पुत्रको गोद लेकर ब्रिटिश रेजिडेण्टको यह लिखा कि, "मैं इस समय बहुत बीमार हूं। मुझे इस बातका बहुत दुःख है कि मेरे पूर्वपुरुषों-का नाम मिटा जा रहा है अतः सन्धिकी द्वितीय धाराके अनुसार एक अपने आत्मीयके पांच वर्षके बालक आनन्दरावको अपना दत्तक पुत्र बनाता हूं। यदि ईश्वरकी कृपासे मैं चंगा हो गया और मुझे कोई पुत्र हुआ तो मैं अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करूंगा; परन्तु यदि मैं मर गया तो यह बालक मेरी

समस्त सम्पत्तिका अधिकारी समझा जायगा। इसे अपनी माता और मेरी पत्नीके प्रति असद्व्यवहार करनेका अधिकार नहीं है।

मृत गंगाधररावकी लेखनीसे ऐसे ही नम्र वाक्य निकले थे। उनका यही अन्तिम लेख था। परन्तु शोक है कि इस अनुरोधकी रक्षा नहीं की गयी। इस समय भारतवर्षका गवर्नर था लार्ड डलहौसी। इसीने पंजाबकी सन्धि भंग कर रणजीतसिंहके राज्यमें ब्रिटिश पताका उड़ायी थी। इसीने ही अन्यायसे इतिहासप्रसिद्ध सितारा राज्यपरसे मरहट्ठोंका अधिकार लुप्त कर दिया था। तब झांसीके सम्बन्धमें उसके विचार क्योंकर बदल सकते थे? डलहौसीने अवसर देखकर सिताराकी तरह झांसीपर अधिकार प्राप्त करनेकी ठान ली; फिर क्या था शीघ्र ही घोषणा द्वारा झांसी मरहट्ठोंके अधिकारसे निकल गयी।

झांसी ब्रिटिश राज्यमें मिला ली गयी सही परन्तु तेजस्विनी लक्ष्मीबाई ब्रिटिश गवर्नमेन्टके इस व्यवहारसे बहुत दुःखी हुई। उसका राज्य दूसरेके अधिकारमें गया। एक विदेशी पुरुषने उसके दत्तक पुत्रसे राज्याधिकार छीन लिया, यह सोचकर लक्ष्मीबाई मर्माहत हुई। लक्ष्मीबाईका हृदय उच्च भावोंसे परिपूर्ण था। मेजर मालकमने साफ तौरपर लिखा है कि लक्ष्मीबाई बहुत माननीया थी, उसका स्वभाव बहुत ही उच्च था। झांसीकी सभी प्रजा उसे सम्मानकी दृष्टिसे देखती थी। इस तरहकी वीरांगनाने सरकारसे दत्तक पुत्र लेने एवं राज्य-

का भार चलानेकी प्रार्थना की परन्तु उसकी यह प्रार्थना नहीं सुनी गयी। इस अन्यायसे लक्ष्मीबाई बहुत दुःखी हुई थी। अटलता, अध्यवसाय एवं दृढ़ प्रतिज्ञता आदि उसके हृदयमें कूट कूटकर भरे हुए थे। विघ्न और विपत्तिओंसे वह कभी भी घबड़ाती नहीं थी।

लक्ष्मीबाईने अपनी दशा सुधारनेकी प्रतिज्ञा की। ब्रिटिश एजेन्टके निकट जाकर गम्भीर स्वरमें बोली-"क्या मेरी झांसी मुझे नहीं दोगे?" वीर रमणीके ये वाक्य सुनकर एजेन्ट चकित हो गया। झांसी ब्रिटिश कंपनीके अधिकारमें रहा पर वीर रमणीके हृदयपर इसकी गहरी चोट पहुंची।

१८५७ ई० में जिस समय सिपाहीविद्रोह हुआ उस समय भारतवर्षमें एक भयंकर दृश्य देखनेमें आया था। कानपुर, मेरठ, दिल्ली इत्यादिके साथ साथ बुन्देलखण्डपर भी इसका प्रभाव पड़ा। झांसीके रहनेवाले अंग्रेजोंमें कुछ तो मारे गये और कुछ भाग गये। उस समय लक्ष्मीबाईने बलवाइयोंको झांसीसे निकाल दिया था और स्वयं कम्पनीके नामसे राज्य करने लगी थी। अंग्रेज कर्मचारियोंने उसके मनोगत भाव एवं भावी परिणामको सोचकर छेड़ छाड़ नहीं किया। विद्रोहियोंने उसे अपना शत्रु नहीं समझा था इसीसे वे लोग उसके विरुद्ध लड़नेको तैयार नहीं हुए। इस कुसमयमें लक्ष्मीबाईने झांसीमें शान्ति-भङ्ग नहीं होने दिया। अंग्रेजोंने उसके इस उपकारके बदले उसे अपना शत्रु बना लिया। तेजस्विनी लक्ष्मीबाई अंग्रेजोंके

अधीन न हुई और आत्मसम्मानकी रक्षाके निमित्त सैन्य संग्रह करने लगी। उस समय उसने स्त्रीका वेष परित्याग करके योद्धाका वेष धारण किया। उसका लावण्यमयी सुन्दर शरीर वीर भेषमें और भी सुन्दर मालूम पड़ता था। उन्नीसवीं शताब्दीमें भारतको एक वीरांगना सुशिक्षित अंग्रेजी सेनाके साथ लड़नेको तैयार हुई। पक्षपाती विदेशी चाहे कुछ भी कहें पर सहृदय कवि एवं सत्यप्रिय इतिहासज्ञ अपनी लेखनी द्वारा इस दृश्यकी सदा प्रशंसा करेंगे। कौन जानता था कि प्रतापी अंग्रेजोंके शासनकालमें ही भारतवर्षमें ऐसा अपूर्व दृश्य देखनेमें आवेगा? कौन जानता था कि पराधीन भारतीयोंमेंसे एक कोमलांगी घोड़ेपर सवार होकर, हाथमें कठिन शस्त्र धारणकर स्वाधीनताके लिये लड़नेको तैयार होगी? जिस सुन्दर मूर्त्तिको देखकर सबके नेत्र तृप्त होते थे किसने सोचा था कि वह अग्निकी एक ऐसी चिनगारी निकलेगी जो चारों दिशाओंको अपने तेजसे दग्ध कर देगी? बहुत दिन नहीं बीते थे कि भारतवर्षमें इस तरहके परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होने लगे। निर्जीव, निश्चेष्ट और निष्क्रिय भारतीयोंमें जान आ गयी। भारतकी उस विधवा वीर रमणीने भयंकर रूप धारण किया। वह कोमल पुष्प कठोरतामें परिणत हो गया।

लक्ष्मीबाईने वीर पुरुषका वेष धारण किया। कोमल शरीर कठिन कवचसे आवृत था और कोमल हाथमें कठिन तलवार शोभा दे रही थी। इस सुन्दरीकी लावण्यराशिसे अपूर्व भीष-

णताका आविर्भाव हुआ। सहृदय पाठक दुःखी, दरिद्र एवं हत-भाग्य भारतकी शोचनीय अवस्थाको स्मरण रखते हुए एक बार सोचें और कल्पनाकी सहायतासे इस भयंकर मूर्त्तिको देखें तो अवश्य ही उनके हृदयमें एक अनिर्वचनीय भावका संचार होगा। लक्ष्मीबाई पुरुषके वेषमें घोड़ेपर सवार होकर अपने सैनिकोंको आगे बढ़नेके लिये उत्तेजित कर रही थी। शीघ्र ही ब्रिटिश सैनिकोंके साथ उसे लड़ना पड़ा। ऐसे प्रबल शत्रुको देख-कर लक्ष्मीबाई तनिक भी न घबड़ायी। कई महीनेतक निर्भय होकर वह असीम साहसके साथ अंग्रेजोंसे लड़ती रही। सुदक्ष ब्रिटिश सैनिक इस वीरांगनाके अद्भुत रण-कौशल और असा-मान्य साहसको देखकर चकित हुए और लक्ष्मीबाईकी प्रशंसा करने लगे।

लक्ष्मीबाईके अतिरिक्त आजतक किसीने भी सेनापति सर हिडरोजको नहीं छकाया था। पहली लड़ाईमें तो लक्ष्मी-बाईने अलौकिक साहसका परिचय दिया। उसके रण-कौशल-से ब्रिटिश सेनापति सर हिडरोजके सेनिक तितर बितर होने लगे थे। अनन्तर लक्ष्मीबाईके अधिकांश सैनिक मारे गये परन्तु उनकी तेजस्विताकी मात्रा कम नहीं हुई। उन्हें एक बार और भी कालपी नगरमें अंग्रेजोंसे लड़ना पड़ा। अन्तमें कालपी अंग्रेजोंके ही अधिकारमें रहा। इस समय भी लक्ष्मीबाई उत्साहहीन वा निरुद्यम न हुई। राज्य दूसरेके अधिकारमें चला गया और राज्यका सच्चा अधिकारी साधारण मनुष्यकी

तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहा है अतः लक्ष्मीबाईने उसकी शक्तिका ह्रास करनेको ठाना।

लक्ष्मीबाई इस उद्देश्यकी सिद्धिके निमित्त प्राणतक देनेको तैयार थी। वीर रमणी कभी भी इस प्रतिज्ञासे च्युत न हुई। उसकी वीरताकी उज्ज्वलतामें कहीं भी कालिमा नहीं नजर आती। १८५८ ई० के १७ वीं जूनको लक्ष्मीबाईने ग्वालियरके निकट एक बार और भी एक अंग्रेज़ी सेनासे युद्ध किया। यही उसका अन्तिम युद्ध था। इसी युद्धमें उसने शरीर त्याग किया। इस भयानक युद्धमें लक्ष्मीबाई अपने सैनिकोंके आगे थी। घोर संग्राम होनेके पश्चात् उसकी एक सहचरी शत्रुके व्यूहमें घुसने लगी। इस समय एक अंग्रेज सैनिकने सहचरीपर शस्त्र चलाया। लक्ष्मीबाई अपनी सहचरीके घातकका सिर अपनी तलवारसे काटकर वहांसे लौटी।

राहमें एक गढ़ा पड़ा यहीं उसके घोड़ेकी गति रुक गयी। लक्ष्मीबाईने घोड़ा चलानेको पूर्ण चेष्टा की पर वह कृतकार्य्य न हो सकी। इसी समय एक अंग्रेज सैनिक जो घोड़ेपर सवार होकर उसका पीछा कर रहा था वहां आ पहुंचा। लक्ष्मीबाई भी युद्ध करनेपर तैयार हो गयी। अपनी तलवारकी सहायतासे उसने आक्रमणकारीके वारको रोक दिया। दूसरी बार सैनिककी तलवार उसके सिरमें आ लगी। इस अवस्थामें भी उसने अपनी तलवारसे शत्रुको मार गिराया पर उसका शरीर भी शस्त्राघातसे घायल हो गया था। उसका एक विश्वस्त अनुचर उसे एक

पासकी झोंपड़ीमें ले गया। इस समय लक्ष्मीबाई प्यासके मारे व्याकुल हो रही थी। उसने झोंपड़ीवालेसे पानी मांगा और उसके दिए हुए गंगाजलको पीकर वीर लक्ष्मीबाई परलोक सिधारी।

आत्म-सम्मानकी रक्षाके निमित्त प्राण त्यागकर इस वीर रमणीने अलौकिक स्वार्थ-त्यागका उपदेश दिया। भारतीय लक्ष्मीबाईकी प्रशंसा इसलिये नहीं करते कि उसने महा पराक्रमी अंग्रेजोंके विरुद्ध शस्त्र उठाया। उसकी प्रशंसा उसकी वीरता एवं स्वातंत्र्यप्रियताके लिये करते हैं जो उसमें कूट कूटकर भरी हुई थी। उसकी असामान्य वीरता देखकर सर हिडरोजने कहा था,—"लक्ष्मीबाई यद्यपि नारी है परन्तु विपक्षियोंके सभी वीरोंकी अपेक्षा वह युद्ध-विद्यामें निपुण है। वीर पुरुषने इस वीरांगनाकी सच्ची वीरताको समझा था इसीसे उसकी प्रशंसा की।

असाधारण परोपकार

सन् १८५७ सालमें सिपाहियोंने उन्मत्त होकर अंग्रेज़ोंको समूल नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा की थी। चारों ओर भयङ्कर रक्त-धारा बह रही थी। अंग्रेज़ और सिपाही दोनों ही प्रतिहिंसा और क्रोधसे उत्तेजित होकर एक दूसरेके साथ निर्दयतापूर्वक व्यवहार करते थे। सारे भारतमें हलचल मच गया था और सबको सदा विपत्तिकी आशंका बनी रहती थी। इस विपत्तिके समयमें भारतकी एक दयालु युवतीने अपनी दयाका अपूर्व परिचय दिया। अपने प्राणको संकटमें रखकर उसने विदेशी, विधर्मी कुलकामिनियों तथा शिशुओंको आश्रय दिया। इससे उसने असाधारण परोपकार तथा स्वाभाविक मनुष्यप्रेमका ज्वलन्त उदाहरण संसारके सामने रक्खा।

बूंदीके राजाकी धर्मपत्नीके कोमल हृदयमें इस तरह दयाका अपूर्व भाव उदय हुआ था। बूंदीके राजा सिपाहियोंकी ओरसे युद्धमें सम्मिलित हुए थे। इधर उनकी दयालु स्त्रीको मालूम हुआ कि नित्य अनेकों अंग्रेज मारे जाते हैं। उनकी स्त्रियां तथा उनकी संतानें धूप और वृष्टिमें यों ही जंगलों जंगलों मारी फिरती हैं। ये लोग कितने ऐश आरामसे पाले गये थे पर आज न तो इनको खानेको अन्न मिलता है और न पहननेको वस्त्र। इससे उसका हृदय पिघल गया। वह विश्वस्त

सेवकों द्वारा उनके खानेको अन्न और पहननेको वस्त्र भेजवाने लगी। इनके अतिरिक्त और भी आवश्यक चीजें उनके पास भेजवाया करती थी।

बूंदीके राजा तो युद्धस्थलमें थे। अतः शत्रुके प्रति अपनी पत्नीके इस सद्व्यवहारकी बात उन्हें मालूम ही नहीं हुई। महारानीकी सहायतासे ये लोग सुरक्षित दिल्ली पहुंच गये। यदि महारानी समयपर सहायता नहीं करतीं तो उनमेंसे कितनोंके प्राण नष्ट हो जाते। महारानी जानती थीं कि उनकी सहायता करनेसे अपनी हानि है तो भी वह अपने हृदयके भावको नहीं रोक सकीं। उस दयालु नारीने उन निराश्रय नारियों एवं बच्चोंकी सहायता करके अपने उच्च भावका परिचय दिया। परन्तु शोक! यही उपकार और उदारता रानीके नाशका कारण हुआ। राजाके लौटनेके कुछ ही समय पश्चात् महारानी परलोक सिधारीं।

इस घटनाके थोड़े ही दिन पश्चात् महाराजा भी युद्धमें मारे गये। रानीकी आकस्मिक मृत्युका कारण मालूम नहीं है। कुछ लोगोंका सन्देह है कि अंग्रेजोंकी सहायता करनेके कारण रुष्ट होकर राजाने उन्हें मरवा डाला। दयालु अबला दया दिखलानेके कारण घातकके हाथसे मारी गयी।

उक्त विप्लवके समय भारतमें कई जगह भारतवासियोंने दया दिखलायी। अनेक स्थलोंमें उदार तथा दयालु मनुष्योंने इस घोर विपत्तिके समयमें निराश्रय अंग्रेजोंकी सहायता की।

फैजाबादके डिप्टी कमिश्नर जब कचहरीमें गये तो मालूम हुआ कि आसपासके सिपाही लोग युद्ध करनेके लिये तैयार हैं। यह संवाद सुनकर अपनी स्त्रीको एक विश्वस्त नौकरके साथ नदीके तटपर भेज दिया। उधर डिप्टी कमिश्नर अन्यान्य कर्मचारियोंके साथ सिपाहियोंके निवासस्थानपर गये। सिपाही लोग इस समय धन लूटने तथा अंग्रेजोंको नष्ट करनेके लिये चारों ओर घूम रहे थे। सन्ध्या होनेपर अंग्रेजोंकी स्त्रियां डरती हुई एक छोटेसे ग्राममें घुसीं। गांवकी एक दयालु स्त्रीने गुप्त रीतिसे इन स्त्रियोंको अपने घरमें रहनेकी जगह दी। डिप्टी कमिश्नरकी स्त्री भी यहीं छिपी थी। रात्रिमें सिपाही लोग उसी गांवमें घुसे और भागे हुए अंग्रेजों एवं उनकी स्त्रियोंको खोज खोजकर मारने लगे। उन लोगोंने यह भी कहा कि जो अपने घरमें अंग्रेजोंको छिपा रखेगा उसे प्राणदण्ड मिलेगा। अपने प्राणका भय होनेपर भी उस दयालु स्त्रीने इन्हें सिपाहियोंके हाथमें नहीं सौंपा। जिस समय ये स्त्रियां गांवमें घुसी थीं उस समय वहांके पुरुष लोग खेतमें काम कर रहे थे अतः उन्हें इसकी कुछ भी खबर नहीं थी। उस गांवकी बहुत सी स्त्रियां यह जानती थीं पर किसीने इसे प्रकाशित नहीं किया। जबतक उपद्रव शान्त नहीं हुआ तबतक वे स्त्रियां किसी तरह अपना समय वहीं बिताती रहीं। दूसरे दिन सिपाहियोंके चले जानेके पश्चात् वही विश्वस्त नौकर उस गांवमें गया। उस नौकरने गांवके मुखियासे नौकाके लिये प्रार्थना की। मुखियाने

उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। डिप्टी कमिश्नरकी स्त्री तथा अन्यान्य कई अंग्रेजोंकी स्त्रियां अपने बच्चोंके साथ उस नौका-पर सवार हुईं। उस नौकापर बाहर कई विश्वासपात्र नौकर भी बैठे थे। उन लोगोंने यह प्रकाशित कर दिया कि यह तीर्थ-यात्रियोंकी नौका है। कई जगह विद्रोही सिपाहियोंसे भेंट हुई पर उन लोगोंने यह नहीं समझा कि इसमें अंग्रेजोंकी स्त्रियां हैं। सन्ध्या समय नौकाको सुरक्षित स्थानमें रखकर भृत्यलोग भोजनके प्रबन्धके लिये पासके गांवमें गये। वहांपर भी ग्राम-वासियोंने इनकी सहायतासे मुंह नहीं मोड़ा। एक स्त्री छोटे छोटे बच्चोंको भूखसे पीड़ित देखकर कातर हो गयी। वह दौड़कर गांवसे कई धाइयोंको लायी। अंग्रेजोंकी स्त्रियां बड़ी प्रसन्न हुईं। उन लोगोंने अपने बच्चोंको उन स्त्रियोंके हाथ सौंप दिया। यदि सिपाहियोंको यह खबर मिलती तो ये स्त्रियां निश्चय ही मार डाली जातीं। उन दयालु स्त्रियोंने अपने प्राणोंको हथेलीपर रखकर इन असहाय रमणियोंकी रक्षा की। इस तरह सहायता पाकर ये रमणियां इलाहाबाद पहुंच गयीं।

जो लोग परोपकारके लिये अपने प्राणको भी तुच्छ समझते हैं उनकी तुलना सांसारिक वस्तुओंसे नहीं हो सकती। उनके विचार सदा देवभावसे परिपूर्ण रहते हैं और वे संसारको अपनी असाधारण महानताका परिचय देते हैं। उनके आवि-र्भाव, गौरव तथा अलौकिक कार्य्यसे यह रोगशोक-युक्त संसार सुख-शान्तिका आगार बन जाता है।

भारतकी स्त्रियां किसी समय इसी प्रकार अटल साहस, अविचलित धीरता तथा अपूर्व दयासे युक्त होकर असहायोंकी सहायता करती थीं। उनके इन कार्य्योंके कारण सहृदय समाजमें उनका सदा सम्मान बना रहेगा।

असाधारण साहस

कालचक्रके साथ साथ घूमती हुई उन्नीसवीं शताब्दी भी धीरे धीरे आ पहुंची। देखते देखते भारतवर्षके कई स्थान ब्रिटिश-शासक द्वारा शासित होने लगे। ब्रिटिश कम्पनी धीरे धीरे वणिक-वृत्ति छोड़कर भारत-साम्राज्यके शासन-सम्बन्धी काम करने लगी। गवर्नर जनरल मार्क्विस हेस्टिंग्सके हाथमें भारतवर्षका शासनसूत्र था। इनके शासनकालमें पिण्डारियोंका अधःपतन, नैपालके पार्वत्य प्रदेशमें ब्रिटिश सैनिकोंकी विजयिनी शक्तिका विकास एवं मरहठोंके पराक्रमका नाश हुआ था। लार्ड हेस्टिंग्सके समयमें भारतवर्षकी चारों दिशाओंमें अंग्रेजोंके प्रतापकी घोषणा होने लगी थी।

१८२० ई० के श्रावणका महीना था। इसी समय महाराव किशोरीसिंह कोटाके सिंहासनपर बैठे। नगरके चारों ओर आनन्द–स्रोत प्रवाहित हो रहा था। हाथी घोड़े सजाकर एक ओर खड़े किये गये थे। अश्वारोही सेनिक युद्ध–भेष धारण करके अपूर्व वीरत्वका परिचय दे रहे थे। महाराव किशोरी-सिंह सुसज्जित सभा-मंडपमें रत्नजटित सिंहासनपर बैठकर गवर्नर जनरलके सामने राजधर्म-पालन करनेकी प्रतिज्ञा कर रहे थे। पुण्य-भूमि हारावती वहांके बलवान राजपूतोंकी जय-ध्वनिसे गूँज उठी।

परन्तु यह आनन्द देरतक नहीं रहा। जिस प्रीतिसे वे लोग अपने राजाका आदर करना चाहते थे वह प्रीति बहुत दिनों-तक निबाही नहीं जा सकी। कुछ ही दिनोंके अनन्तर राज्यमें विद्रोहियोंकी संख्या बढ़ने लगी।

कोटाके प्रधान मन्त्री जालिमसिंह भी किशोरीसिंहके विरुद्ध हो गये। किशोरीसिंहके पिता उम्मेदसिंहके समयसे ही जालिम-सिंह इस पदपर थे अतः राज्यका बहुत कुछ भार उनके हाथ सौंपा गया था। इस समय इस वृद्ध मन्त्री एवं महाराव किशोरी-सिंहके बीच मनोमालिन्य हो गया था। द्वेष और अनैक्यने प्रीति एवं एकताके स्थानको ग्रहण कर लिया। ऐसी अवस्थामें दोनों दोनोंके विरुद्ध युद्ध-स्थलमें उपस्थित हुए। आपसके घोर विरोधसे ऐसा मालूम हुआ कि हारावतीके मनुष्योंकी रक्तधारासे सारा प्रदेश रँग जायगा।

एक दिन सवेरे ही जालिमसिंह अपनी सेना लेकर एक छोटी नदीके किनारे किनारे आगे बढ़ रहे थे। किनारेकी भूमि पर्वतकी नाईं आगे बढ़ती गयी थी। इसी उच्च भूमिसे आठ हजार सेना बीस तोपोंके साथ आगे बढ़ रही थी। निकट ही एक ऊँची पत्थरकी दीवार दीख पड़ी। वहींसे असंख्य गोलियाँ आने लगीं और अग्रभागके सैनिक पृथ्वीपर गिरने लगे। गोलियोंकी वृष्टि समाप्त नहीं हुई। कितने सैनिक घायल हो गये और कितने ही सदाके लिये उस क्षुद्र नदीमें विश्राम करने लगे। सैनिकोंने दीवारकी ओर देखा तो केवल

दो वीर पुरुष नजर आये। एक मनुष्य गोली भरता था और दूसरा निसाना लगाता था। आठ हजार सैनिक आगे बढ़ना चाहते थे और केवल दो वीर पुरुष उनकी गति रोक रहे थे। ये दोनों वीर महाराज किशोरीसिंहके सैन्यके थे। ये दोनों प्रभु-भक्त क्षत्रिय वीर स्वामि-भक्तिकी महिमासे महिमान्वित हो इतनी बड़ी सेनाके सामने खड़े थे।

जब विपक्षी आगे नहीं बढ़ सके तब उन लोगोंने दो तोपोंको छोड़नेकी व्यवस्था की। तोपकी ध्वनि सुनकर ये दोनों वीर ऊंची दीवारपर खड़े हो गये। असीम साहस और गम्भीर भावके साथ अपनी तेजस्विताके समुचित सम्मानके लिये इन वीरोंने विपक्षियोंको प्रणाम किया। विपक्षियोंकी ओरसे तोपें दगने लगीं जिससे इन दोनों वीरोंके शरीर क्षत विक्षत हो गये। तो भी ये लोग साहसके साथ लड़ते ही रहे। यद्यपि इन दोनों वीरोंने विपक्षियोंको बहुत हानि पहुंचायी थी तथापि उन लोगोंने उन्हें जीवित रखना चाहा। तोपोंका छोड़ना बन्द कर दिया गया। आज्ञानुसार सैनिक धीरे धीरे इन दोनों वीरोंकी ओर बढ़े। सैनिकोंको आज्ञा दी गयी थी कि दो ही वीर उनसे युद्ध कर सकते हैं। इससे दो ही रोहिले वीर आगे बढ़े। परन्तु शस्त्राघातसे उन वीरोंके शरीर क्षत-विक्षत हो गये थे। लगातार रक्तकी धारायें बहनेसे वे बड़े ही कमजोर हो गये थे। वे इस आक्रमणको रोक न सके और असीम साहसके साथ युद्ध करते करते उसी दीवारपर ही सदाके

लिये सो गये। इस प्रकार प्राण त्याग करके इन वीरोंने अपनी असाधारण तेजस्विताका परिचय दिया। उन्नीसवीं शताब्दीमें द्वारावतीके राजपूत ऐसे ही वीर थे। इसी तरहके साहस एवं वीरत्व प्रकट करके अपनी जन्मभूमिको उन्होंने गौरवान्वित किया था।

सच्ची राजभक्ति

समय-स्रोतके साथ साथ प्रवाहित होती हुई, अठारहवीं शताब्दी अतीत कालके गर्भमें सदाके लिये सो गयी। उसकी जगह उन्नीसवीं शताब्दी अपना अधिकार जमाकर चारों ओर अपना प्रभुत्व स्थापित कर रही है। इसके प्रभावसे बहुत कुछ अवस्थान्तर हो गया है। कितने लोग उन्नतिके सोपानपर पैर रखकर आनन्दके साथ अग्रसर हो रहे हैं और कितने अवनतिके मार्गमें पड़कर शोक और अनुतापसे जर्जरित हो रहे हैं। कितने लोग सुख और सम्पत्तिमें भूलकर आनन्द मना रहे है एवं कितने दुःखकी पीड़ासे हताश हो इधर उधर मारे २ फिर रहे हैं। समयके प्रवाहके साथ साथ भारतवर्षकी भी अवस्था बदल गयी है। भारतवर्षकी स्वाधीनता जाती रही, तत्वज्ञ ऋषिगण शास्त्रानुशीलनसे जो आनन्द पाते थे वह आनन्द भी अब नहीं है। भारतका गौरव दृषद्वती नदीके तटपर चक्रवर्त्ती राजा पृथ्वीराजकी मृत्युके साथ साथ लुप्त हो गया। भारतके मुसलमानोंका पराक्रम औरंगजेबके साथ साथ चला गया। उनका बनवाया हुआ ताजमहल वर्त्तमान है। जुम्मा मसजिद, मोती मसजिद, देवानी खास और देवानी आम अभी शिल्पचातुरीका परिचय दे रहे हैं पर तोभी उनकी वीरतापूर्ण सभी बातें लुप्त हो गयीं। इस समय हिन्दू एवं मुसलमान दोनोंकी एकसी दुर्दशा है। जो व्यापारी भारतवर्षमें

केवल व्यापारकी वस्तुयें लेकर आये थे आज वे यहांके सम्राट् बन गये हैं। इस समय उनके प्रतिद्वन्दी फ्रांसीसी लोग भी उन्हें सिर नवाते हैं।

मुसलमान राजाओंका प्रताप लुप्त हो गया है। अंग्रेज लोग इस समय असाधारण पराक्रमके साथ भारतवर्षके अनेक अंशोंमें अपना प्रभाव स्थापित कर रहे हैं। मार्किस वेलेस्ली भारतके गवर्नरके पदपर प्रतिष्ठित होकर क्षमतामें चन्द्रगुप्त एवं नेपोलियनकी बराबरी कर रहे हैं। भवानीभक्त प्रातःस्मरणीय शिवाजीके प्रतिष्ठित सम्प्रदायके वीरोंने सारे भारतवर्षको अपने अधिकारमें करनेकी चेष्टा की थी। वह सम्प्रदाय कई दलमें विभक्त होकर अपने बलका क्षय करता हुआ अंग्रेजोंका विरोध कर रहा है।

जिन लोगोंका यह कथन है कि अंग्रेजोंने अपने बलसे भारतवर्षपर अधिकार जमाया वे अवश्य ही ऐतिहासिक घटनाओंसे अनभिज्ञ हैं। यदि भारतवासी अंग्रेजोंकी सहायता न करते तो यहांपर वे लोग कदापि राज्य स्थापित नहीं कर सकते। पलासीके आम्रकाननमें भारतवासियोंकी ही सहायतासे अंग्रेजोंको जय-लाभ हुआ, आसाईके प्रशस्त क्षेत्रमें भारतवासियोंने ही अंग्रेजोंको विजयी बनाया, पराक्रमी राजा महावीर यशवन्तराव होलकरको गति रोकनेके लिये एक भारतवासी ही तैयार हुआ था। सन् १८०० ई० में महाराष्ट्रमें पाँच बड़े बड़े राजा थे। उन लोगोंकी राजधानी भिन्न भिन्न

स्थानोंमें थी। पश्चिमघाटके पार्वत्य प्रदेशमें पेशवा लोगोंका आधिपत्य था। पूना उनकी राजधानी थी। गुजरातके अन्तर्गत गायकवारका अधिकार था और इनकी राजधानी बड़ौदा थी। मध्यभारतके अन्तर्गत ग्वालियरमें सिन्धिया एवं इन्दौरमें होल्करकी प्रधानता थी। नागपुरके राघोजी भोंसला पूर्वांशके शासक थे। भारतवर्षके गवर्नर लार्ड मिन्टो मरहठे राजाओंको अपने वशमें करना चाहते थे। पराक्रमी यशवन्तराव होल्कर और अंग्रेजोंमें लड़ाई छिड़ गयी। होल्करने महाराष्ट्रके लुप्त गौरवके उद्धारकी चेष्टासे लड़ाईकी तैयारी की थी। मन्सन् नामक एक अंग्रेज सेनापति इनसे लड़नेके लिये भेजा गया था। इस समय होल्कर प्रतापगढ़ नामक स्थानमें थे। अंग्रेजी सैन्यके आनेकी बात सुनकर उन्होंने शीघ्र ही वह स्थान छोड़ दिया। वे चम्बल नदी पार करके अंग्रेजी सेनाकी ओर बढ़े और पचास मीलकी दूरीपर ठहरे। अंग्रेज सैनिक अचानक निकटमें ही विपक्षियोंकी सेना देखकर पीछेकी ओर हटे। मार्गमें मुकुन्द नामक एक पर्वत उन्नत भावसे खड़ा था। अतः कर्नल मन्सन्ने अपनी रक्षाके निमित्त उस पहाड़को अधिकारमें रखकर प्रत्यावर्त्तन करना प्रारम्भ किया। सेनापति जेनोफनने दस हजार ग्रीस वीरोंके प्रत्यावर्त्तनकी कथाका वर्णन बड़ी कुशलताके साथ अपनी लेखनीसे किया है। इस प्रत्यावर्त्तन-कहानीसे आजतक अदम्य साहस, अविचलित उत्साह एवं अश्रुत पूर्व शक्तिका परिचय मिलता है। यदि भारतवर्षमें कोई जेनोफन

होता तो वह भी सेनापति मन्सन्की प्रत्यावर्त्तन-कहानीका उसी प्रकार वर्णन करता। सेनापतिके प्रत्यावर्त्तन-पथको निष्कंटक रखनेके लिये एक भारतीय वीरने किस प्रकार आत्म-त्यागका परिचय दिया, भयंकर शत्रुके सामने अपने हृदयका रक्त बहाकर उसने किस तरह अपनी प्रतिज्ञा पालन की, सहृदय ऐतिहासिक आश्चर्यके साथ इसका वर्णन करेंगे। यह वीर पुरुष हारावतीके राजपूतोंके सरदार अमरसिंह थे। अमरसिंह वीरत्वकी ज्वलंत मूर्त्ति, आत्म-त्यागका अपूर्व दृष्टान्त एवं पवित्र मित्रताके अद्वितीय आश्रयक्षेत्र थे। प्रतिज्ञा-पालनका इन्हें इतना खयाल था कि विदेशी और विधर्मी अंग्रेजोंकी रक्षाके निमित्त अपने प्राणतक देनेको प्रस्तुत हो गये।

सेनापति मन्सन् मुकुन्द पर्वतकी ओर बढ़ा। प्रत्यावर्त्तनका मार्ग निष्कंटक रखनेके लिये उसने कोटाके राजपूतोंको मार्गमें रख दिया। इन राजपूतोंके नायक अमरसिंहसे कहा गया कि यदि विपक्षी उधर आवें तो उनकी गति रोक दी जावे। वीरवर अमरसिंहने इस अनुरोध-रक्षाकी प्रतिज्ञा की। पीपली नामक एक छोटे गांवके निकट आमजर नामक एक नदी बहती थी। अमरसिंह इसी नदीके उत्तर तटपर पहुंचकर घोड़ेपर चढ़े। अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित एक हजार वीर उनके चारों ओर थे। अमरसिंहने एक सहस्र वीरोंको लेकर निर्भीकताके साथ आमजरके निकटवर्त्ती मार्गको घेर लिया। शीघ्र ही वहां होल्करकी सेना आ पहुंची। देखते देखते दोनों ओरसे गोलियोंकी वृष्टि होने लगी। प्रत्येक

क्षण अनेकों वीर गिर गिरकर आमजरके जलमें प्रवाहित होने लगे। शत्रु लोग और भी निकट आ गये। सहसा एक गोली अमरसिंहके मस्तकमें, दूसरी गोली उनके वक्ष-स्थलमें प्रविष्ट हुई। अमरसिंह पृथ्वीपर गिर पड़े। क्षणभरके पश्चात् उन्हें होश आया। वे एक वृक्षकी डालीके सहारे उठे और हाथमें तलवार लेकर सैनिकोंको उत्साहित करने लगे।

यद्यपि उन्हें दो जगह गहरी चोट लगी थी तथापि उनके प्रशान्त मुखमण्डलपर विषादका आविर्भाव नहीं था; प्रदीप्त युगल नेत्रोंसे भयका विकास नहीं होता था; एवं प्रशस्त ललाटपर दुश्चिन्ताके चिह्न नहीं दीख पड़ते थे। आहत अमरसिंह अपनी तलवारसे विपक्षियोंको लक्ष्य करके हारावलीके राजपूतोंको पहलेकी तरह उत्साहित करते रहे। आहत स्थानोंसे शोणित-स्रोत प्रवाहित हो रहा था अतः धीरे धीरे अमरसिंह निर्बल हो गये। वीरश्रेष्ठ अमरसिंह वहींपर अपनी तलवारसे शत्रुओंको लक्ष्य करते हुए अंग्रेजी-राज्यके निमित्त प्रसन्नताके साथ सदाके लिये सो गये। साढ़े चार सौ राजपूत वीरोंने भी इस वीर पुरुषके चारों ओर होकर युद्ध करते करते अपने प्राण गँवाये। क्षतिग्रस्त होनेके कारण विपक्षी लोग आगे नहीं बढ़ सके। मुकुन्दका पर्वत निरापद रहा। सेनापति मनूसन् अमरसिंहके पराक्रमसे निर्विघ्न प्रत्यावर्त्तन कर सका।

जिस स्थानपर अमरसिंहने अंग्रेजोंकी रक्षाके निमित्त अपने प्राण विसर्जन किये वहां मिट्टीकी वेदीके अतिरिक्त दूसरा कोई

भी चिह्न नहीं है। यदि अंगरेज़ोंके हृदयमें कृतज्ञताकी कुछ भी मात्रा होती तो इस समय वहांपर एक सुरम्य कीर्त्तिस्तम्भ देखनेमें आता।

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

-: का :-

सूचीपत्र

—*—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी माला

-: के :-

स्थायी ग्राहकोंके लिये नियम—

१—प्रत्येक व्यक्ति ॥) आने प्रवेश शुल्क जमाकर इस मालाका स्थायी ग्राहक बन सकता है।

२—स्थायी ग्राहकोंको मालाकी प्रकाशित प्रत्येक पुस्तकें पौने मूल्यमें मिल सकेंगी।

३—स्थायी ग्राहक मालामें प्रकाशित प्रत्येक पुस्तककी एकसे अधिक प्रतियां पौने मूल्यमें मंगा सकेंगे।

४—पूर्व प्रकाशित पुस्तकोंको लेने न लेनेका पूर्ण अधिकार स्थायी ग्राहकोंको होगा, पर नव प्रकाशित पुस्तकोंमेंसे कमसे कम आधे मूल्यकी पुस्तकें ग्राहकोंको लेनी होंगी, अर्थात् एक वर्षमें जितनी पुस्तकें प्रकाशित होंगी, उनमेंसे आधे मूल्यकी पुस्तकें उन्हें नियमानुसार लेनी होंगी; किसी भी हालतमें ६) रु० से कम लागतकी पुस्तकें न हों।

५—पुस्तक प्रकाशित होते ही उसकी सूचना स्थायी ग्राहकोंके

पास भेज दी जाती है। स्वीकृति मिलनेपर पुस्तक वी० पी० द्वारा सेवामें भेजी जाती है। जो ग्राहक वी० पी० नहीं छुड़ावेंगे उनका नाम स्थायी ग्राहकोंकी श्रेणीसे काट दिया जायगा।

६—यदि उन्होंने वी० पी० न छुड़ानेका कोई यथेष्ट कारण बतलाया और वी० पी० खर्च (दोनों बारका) देना स्वीकार किया तो उनका नाम ग्राहकश्रेणीमें पुनः लिख लिया जायगा।

७—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी मालाके स्थायी ग्राहकोंको मालाकी नव प्रकाशित पुस्तकोंके साथ अन्य प्रकाशकोंकी कमसे कम ६) रु० के लागतकी पुस्तकें भी पौने मूल्यमें दी जायंगी। पुस्तकोंकी नामावली नव प्रकाशित पुस्तककी सूचनाके साथ भेजी जाती है।

८—हमारा वर्ष विक्रमीय संवत्से आरम्भ होता है।

मालाकी विशेषतायें

१—सभी विषयोंपर सुयोग्य लेखकों द्वारा पुस्तकें लिखायी जाती हैं।

२—वर्तमान समयके उपयोगी विषयोंपर अधिक ध्यान दिया जाता है।

३—मौलिक पुस्तकें ही प्रकाशित करनेकी अधिक चेष्टा की जाती है।

४—पुस्तकोंको सुलभ और सर्वोपयोगी बनानेके लिये कमसे कम मूल्य रखनेका प्रयत्न किया जाता है।

५—गम्भीर और रुचिकर विषय ही मालाको सुशोभित करते हैं।

६—स्थायी साहित्यके प्रकाशनका ही उद्योग किया जाता है।

१—सप्तसरोज

लेखक—श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

प्रेमचन्दजी अपनी प्रतिभा, मानवभावोंकी अभिज्ञता, वर्णन-पटुता, समाजज्ञान, कल्पनाकौशल तथा भाषाप्रभुत्वके कारण हिन्दी संसारमें अद्वितीय लेखक माने गये हैं। यह कहानियां उन्हींकी प्रतिभाकी ज्योति हैं। इस "सप्तसरोज" में सात अति मनोहर उपदेशप्रद गल्पें हैं, जिनका भारतकी प्रायः सभी भाषाओं-में अनुवाद निकल चुका है। हिन्दी संसारने इसे कितना पसन्द किया इसका अनुमान केवल इसीसे होगा कि यह हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी प्रथमा परीक्षा तथा कई राष्ट्रीय पाठशालाओंके कोर्समें और सरकारी युनिवर्सिटियोंकी प्राइज लिस्टमें है। अर्थात् राजा और प्रजा दोनोंने इसका आदर किया है। थोड़े ही समयमें यह चौथा संस्करण आपकी भेंट है। मूल्य केवल ॥)

२—महात्मा शेखसादी

लेखक—श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

फारसी भाषामें बड़े प्रसिद्ध और शिक्षाप्रद गुलिस्तां और बोस्तांके लेखक महात्मा शेखसादीका बड़ा मनोरंजक और उपदेशप्रद जीवन चरित्र, अनूठा भ्रमण वृत्तान्त विख्यात गुलिस्तां और बोस्तांके उदाहरणों द्वारा आलोचना, चुनी हुई कहावतें, नीतिकथायें, ग़ज़लें, कसीदे इत्यादिका मनोरञ्जक संग्रह किया गया है। इसमें महात्मा शेखसादीका ३०० वर्षका पुराना चित्र भी दिया गया है जिससे पुस्तकके महत्वके साथ साथ इसकी सुन्दरता भी बढ़ गई है। दूसरा संस्करण मूल्य ।=)

३—विवेक वचनावली

लेखक—स्वामी विवेकानन्द

जगत्प्रसिद्ध स्वामी विवेकान्दजीके बहुमूल्य विचारों और अद्भुत उपदेशोंका बड़ा मनोरंजक संग्रह। बड़ी सीधी सादी और सरल भाषामें, प्रत्येक बालक, स्त्री, वृद्धके पढ़ने तथा मनन करने योग्य। दूसरा संस्करण, साफ सुथरी छपाई और बढ़िया चिकने कागजके ४८ पृष्ठोंका मूल्य ।)

४—जमसेदजी नसरवानजी ताता

लेखक—स्वर्गीय पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए०

संसारमें आजकल उसी राष्ट्र या व्यक्तिकी तूती बोल रही है जो उद्योग धन्धे और व्यापारमें बढ़ा चढ़ा है। इन्हीं नरश्रेष्ठोंमें आज भारतका मुख उज्ज्वल करनेवाले श्रीमान् धनकुबेर ताता का नाम है। यह उन्हीं कर्मवीरकी जीवनी बड़ी प्रभावशाली और ओजस्वी भाषामें लिखी गयी है। इस पुस्तकको यू० पी० और विहारके शिक्षाविभागने अपने पारितोषिक-वितरणमें रखा है। दूसरा संस्करण। सचित्र पुस्तकका मूल्य केवल ।)

५—कर्मवीर गांधीके लेख और व्याख्यान

लेखक—गांधीभक्त

इस पुस्तकके सम्बन्धमें कुछ लिखना सूर्यको दीपक दिखाना है। बस, इतना ही समझ लीजिये कि एक वर्षके भीतर पहला संस्करण समाप्त हो गया। दूसरा संस्करण बड़ी सजधजके साथ आपके सामने है। मूल्य १।)

६—सेवासदन

लेखक--श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

हिन्दी-संसारका सबसे बड़ा गौरवशाली सामाजिक उपन्यास, जिसका दूसरा संस्करण प्रायः खतम होनेमें आया है। वह हिन्दीका सर्वोत्तम, सुप्रसिद्ध और मौलिक उपन्यास है। इसकी खूबियोंपर बड़ी आलोचना और प्रत्यालोचना हुई है। पतित सुधारका बड़ा अनोखा मन्त्र, हिन्दू समाजकी कुरीतियां जैसे अनमेल विवाह, त्यौहारोंपर वेश्यानृत्य और उसका कुपरिणाम, पश्चिमीय ढङ्गपर स्त्रीशिक्षाका कुफल, पतित आत्माओंके प्रति घृणाका भाव इत्यादि विषयोंपर लेखकने अपनी प्रतिभाकी वह छटा फैलायी है कि पढ़नेसे ही आनन्द प्राप्त हो सकता है। दूसरा संस्करण। खादी जिल्द मूल्य २॥) एन्टिक कागज मनोहर स्वदेशी कपड़ेकी जिल्दका ३)

७--संस्कृत कवियोंकी अनोखी सूझ

लेखक--पं० जनार्दन भट्ट एम० ए०

संस्कृतके विविध विषयोंके अनोखे भावपूर्ण उत्तमोत्तम श्लोकोंका हिन्दी भावार्थ सहित संग्रह। ऐसी खूबीसे लिखा गया है कि साधारण मनुष्य भी पढ़कर आनन्द उठा सकें। व्याख्यानदाताओं, रसिकों और विद्यार्थियोंके बड़े कामकी पुस्तक है। दूसरा संस्करण मूल्य ।=)

८---लोकरहस्य

लेखक---उपन्यास-सम्राट् श्रीयुक्त बंकिमचन्द्र चटर्जी

यह 'हास्यरस'का अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें वर्तमान धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक त्रुटियोंका बड़े मजेदार भाव और भाषामें चित्र खींचा गया है। पढ़िये और समझ समझकर हँसिये। दिलबहलावके साथ साथ आपको कई विषयोंपर ऐसी शिक्षा मिलेगी कि आप आश्चर्य्यमें पड़ जायंगे। अनुवाद भी हिन्दीके एक प्रसिद्ध और अनुभवी हास्यरसके लेखककी कलमका है। दूसरा संस्करण, बढ़िया एण्टिक कागजपर छपी पुस्तका मूल्य ॥=)

९---खाद

लेखक—श्रीयुक्त मुख्तारसिंह वकील

भारत कृषिप्रधान देश है। कृषिके लिये खाद सबसे बड़ा आवश्यकीय पदार्थ है। बिना खादके पैदावारमें कोई उन्नति नहीं की जा सकती। यूरोपवाले खादके बदौलत ही अपने खेतोंमें दूनी चौगूनी पैदावार करते हैं। इसलिए इस पुस्तकमें खादोंके भेद तथा किन अन्नोंके लिये कौन सी खादकी आवश्यकता होती है इनका बड़ी उत्तमतासे वर्णन किया गया और चित्रों द्वारा भली प्रकार दिखलाया गया है! इस पुस्तकको प्रत्येक कृषक तथा कृषिप्रेमियोंको अवश्य रखना चाहिये। पहला संस्करण खतम हो चला है। दूसरा संस्करण शीघ्र ही निकलेगा। मूल्य सचित्र और सजिल्दका १)

१०—प्रेम-पूर्णिमा

लेखक--श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

प्रेमचन्दजीकी लेखनीके सम्बन्धमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने उनके "सप्तसरोज" और "सेवासदन" का रसास्वादन किया है उनके लिये तो कुछ लिखना व्यर्थ है। प्रत्येक गल्प अपने ढंगकी निराली है। जमींदारोंके अत्याचारका विचित्र दिग्दर्शन कराया गया है। भाषाकी सजीविता, भावकी उत्कृष्टता और विषयकी उच्चताका अनूठा संग्रह देखना हो तो इस ग्रन्थको अवश्य पढ़िये। इसमें श्रीयुत "प्रेमचन्द" जीकी १५ अनूठी गल्पोंका संग्रह है। बीच बीचमें चित्र भी दिये गये हैं। दूसरा संस्करण खादीकी सुन्दर जिल्दका मूल्य २)

११—आरोग्य साधन

लेखक—म० गांधी

बस, इसे महात्माजीका प्रसाद समझिये। यदि आप अपने शरीर और मनको प्राकृत रीतिके अनुसार रखकर जीवनको सुखमय बनाना चाहते हैं, यदि आप मनुष्य-शरीरको पाकर संसारमें आनन्दके साथ कुछ कीर्ति कमाना चाहते हैं तो महात्माजीके अनुभव किये हुए तरीकेसे रहकर अपने जीवनको सरल, सादा, स्वाभाविक बनाइये और रोगमुक्त होकर आनन्दसे जीवन लाभ कीजिये। जिन तरीकोंको महात्माजीने बतलाया है वही यहांका प्राचीन प्रचलित तरीका था जिसके मुताबिक काम न करनेसे हमारी दशा इतनी बिगड़ गई है। तीसरा संस्करण १३० पृष्ठका, दाम केवल ।⊢) मात्र।

१२—भारतकी साम्पत्तिक अवस्था

लेखक—श्रीयुत राधाकृष्ण झा एम०ए०

भारतकी आर्थिक अवस्थाका यदि आप ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, यदि आप यहांके वाणिज्य व्यापारके रहस्यका मार्मिक भेद जानना चाहते हैं, यदि कृषिकी दुर्व्यवस्था और माल-गुजारी तथा अन्यान्य टैक्सोंकी भरमारका रहस्य जानना चाहते हैं, यदि आप यहाँका उत्पन्न कच्चा माल और वह कितनी कितनी संख्यामें विलायतको ढोया चला जाता है, इसके बदलेमें हमें कौन कौनसा माल दिया जाता है, उन आने और जानेवाले मालोंपर किस नियमसे कर बैठाया जाता है, यहां प्रत्येक वर्ष कहीं न कहीं अकाल क्यों पड़ता है ? हम दिनपर दिन क्यों कौड़ी कौड़ीके मोहताज होते जाते हैं ? इत्यादि बातोंको जानना चाहते हैं तो आपका परम कर्त्तव्य है, कि इस पुस्तकको एक बार अवश्य पढ़ें । पहला संस्करण प्रायः खतम हो रहा है । यह पुस्तक साहित्य सम्मेलनकी परीक्षामें है । ६५० पृष्ठकी खादीकी सुन्दर जिल्दका मूल्य ३॥)

१३—भाव चित्रावली

चित्रकार—श्रीधीरेन्द्रनाथ गङ्गोपाध्याय

१००रङ्गीन और सादे चित्र। भावुकताका अनूठा दृश्य।

इस पुस्तकमें एकही सज्जनके १०० चित्र विविध भावोंके दिखलाये गये हैं। आप देखेंगे और आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि ऐं ! सब चित्रोंमें एक ही आदमी ! गङ्गोपाध्याय महाशयने अपनी इस कलासे समाज और देशकी बहुतसी कुरीतियोंपर बड़ा जबर्दस्त कटाक्ष किया है। चित्र देखनेसे मनोरञ्जनके साथ साथ आपको शिक्षा भी मिलेगी। सुन्दर खादीकी सुनहरी जिल्द ४)

१४—राम बादशाहके छः हुक्मनामे

स्वामी रामतीर्थजीके छः व्याख्यानोंका उन्हींकी ज़ोरदार भाषामें मय उनके जीवनचरित्रके संग्रह किया गया है। स्वामीजी के ओजस्वी और शिक्षाप्रद भाषणोंके बारेमें क्या कहना है, जिसने अमरीका, जापान और यूरोपमें हलचल मचा दी थी। इन व्याख्यानोंको पढ़कर प्रत्येक भारतवासीको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उर्दूके शब्दोंका फुटनोटमें अर्थ भी दिया गया है। स्वामीजीकी भिन्न २ अवस्थाओंके ३ चित्र भी हैं। बढ़िया एण्टिक कागजपर छपी है। मूल्य खादीकी जिल्दका १।)

१५—मैं नीरोग हूं या रोगी

ले०—डाक्टर लुई कूने

यदि आप सचमुच स्वस्थ रहकर आनन्दसे जीवन बिताना, डाक्टरों, वैद्यों और हकीमोंके फन्देसे छुटकारा पाना, प्राकृतिक नियमानुसार रहकर सुख तथा शान्तिका उपभोग करना चाहते हैं तो इस पुस्तकको पढ़िये और लाभ उठाइये। मूल्य केवल ।)

१६—रामकी उपासना

ले०—रामदास गौड़ एम० ए०

स्वामी रामतीर्थसे कौन हिन्दू परिचित न होगा। उनके उपदेशोंका श्रवण और मनन लोग बड़ी ही श्रद्धाभक्तिसे करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उपासनाके विषयमें लिखी गई है। उपासना-की आवश्यकता, उसके प्रकार, परब्रह्ममें मनको कैसे लीन करना, सच्ची उपासनाके बाधक और साधक, सच्चे उपासकोंके लक्षण आदि बातें बड़ी ही मार्मिक और सरल भाषामें लिखी गई हैं। ४८ पृष्ठका मूल्य ।)

१७--बच्चोंकी रक्षा

ले०-डाक्टर लुई कूने

डाक्टर लुई कूने जर्मनीके प्रसिद्ध डाक्टर हैं। आपने अपने अनुभवोंसे सब बीमारियोंको दूर करनेका प्राकृतिक उपाय निकाला है। आपकी जलचिकित्सा आजकल घर घरमें प्रचलित है। प्रस्तुत पुस्तक भी आपके ही अनुभवोंका फल है। इस पुस्तकमें डाक्टर साहबने यह दिखलाया है कि बच्चोंकी रक्षाकी उचित रीति क्या है और उसके अनुसार न चलनेसे हम अपनी सन्ततिको किस गर्तमें गिरा रहे हैं। पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। इसकी एक एक प्रति घर घरमें रहना चाहिये। विद्यालयोंकी पाठ्य पुस्तकोंमें रखने योग्य पुस्तक है। मूल्य केवल ।-)

१८---प्रेमाश्रम

लेखक—श्रीयुक्त प्रेमचन्दजी

जिन्होंने प्रेमचन्दजीकी लेखनीका रसास्वादन किया है उनके लिये पुस्तककी प्रशंसा व्यर्थ है। पुस्तक क्या है वर्तमान दशाका सच्चा चित्र है। विविध अवस्थाओं और भावोंको बड़ी खूबीसे संयुक्त किया गया है। किसानोंकी दुर्दशा, जमींदारोंके अत्याचार, पुलिसके कारनामे, वकीलों और डाक्टरोंका नैतिक पतन, धर्मके ढोंगमें सरलहृदया स्त्रियोंका फंस जाना, स्वार्थसिद्धिके कलुषित मार्ग, देशसेवियोंके कष्ट और उनके पवित्र चरित्र, सच्ची शिक्षाके लाभ, गृहस्थीके झंझट, साध्वी स्त्रियोंका चरित्र, सरकारी नौकरीका दुष्परिणाम आदि भावोंको लेखकने इस खूबीसे चित्रित किया है कि पढ़ते ही बनता है, एक बार शुरू करनेपर बिना पूरा किये छोड़नेको दिल नहीं चाहता। ६५० पृष्ठोंसे अधिक है। सुन्दर खादीकी जिल्दका मूल्य केवल ३॥)

१९---पंजाब हरण और दलीप सिंह

लेखक---पं० नन्दकुमार देव शर्म्मा

१९ वीं सदीके आरम्भमें सिक्ख साम्राज्य महाराज रणजीत-सिंहके प्रतापसे समृद्धशाली हो गया था। उनके मरतेही आपसके फूट बैर, कुचक्र, भीतरी घातों, अंग्रेज़ोंके विश्वासघातसे उसका किस प्रकार पतन हुआ, जो अंग्रेज़ जाति सभ्यताकी हामी भरती है, मैत्रीकी डींग हांकती है, उसने अपने परम प्रिय मित्र महाराज रणजीतसिंहके परिवारके साथ किस घातक नीतिका व्यवहार किया इसका वास्तविक दिग्दर्शन इस पुस्तकसे होता है। इससे अंग्रेजोंके सच्चे पराक्रमका भी पूरा पता चलता है। जो अंग्रेज़ जाति आज गली गली ढिंढोरे पीट रही है कि "हमने भारतको तलवारके बल जीता है" उनके सारे पराक्रम चिलियानवालाके युद्धमें लुप्त हो गये थे और यदि सिक्खोंने मिलकर एक बार उसी प्रकार और हराया होता तो शायद ये लोग डेरा डण्डा लेकर कूंच ही कर गये होते। पुस्तक बड़ी खोजसे लिखी गई है। सुन्दर मोटे एण्टिक कागजपर सचित्र २५० पृष्ठोंका मूल्य २)

२०---भारतमें कृषि-सुधार

लेखक--पण्डित दयाशंकर दूबे एम० ए०

आप भारतीय अर्थशास्त्रके धुरन्धर विद्वान--लखनऊ विश्व-विद्यालयके अर्थशास्त्रके प्रोफेसर हैं। आपने प्रस्तुत पुस्तकमें बड़ी खोजके साथ दिखलाया है कि भारतकी गरीबीका क्या कारण है? कृषिका अधःपतन क्यों हुआ? अन्य देशोंकी तुलनामें यहां-की पैदावारकी क्या अवस्था है? और उसमें किस तरह सुधार किया जा सकता है, सरकारका क्या कर्त्तव्य है और वह उसका किस तरह पालन कर रही है। कई चित्र भी दिये गये हैं। मू० १॥)

२१—देशभक्त मैजिनीके लेख

लेखक—पण्डित छविनाथ पाण्डेय बी० ए० एल० एल० बी०

भूमिका लेखक—दैनिक "आज"के सम्पादक बाबू श्रीप्रकाश बी० ए०, एल० एल० बी० बैरिस्टर-एट-ला।

१८ वीं सदीमें इटलीकी क्या दशा थी। परराजतन्त्रके दमन-चक्रमें पड़कर इटली घोर यातनायें भोग रहा था। न कोई स्वतन्त्रतापूर्वक लिख सकता था और न बोल सकता था। कहनेका मतलब यह है कि भारतकी वर्त्तमान दशा इटलीकी उस समयकी दशासे ठीक मिलती जुलती है। इटली एकदम निर्जीव हो गया था। ऐसी ही दशामें देशभक्त मैजिनीने अपने लेखोंका शंखनाद किया। इनका ही प्रभाव था कि इटली जाग उठा और स्वतन्त्र बन गया। ग्रन्थके अन्तमें संक्षेपमें मैजिनीका जीवनचरित्र भी दिया गया है। पृष्ठ संख्या २६०से भी अधिक है। मूल्य २)

२२—गोलमाल

ले०—रायबहादुर कालीप्रसन्न घोष

जिन लोगोंने बंकिम बाबूका चौबेका चिट्ठा और लोकरहस्य पढ़ा है, वे गोलमालके मर्मको भली भांति समझ सकते हैं। राय बहादुर काली प्रसन्न घोषने बंगलाके 'भ्रान्ति विनोद' नामक पुस्तकमें समाजमें प्रचलित बुराइयोंकी—जिसे वर्त्तमान समाजने प्रायः अनिवार्य और क्षम्य मान लिया है—मार्मिक भाषामें चुटकी ली है। प्रत्येक निबन्ध अपने ढंगके निराले हैं। रसिकता और रसीली बातोंसे लेकर दिगन्त मिलन तक समाजकी बुराइयोंकी आलोचनासे भरा है। उसी भ्रान्ति विनोदका यह गोलमाल हिन्दी अनुवाद है। मूल लेखकके भावको ज्योंका त्यों रखनेकी पूरी चेष्टा की गई है। २०० पृ०, मूल्य १॥)

२३--१८५७ ई० के गदरका इतिहास

लेखक--पण्डित शिवनारायण द्विवेदी

सिपाहीविद्रोह क्यों हुआ ? यह प्रश्न अभीतक प्रत्येक भारतवासीके हृदयको आन्दोलित कर रहा है। कोई इसे सिपाहियोंका क्षणिक जोश बतलाते हैं, कोई सिपाहियोंकी बेजड़ बुनियाद, धर्मभीरुता बतलाते हैं और कोई इसे राजनीतिक कारण बतलाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक अनेक अंग्रेज इतिहासज्ञोंकी पुस्तकोंके गवेषणापूर्ण छानबीनके बाद लिखी गयी है। पूरे प्रमाण सहित इसमें दिखलाया गया है कि सिपाहियोंकी क्रान्तिके लिये अंग्रेज अफसर पूर्णतः दोषी हैं और यदि वे चेष्टा किये होते तो लार्ड डलहौजीकी कुटिल और दोषपूर्ण नीतिके रहते भी इतना रक्तपात न हुआ होता। प्रस्तुत पुस्तकसे इस बातका भी पता लगता है कि इस रक्तपातकी भीषणता बढ़ानेमें अंग्रेजोंने भी कोई बात उठा नहीं रखी थी। प्रथम भागके सजिल्द प्रायः ६०० पृष्ठों का मूल्य ३॥) द्वितीय भागके सजिल्द प्रायः ८०० पृ० मूल्य ४॥)

२४--भक्तियोग

ले०--श्रीयुक्त अश्विनीकुमार दत्त

अनुवादक चन्द्रराज भण्डारी 'विशारद'। कौन भगवानका प्रेमसे सेवा नहीं करना चाहता ? कौन भगवद्-भक्तिके रसका आनन्द नहीं लेना चाहता ? आदर्श भक्तोंके जीवनका रहस्य कौन नहीं जानना चाहता ? हृदयकी साम्प्रदायिक संकीर्णताको त्यागकर सुन्दर मनोहर दृष्टान्तोंके साथ साथ उच्च कोटिके धर्मशास्त्रों और विद्वानों, भक्तों और महात्माओंके अनुभवोंसे भक्तिका रहस्य जाननेके लिये इस 'भक्तियोग' ग्रन्थका आदिसे अन्ततक पढ़ जाना आवश्यक है। २६८ पृष्ठका मू० सजिल्द १॥)

२५—तिब्बतमें तीन वर्ष

लेο—जापानी यात्री श्रीइकाई कावागुची

तिब्बत एशिया खंडका एक महत्वपूर्ण अङ्ग है, परन्तु वहांके निवासियोंकी धार्मिकता तथा शिक्षाके अभावके कारण अभी तक वह खंड संसारकी दृष्टिसे ओझल ही था, परन्तु अब कई यात्रियोंके उद्योग और परिश्रमसे वहांका बहुत कुछ हाल मालूम हो गया है। इन्हीं यात्रियोंमें सबसे प्रसिद्ध यात्री कावागुचीकी यात्राका यह विवरण हिन्दी-भाषा भाषियोंके सामने रक्खा जाता है।

इस पुस्तकमें आपको ऐसी ऐसी भयानक घटनाओंका विवरण पढ़नेको मिलेगा जिनका ध्यान करने मात्रसे ही कलेजा कांप उठता है, साथही ऐसे ऐसे रमणीक स्थानोंका चित्र भी आपके सामने आयेगा जिनको पढ़कर आप आनन्दके सागरमें लहराने लगेंगे। आपको आश्चर्य होगा कि तिब्बत भारतके इतना नजदीक होने पर भी अभीतक हमलोग उसके विषयमें कितने अनभिज्ञ थे।

इस पुस्तकमें दार्जिलिङ्ग, नैपाल, हिमालयकी बर्फीली चोटियां, मानसरोवरका रमणीय दृश्य तथा कैलाश आदिका सविस्तर वर्णन पढ़कर आप बहुतही आनन्दलाभ करेंगे।

इसके सिवा वहाँके रहन सहन, विवाहशादी, रीति-रिवाज एवं धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक अवस्थाओंका भी पूर्ण हाल विदित हो जायगा। यह पुस्तक इस ढङ्गसे लिखी गई है कि आप एक बार आरम्भ करनेके बाद बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकेंगे। पढ़नेमें उपन्याससे भी अधिक आनन्द मिलेगा। पुस्तक सुन्दर चिकने कागजके प्रायः ५२५ पृष्ठकी है। कावागुचीका चित्र भी दिया गया है मूल्य २।) सजिल्द २॥=)

२६---संग्राम

ले०—उपन्यास सम्राट् श्रीयुक्तप्रेमचंदजी

मौलिक उपन्यास एवं कहानियां लिखनेमें श्रीयुक्त प्रेमचन्दजीने हिन्दीमें वह नाम पाया है जो आजतक किसी हिन्दी लेखकको नसीब न हुआ। उनके लिखे 'प्रेमाश्रम' एवं 'सेवासदन' की प्रायः समस्त हिन्दी एवं अन्य भाषाके पत्रोंने मुक्तकंठसे प्रशंसा की है।

इन उपन्यासोंको रचकर उन्होंने हिन्दी-संसारमें एक नवयुग उपस्थित कर दिया है, और नये तथा पुराने लेखकोंके सामने भाषाकी प्रौढ़ता तथा मौलिकता, विषयकी गंभीरता और रोचकताका एक आदर्श रख दिया है। जिससे आज हिन्दीके लेखकों और पाठकोंमें विचार-क्रान्ति उत्पन्न हो गई है तथा विचारोंमें शुद्धता और पवित्रता आगई है।

उन्हीं प्रेमचन्दजीकी कुशल लेखनी द्वारा यह 'संग्राम' नाटक लिखा गया है। यों तो उनके उपन्यासोंमें ही नाटकका मजा आ जाता है फिर उनका लिखा नाटक कैसा होगा यह बतानेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उनकी लेखनी मनोभावोंको प्रकट करनेमें सिद्धहस्त तो है ही नाटकमें तो मनोभावोंका ही संग्राम होता है फिर उसका क्या कहना। प्रस्तुत नाटकमें मनोभावोंका जो चित्र उन्होंने खींचा है वह आप पढ़कर ही अन्दाजा लगा सकेंगे। बढ़िया-एन्टिक कागजपर प्रायः २७५ पृष्ठोंमें छपी पुस्तकका मूल्य केवल १॥)

२७--चरित्रहीन

लेखक--श्रीयुक्त शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बंगलामें श्रीयुत शरत् बाबूके उपन्यास उच्च कोटिके समझे जाते हैं। मनुष्यके चरित्र-चित्रण करनेमें शरत् बाबूकी लेखनी अद्वितीय है। उनके लिखे उपन्यास पढ़ते समय आंखोंके सामने घटना स्पष्ट रूपसे भासने लगती है और यही जान पड़ता है कि मानों पढ़नेवाला वहीं मौजूद है।

चरित्रहीनका विषय नामसे ही प्रकट हो जाता है। इसमें दिखाया गया है कि युवा पुरुष बिना पूर्णदेख रेखके किस तरह चरित्रहीन हो बैठते हैं। साथ ही यह भी दिखाया गया है कि सच्चा स्वामिभक्त सेवक किस तरह दुर्व्यसनके पंजोंसे अपने मालिकको छुड़ा सकता है और अपने ऊपर आनेवाले कष्टकी कुछ परवा न कर, मालिककी भलाईका हमेशा खयाल रख कैसे उसे सच्चरित्रताके सिंहासनपर बिठा सकता है।

इसके अतिरिक्त पति-पत्नीमें प्रेमका होना कितना सुखद है, पतिव्रता स्त्री अपने पतिकी सेवा किस प्रकार कर सकती है और सच्चरित्र पुरुष अपनी सती सहधर्मिणीको हृदयसे कितना प्यार कर सकता है तथा अच्छे घरकी विधवा दुष्टाके बहकावे-में पड़कर कैसे अपने धर्मकी रक्षा कर सकती है, इन सब बातोंका भी इसमें पूर्णरूपसे दिग्दर्शन कराया गया है।

उपन्यास इतना रोचक और शिक्षाप्रद है कि एक बार हाथमें लेनेपर पुनः समाप्त किये बिना छोड़नेको जी नहीं चाहता।

पृष्ठ संख्या ६६४ सुन्दर खादीकी जिल्द सहित मूल्य ३)

हिन्दी पुस्तक एजेंसी-मालामें

शीघ्र निकलनेवाली पुस्तकोंका संक्षिप्त परिचय

२९—आकृति निदान

अनुवादक—श्रीरामदास गौड़ एम० ए०

जर्मनीके प्रसिद्ध जलचिकित्सक डा० लूई कूनेकी एक प्रसिद्ध पुस्तकका बड़ी सरल भाषामें अनुवाद। पचासों चित्र देकर पुस्तकका विषय बड़ी सरलतासे समझाया गया है। सुन्दर एण्टिक कागजपर छप रही है।

३०—वीर केशरी शिवाजी

ले०—पं० नन्दकुमारदेव शर्म्मा

वीरवर शिवाजीके सम्बन्धमें अभीतक कोई ऐसी प्रामाणिक और खोजके साथ पुस्तक नहीं लिखी गयी जिसमें अन्य भाषाके लेखकोंको मुंहतोड़ उत्तर दिया गया हो। हिन्दू धर्मकी रक्षा किस वीरता धीरता और नीतिज्ञतासे शिवाजीने की थी, इसे पढ़कर आप मुग्ध हो जायंगे। सुन्दर एण्टिक कागजपर छप रही है।

३१—भारतीय वीरता

यह पुस्तक क्या है भारतीय वीरता, भारतीय देशभक्ति, भारतीय सहनशीलता, एवं भारतीय गौरवका चित्र है जहां आप प्रातः

स्मरणीय महाराणा प्रतापसिंहकी धीरता और वीरताको पढ़कर मुग्ध होंगे, जहां वीरकेशरी शिवाजी और गुरु गोविन्दसिंह तथा महाराजा रणजीतसिंहकी देशभक्ति, नीतिज्ञता और समयके अनुसार कार्यकुशलतापर उछल पड़ेंगे, जहां भारतीय रमणियों, ललनाओंका ओजपूर्ण आत्मत्याग और पातिव्रत धर्मके भावपर मर मिटनेके सीनको देखकर आपका कलेजा कांप उठेगा; वहां आपको अकबरकी लालसाभरी कूटनीतिज्ञता, औरंगजेबकी द्वेषपूर्ण वाचालतापर आंसू गिराने पड़ेंगे। यह पुस्तक क्या है भारतके १५००—१८५७ तककी पुरानी ऐतिहासिक घटनाओंका निचोड़ है। पुस्तकमें जहां तहां चित्र देकर इसकी उपयोगिता और मनोहरता बहुत बढ़ा दी गयी है। पुस्तक सुन्दर खादीकी रङ्गीन जिल्दकी होगी सुन्दर एण्टिक कागजपर छप रही है।

३२—राागिणी

अ०—हिन्दी नवजीवनके सम्पादक पं० हरिभाऊ उपाध्याय

यह पुस्तक मराठी भाषाके प्रसिद्ध इसी नामके उपन्यासका अनुवाद है। यह पुस्तक क्या है एक गद्य काव्य है। मराठीमें तो इसके कई संस्करण हो चुके हैं। यह उपन्यास अपने ढंगका एक ही है। ५००-५५० पृष्ठमें समाप्त होगा। सुन्दर चिकने कागजपर बड़े सजधजसे छापा जा रहा है।

मौलाना रूम और उनका काव्य

ले० जगदीशचन्द्र वाचस्पति

फारसी भाषामें मसनवी रूम बड़ा उत्कृष्ट ग्रन्थ है। फारसीमें अध्यात्म विषयोंपर यह ग्रंथरत्न अपने ढंगका एक ही है। इसके अधिकांश सिद्धान्त भारतीय वेदान्तसे बहुत मिलते जुलते हैं।

इस पुस्तकमें लेखकने मौलाना रूमके विचारोंका आर्षग्रन्थोंसे जहां तहाँ बड़ी सुन्दरतासे मुकाबिला किया है। हिन्दी भाषामें यह अपने ढंगकी एकही आलोचनात्मक पुस्तक है।

महात्मा गांधीजीके आदेशानुसार राष्ट्रीय शिक्षालयोंके लिये संगृहीत

हिन्दीके अनुभवी विद्वान

अ० रामदास गौड़ एम० ए० द्वारा सम्पादित

राष्ट्रीय शिक्षावली

पहली पोथी--(छोटी) बच्चोंको अक्षर ज्ञान करानेवाली। सचित्र पृ० सं० २० मूल्य)॥

पहली पोथी--(बड़ी) जिसमें नये ढङ्गसे अक्षर ज्ञान करानेकी रीति बतायी गयी है। ककहरेके चित्र भी दिये गये हैं। जिससे बच्चोंकी मनोरञ्जकता बढ़ गयी है। मूल्य =)

दूसरी पोथी—अक्षर ज्ञान हो जानेपर पढ़ानेकी पोथी। जीवन चरित्र, इतिहास, नीति और कविताका सचित्र संग्रह पृ० सं० ६४, मूल्य ।)

तीसरी पोथी—राष्ट्रीय पाठशालाओंके अपर प्राइमरी स्कूलोंमें पढ़ानेकी। जिसमें इतिहास, जीवनी, नीति, वस्तुपाठ और कविताओंका सचित्र संग्रह है। पृ० सं० १०४ मूल्य ।=)॥

चौथी पोथी—इस पुस्तकमें शिक्षाप्रद गल्पें, महापुरुषोंके जीवनचरित्र, विज्ञान, नीति, कृषि, स्वास्थ्यरक्षा, प्राणिशास्त्र, उद्योगधन्धे आदि बालकोपयोगी विषयोंका सचित्र वर्णन है। पृ० सं० १५२ मूल्य ॥)

पांचवीं पोथी—राष्ट्रीय पाठशालाओंकी मिडिल कक्षाके लिये। इसमें स्वास्थ्य-संगठन, विज्ञान, आदर्श जीवनचरित्र, राजनीति, स्वावलम्बन-विषयक पाठों और सुन्दर २ नीतिपूर्ण कविताओंका अनुपम और सचित्र संग्रह किया गया है। पृ० सं० २४०, मूल्य ॥)

छठी पोथी—इसके पढ़नेसे विद्यार्थियोंको अपना जीवन आदर्श बनानेमें विशेष सहायता मिलती है। प्राचीन साहित्यका पूरा परिचय मिलता है। अर्थशास्त्र, जीवनचरित्र, विज्ञान और नीति-विषयक पाठोंका इसमें संग्रह है। रोचक कविताओंका संग्रह बड़ी सावधानीसे किया गया है। उनमें प्राकृतिक वर्णन, जातीय गान और स्वदेश-प्रेम विषयक अनुपम चित्र खींचा गया है। पृ० सं० ३२०, मूल्य १)

असहयोग प्रचारका सुलभ उपाय!

कैसे? "हिन्दी पुस्तक एजेंसी कलकत्ता"

से प्रकाशित सुलभ मूल्यके छोटे छोटे ट्रैक्टोंके प्रचारसे। जिनकी कई लाख प्रतियां हाथोंहाथ बिक चुकी हैं। कांग्रेस, खिलाफत तथा अन्य देशोपयोगी संस्थाओंको उन्हें मंगाकर असहयोग-प्रचारमें सहायता करनी चाहिये। कमीशन काफी दिया जाता है।

जबलपुरका कर्मवीर अपने २० मईके अंकमें लिखता है:—

"ये एक पैसे और दो पैसेकी पुस्तकें आकर्षक तथा सस्ती होनेके कारण प्रचारके लिये बहुत उपयोगी हैं।"

असहयोग-मालाकी पुस्तकें

१—असहयोग या तर्कतअल्लुक—महात्माजीका मद्रासमें भाषण, मद्रास मेलके प्रतिनिधिसे बातचीत, तीन मोह -)
२—सूतके धागेमें स्वराज्य—महात्माजीका स्वदेशीपर भाषण)॥
३—असहयोग अर्थात् आत्मशुद्धि—मादक वस्तुओंपर महात्माजीके विचार)।
४—अदालतोंका इन्द्रजाल—अदालतोंकी निस्सारतापर म० गांधी, पं० नेहरू आदिके विचार)॥
५—चरखेकी तान—गद्यपद्यमय चरखेपर कबीरदासजी आदि महात्माओंके गीत)।
६—हिन्द स्वराज्य—म० गान्धीकृत ।-)
७—काशीमें महात्माजी—३ चित्र, महात्माजी और बा० भगवानदासजीके विचार)॥
८—गोरखपुरमें गांधीजी—४ चित्र, महात्माजी और मौ० मुहम्मद अलीकी वक्तृतायें)॥
९—लालफीता—"प्रेमचन्दजी" की अनूठी असहयोग कहानी -)
१०—कांग्रेस—३ चित्र, नागपुर कांग्रेसमें असहयोगपर भाषण -)
११—गांधी बाबाके चरित्र -ले० प्रा० रामदास गौड़ एम० ए० -)
१२—चरखेकी गूंज—चरखेपर गानेका गीत)।
१३—वकीलकी रामकहानी—गीत)।
१४—सत्याग्रहका अठवारा—सत्याग्रह सप्ताहमें बा० भगवानदासजीका भाषण)॥
१५—स्वराज्यके फायदे—"प्रेमचन्दजी" के भावमय विचार -)
१६—कवीन्द्र और महात्माजी—असहयोग-सिद्धान्तपर कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्माजीकी लिखापढ़ी -)
१७—ब्रह्मचर्यपर महात्माजी)।

१८—सारा भारत एक है—स्वराज्य प्राप्तिका मूल कारण भारतीय एकता है, इसीपर महात्माजीके विचार)॥

१९—लागडांट—"प्रेमचन्द्जी" की एक मनोहर कहानी)॥

२०—चरखेके गीत—राष्ट्रीय पु० के लिये चरखेपर रचित गीत)॥

२१—असहयोग वीणा)॥।

२२—सिद्धान्तके लिये बलिदान—असहयोग सिद्धान्तपर दृढ़ रहनेके लिये एक बालककी मृत्यु और उसके पिताका भाषण)॥

२३—कांग्रेसका जन्म और विकास—राष्ट्रीय महासभाका संक्षिप्त इतिहास और उसके पूर्वकालके राजनैतिक वायुमण्डलका दिग्दर्शन ≠)

२४—नेताओंकी तीर्थयात्रा और उनके सन्देश—नेताओंके हृदयग्राही सन्देशोंका संग्रह जो जेल जाते समय आप लोगोंके लिये छोड़ गये हैं—नेताओंके ८ चित्र भी हैं ≠)

२५—अछूतोंपर महात्माजी—अछूतोंके उद्धारके लिये महात्माजीकी गवेषणापूर्ण युक्तियां)॥

२६—स्वदेशी आन्दोलन—स्वदेशी आन्दोलनके क्रमागत विकास और व्यापारियोंकी प्रतिज्ञाओंका विवरण ।)

२७—महात्माजीपर राजविद्रोहका अभियोग—जिस मुकदमेमें महात्माजीको ६ सालकी सजा हुई है उसीका संक्षिप्त विवरण)॥

२८—खद्दीपर विज्ञानाचार्य—खद्दरपर आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रायके गवेषणापूर्ण विचार)।

२९—हृदय उद्गार—महात्माजीकी जेलयात्रापर कवितायें)।

३०—सत्याग्रह सप्ताह-काशीमें मालवीयजीका मर्मभेदी भाषण ≈)

सस्ती ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके प्रकाशित करनेका एकमात्र उद्देश्य यही है कि उपयोगी और अलभ्य पुस्तकोंको हिन्दीके गरीब और उत्सुक पाठकोंके पास स्वल्प और सुलभ मूल्यमें पहुंचाना।

(१) आनन्द मठ

ले०—उपन्यास सम्राट् बङ्किमचन्द्र चटर्जी

यह उपन्यास सम्राट् बङ्किमचन्द्र चटर्जीकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। मातृभूमिके प्रति उत्कट अनुराग और प्रेमका यह प्रत्यक्ष स्वरूप है। इस पुस्तकसे नव बङ्गालने कैसा उत्साह ग्रहण किया था उसका अनुमान केवल १६०० के पूर्व और वर्त्तमान बङ्गालकी तुलना करनेसे ही लग सकता है। इसकी अपार उपयोगिता देखकर राजा कमलानन्दसिंहने इसे अनुवादितकर छपवाया था जो इस समय प्राप्य नहीं है। और जो एकाध संस्करण निकले हैं वे अपूर्ण और महंगे हैं। इसीसे केवल प्रचारके ख्यालसे सस्ते दरपर यह पुस्तक निकाली गई है, अर्थात् २८ लाइनके प्रायः २०० पृष्ठोंका मूल्य केवल ॥।) मात्र रखा गया है।

(२) पाश्चिमीय सभ्यताका दिवाला

ले०—ई० एस० स्टोक्स

यह पुस्तक "सस्ती ग्रन्थमाला"का दूसरा पुष्प है। आज यूरोपीय संसारमें रंगका जो प्रश्न उठ रहा है और इसके कारण संसारमें जो अशान्ति मची हुई है उसीका दिग्दर्शन इस

पुस्तकमें कराया गया है, और साथ ही यह भी बताया गया है कि इस विपत्तिकालमें भारतका क्या कर्त्तव्य है और संसार इस रंगीले रोगसे कैसे मुक्त हो सकता है। मूल्य ।)

(३) संसारका सर्वश्रेष्ठ पुरुष

अ०—पं० छविनाथ पाण्डेय बी० ए० एल० एल० बी०

यह पुस्तक "सस्ती ग्रन्थ माला" का तीसरा पुष्प है। इसमें महात्मा गांधीके प्रति विदेशियोंके क्या विचार हैं, उनके प्रति उनके क्या भाव हैं, और उन्हें वह किस दृष्टिसे देखते हैं; इन विचारोंको पढ़कर हम भारतीयोंको अपने हृदयोंपर हाथ रखकर विचार करना चाहिये कि क्या वाक़ई महात्मा गांधीके प्रति हमारे हृदयमें सच्ची भावनायें हैं। क्या उनके उपदेशोंका सच्चे हृदयसे हम पालन कर रहे हैं ? यदि नहीं तो देखिये और विचार कीजिये और अपने कर्तव्यको देश तथा महात्माजीके प्रति पालन कीजिये। मूल्य १५० पृष्ठकी पुस्तकका केवल ॥)

(४) भक्ति

ले०—स्वामी विवेकानन्द जी

छप रही है।

बाल-विनोद पुस्तकमाला

हिन्दी भाषामें बालक और बालिकाओंके लिये उपयोगी पुस्तकों-की इतनी कमी है कि पाठशालाओं और विद्यालयोंमें पारितोषिक वितरणके समय सुन्दर, सचित्र और उपदेशप्रद पुस्तकें मिलती ही नहीं। जो दो चार पुस्तकें हैं भी वह अब इतनी पुरानी हो गयी हैं कि नहींके बराबर हैं।

हिन्दी पुस्तक एजेन्सीके संचालकोंने इस कमीकी तरफ खास तौरसे ध्यान दिया है। और विचार किया है कि शिक्षाप्रद तथा उपयोगी पुस्तकें सुन्दर सचित्र बड़े टाईपोंमें अच्छे मोटे कागजपर छापी जायँ। अतएव इसकी पहली पुस्तक "समुद्रकी सैर" बड़े सजधजसे शीघ्र निकलनेवाली है।

(१) समुद्रकी सैर

इस पुस्तकमें आपको तथा आपके घरके छोटे छोटे बालक बालिकाओंको समुद्रके सारे रहस्य मालूम हो जायँगे। बड़ोसे बड़ी मछलियोंका वर्णन, समुद्रमें होनेवाले पेड़ और विचित्र विचित्र ढंग ढांचेके पौधे, तरह तरहके सीप, मोती, शंख इत्यादि समुद्र तटके पशु पक्षियोंका आश्चर्यजनक वर्णन पढ़कर आप आनन्दित हो जायंगे। तथा बालक बालिकाओंके ज्ञानकी भी वृद्धि होगी। पुस्तकमें ३०—३५ चित्र दिये गये हैं जिससे पुस्तकको उपयोगिता बहुत बढ़ गयी है। पुस्तकपर सुन्दर मनमोहन तीनरंगा कवर दिया गया है। मूल्य लगभग ॥≈)

(२) चुने हुए फूल

उपयुक्त अलंकारोंसे विभूषित छोटी छोटी मनोहर, शिक्षाप्रद और मनमोहक कहानियोंका सचित्र संग्रह। शीघ्र छपेगी।

नन्द ग्रन्थ माला

उद्देश्यः—केवल लागत मात्रमें प्रचारके लिये पुस्तकें प्रकाशित करना।

श्रीमद्भगवद्गीता

मूल डबल क्राउन १६ पेजी दैनिक पाठ करने योग्य मोटे बंबइया टाइपोंमें बड़ी सुन्दरतासे छापी गई है। प्रचारकी दृष्टिसे मूल्य केवल लागतमात्र रक्खा गया। भक्तजनोंको मंगाकर अवश्य प्रचार करना चाहिये। जिल्द सहितका मूल्य ।≈)

रामायण

गोस्वामी तुलसीदासजी कृत

शुद्ध और क्षेपक रहित अनेक हस्ताक्षर लिखित प्रतियोंसे संशोधन कराके छापी गयी है।

मनुस्मृति भाषाटीका सहित

अनेक प्रामाणिक संस्कृत टीकाओंके आधारपर शुद्ध टीका और सरल भाषा कराके छापी गयी है।

हमारी अन्य उपयोगी पुस्तकें

हिन्द-स्वराज्य

ले० महात्मा गांधी

यह वही पुस्तक है जिसके आधारपर आज असहयोग आन्दोलन चल रहा है और जिसके मूल सिद्धान्तपर संसारमें अहिंसा, आत्मज्ञान और शान्ति स्थापित हो सकती हैं और संसारमें सच्ची और प्राकृतिक शान्तिका राज्य हो सकता है।

इस पुस्तकमें महात्माजीने अपने दृढ़ नैतिक विचारोंका संकलन किया है। यह ऐसी पुस्तक है कि मनुष्यमात्रको पढ़कर आत्मिक, धार्मिक और राजनीतिक उन्नति करनी चाहिये

भाषा बड़ी सरल है। चौथा संस्करण खतम हो रहा है। प्रचारकी दृष्टिसे ६४ पृष्ठकी बढ़िया चिकने कागजपर, महात्माजीके चित्र सहित मूल्य केवल ।-)

कांग्रेसका जन्म और विकास

ले० सिद्धनाथ माधव लोंढे

जिस समय अंग्रेज वणिक केवल तराजू लेकर कराचीके बन्दरमें व्यापार करनेके लिये आये थे उस समयसे लेकर आज तककी मुख्य मुख्य घटनाओंका संक्षिप्त वर्णन करते हुए १८८५ की पहली कांग्रेससे लेकर १९२० की काँग्रेसतकका संक्षिप्त परिचय बड़ी मनोहर और ओजपूर्ण भाषामें लेखकने दिया है। इस छोटीसी पुस्तिकामें भारतीय जातीयताके संगठनका दिग्दर्शन कराया गया है। पुस्तक पढ़ने और विचार करने योग्य है। मूल्य केवल ≈)

विक्रयकला अथवा माल बेचनेकी रीति

ले० गङ्गाप्रसाद भौतिका एम० ए० बी० एल०

आज कल व्यापार और व्यवसायकी तरफ लोगोंका ध्यान आकृष्ट हो रहा है। परन्तु व्यापारके लिये दूकानदारी मुख्य चीज है। दूकानदारी भी एक कला है जिसपर अंग्रेजी भाषामें सैकड़ों पुस्तकें हैं। पाश्चात्य देशकी सभी युनिवर्सिटियोंमें इस विषयकी अलग शिक्षा दी जाती है। पर भारत ऐसे पराधीन देशमें न तो कोई स्कूल है न भारतीय भाषाओंमें इस विषयकी अच्छी पुस्तकें हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें सरल भाषामें माल बेचनेके प्रत्येक अंगोंका दिग्दर्शन कराया गया है। मूल्य ।)

नेत्रोन्मीलन

ले० पं० श्यामबिहारी मिश्र एम०ए० और शुकदेव बिहारी मिश्र बी० ए०

यह नाटक क्या है वर्त्तमान भारतके शासनकी त्रुटियोंका जीता जागता चित्र है। इसमें आपको पुलिसकी चालबाजियों, वकीलोंके हथकंडों और अदालत और न्यायका ढोंग इत्यादि बातें एक अनुभवी डिप्टी कलक्टर द्वारा लिखी पुस्तकसे मालूम हो जायंगी। मूल्य कागजकी जिल्दका ।≤)

ज्योतिष शास्त्र

ले० दुर्गाप्रसाद खेतान एम० ए० बी० एल०

इस पुस्तकमें चित्रों द्वारा आकाश सम्बन्धी सारी बातें, जैसे पृथ्वी और उसकी गति, चन्द्र और उसकी गति, सूर्य और ग्रहोंका वर्णन, तथा नक्षत्र इत्यादिका वर्णन बड़ी रोचकताके साथ किया गया है। पुस्तककी रोचकता और सुन्दरता ४६ चित्रोंसे और भी बढ़ गयी है। सजिल्दका मूल्य केवल ॥)

भारतकी स्वतन्त्रता

ले० भारतहितैषी मि० सी० एफ० एण्डरूज

यह पुस्तिका नहीं भारतकी स्वतन्त्रताकी कुञ्जी है। इसमें मि० एण्डरूजने बड़े प्रामाणिक विचारों और अंग्रेज इतिहासवेत्ताओंके वाक्योंसे सिद्ध किया है कि "अंग्रेजोंके शासनमें भारतका त्राण कभी नहीं हो सकता" और "ऐसे क्रमिक विकास रिफार्म आदि सब केवल मायाजाल हैं जो भारत

को स्वतन्त्रा दिलाना तो दूर रहा बल्कि उसे गुलामीके बन्धनमें और जकड़ रखेंगे।" यह एक अंग्रेज महानुभावके विचार हैं जिनपर प्रत्येक भारतवासीको ध्यान देना चाहिये। मूल्य ।)

देशी करघा

अर्थात् चरखा करघा शिक्षक। जिस कुटिल नीतिसे भारतका कलाकौशल और व्यापार नष्ट किया गया है उसी नीतिको ढीली करनेके लिये महात्मा गान्धीने चरखे और करघेका उद्धार किया है और अब देशके गरीब और निरुद्यमी जनोंके सामने एक कार्य रखा है जिससे देशोन्नतिके साथ साथ गरीबोंका सवाल भी हल होता है। चरखे और करघेके सम्बन्धमें हिन्दीमें कोई भी अच्छी पुस्तक नहीं थी। इस पुस्तकको लेखकने बड़ी मेहनतसे सचित्र लिखा है। इस पुस्तकमें कपास और उसकी किस्में, कपासको ओटना, धुनना, सूत कातना और सूतोंके नम्बर तथा उनका हिसाब, ताना तनना और माड़ी देना और माड़ीकी तरह तरहकी किस्में, कितनी माड़ी, किस चीजकी माड़ी किस नम्बरके सूतमें उपयुक्त होगी, करघा, करघेके प्रत्येक अंगकी बनावट, उनके स्थान, उनका काम इत्यादि बड़ी सुगमतासे तरह तरहके चित्रों द्वारा समझाया गया है। बिनना और बिनावटकी तरज इत्यादि भी बतलाई गयी है। हिन्दीमें अभीतक इस विषयकी ऐसी उपयोगी पुस्तक नहीं निकली है।

मूल्य कितने ही चित्रों सहित केवल ॥=)

वस्त्र व्यवसायी और स्वदेशी आन्दोलन

आज विदेशी वस्त्रोंसे देशकी कैसी हानि हो रही है इसके

बतानेकी अब आवश्यकता नहीं है। परन्तु इस विषयपर देश-वासियोंको विचार करनेकी आवश्यकता है। इस पुस्तकमें महात्मा गांधीके स्वदेशी आन्दोलनपर दिये हुए व्याख्यानोंके साथ साथ विदेशी वस्त्रोंकी अवनतिका संक्षिप्त इतिहास भी दिया गया है। मूल्य ।-)

सद्दर्शन

अध्यात्म जैसे गूढ़ विषयका बड़ी सरल और सरस भाषामें कथा और कहानियों द्वारा निरूपण किया गया है। अध्यात्मके गूढ़ तत्वोंको चन्द्रकालकी तरह इस पुस्तकमें भी दिखलाया गया है। मूल्य सजिल्द १।)

जेवनार

लेखिका सत्यवती द्विवेदी गजपुरी। पाकशास्त्रपर आजकल कई पुस्तकें देखनेमें आती हैं परन्तु प्रायः सभी पुस्तकें पुरुषों द्वारा ही लिखी गई हैं। परन्तु जेवनार एक अनुभवी गृहिणी द्वारा लिखी जानेके कारण सर्वाङ्ग सुन्दर एवं अधिक उपयोगी है। दूसरी बात यह है कि इस पुस्तकमें केवल निरामिष भोजन-की विधियां ही लिखी गयी हैं जिससे आपके घरकी बालिकाएं और बहनें सरलतासे इस कलाको सीख सकती हैं। ऐसी सुन्दर और उपयोगी पुस्तकका मूल्य केवल ।-)

रणधीर और प्रेममोहिनी।

ले० लाला श्रीनिवासदास

यह नाटक क्या है हिन्दी भाषाका एक सरस और मनोहर चित्र है। भाषाकी छटा और भावकी भावुकता देखनी हो तो इस पुस्तकको अवश्य पढ़िये। भाव और भाषापर मुग्ध होकर ही

हिन्दू विश्व विद्यालयके संचालकोंने अपने यहां कोर्समें रखा है। पुस्तकका यह तीसरा संस्करण सुन्दर एंटिक कागजपर छपा है। १५० पृष्ठकी पुस्तकका दाम केवल ॥=)

नेताओंकी तीर्थयात्रा और उनके सन्देश

भारतीय स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये देशके नेताओंने जो स्वार्थत्याग और कष्ट सहनकर देशके सामने आदर्श रखा है और स्वराज्य मार्गको साफ करनेके लिये नौकरशाही द्वारा अहिंसात्मक लड़ाईमें जेलयात्रा की है और जेल जाते समय जो उपदेश देशको दिया है उन्हीं उपदेशोंका यह बड़ा मनोहर और सचित्र संग्रह है। नेताओंके चित्र दे देनेसे पुस्तककी सुन्दरता भी बढ़ गयी है। मूल्य केवल =)

भजनमाला

हिन्दीके प्राचीन सोलह भक्तों जैसे कबीर, तुलसी, सूर, मीराबाई सुन्दरदास इत्यादिके सुन्दर सुन्दर भक्तिरस पूर्ण भजनोंका अति उत्तम और मनोहर संग्रह उनके संक्षिप्त परिचय सहित किया गया है। मूल्य।)

ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली

खड़ी बोली और ब्रजभाषापर दो धुरन्धर विद्वानोंकी बड़ी मजेदार आलोचना मूल्य =)

बाल भजनमाला

छोटे छोटे बच्चोंको स्कूलों और पाठशालाओंमें प्रार्थना करनेके लिये बड़ा सुन्दर, सचित्र संग्रह है। मूल्य -)

व्यापारियोंको सुभीता

व्यापारियोंको कलकत्तेके सभी पुस्तक प्रकाशकोंको जैसे हरिदास एण्ड कम्पनी; आर० एल० बर्मन, आर० डी बाहिती इत्यादिकी पुस्तकें एक ही जगहसे मँगानेमें बड़ा लाभ होगा। आज कल रेलभाड़ा पोस्टेज इत्यादि बहुत बढ़ गया है इसलिये एक जगहसे पुस्तकें मंगानेसे बड़ा लाभ रहेगा। कमीशन भी खूब उचित दिया जाता है। हमारे यहां स्कूली पुस्तकें, नक्शे चार्ट्स और किंडर गार्टनके लकड़ीके बक्स इत्यादि भी मिलते हैं। यहांकी मेकमिलन एण्ड को० लांग मेन्स एण्ड को० और बलैंकी इत्यादिके यहांकी अंग्रेजी पुस्तकें भी उचित कमीशनपर भेजी जाती हैं। इसके लिये पत्र व्यवहार करें।

इसके अलावा हमारी दूकानमें हिन्दीके सभी प्रकाशकोंकी पुस्तकें मिलती हैं। हमारे यहांसे पुस्तकें मंगानेमें आपको अनेक प्रकाशकोंके पास लिखनेका श्रम और डाकव्ययका खर्च न उठाना पड़ेगा।

disease. ... cases. Resection compared
...hod of choice in problematic cases. Resection compared
...ative methode offers better and more permanent results
... condition of the patient. Out of 59
...with clinically diagnosed chronic mainly nonbiliary pan-
... partial, subtotal left side resections or partial and
...denopancreatectomy turned out to be most appropriate. The
...complications and operative mortality are low. Incomplete
... treatment often necessitates a second operation with a
...perative risk. Palliative operations, saving integritiy
...rgan, are advantageous only, if they prevent from pro-
inflammation, from secondary complications and a possible
malignancy as safely as resection.

..., F.K.Beck, R.Tenner: Prof.Dr.med.F.Kümmerle